भुवन विजयम्

[ऐतिहासिक उपन्यास]

उमाशंकर

भारतीय ग्रन्थ निकेतन

दिल्ली-६

भुवन विजयम्

[ऐतिहासिक उपन्यास]

उमाशंकर

भारतीय ग्रन्थ निकेतन

दिल्ली-६

परम श्रद्धेय अग्रज श्री गौरीशंकर सहाय जी
को सश्रद्धा

The reign of Krishnadeva Raya marks the dawn of a new era in the literary history of South India. Himself a scholar, a musician and a poet, he loved to gather around him poets, philosophers and religion teachers whom he honoured with munificent gifts of land and money.

Dr. N. Venkata Ramanayya

भूमिका

आचार्य पं० नन्ददुलारे वाजपेयी

अध्यक्ष—हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर।

श्री उमाशंकर का नवीनतम ऐतिहासिक उपन्यास 'भुवन विजयम्' पांडुलिपि में पढ़ गया हूँ। उनके 'नाना फड़नवीस' 'पेशवा की कंचनी' तथा 'कावेरी के किनारे' तीन अन्य ऐतिहासिक उपन्यास भी पढ़े हैं जिन्होंने एक ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में ख्याति प्रदान की है। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों का क्षेत्र अभी सम्पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुआ है। ऐसी दशा में उमाशंकर जी के उपन्यासों का मूल्य और भी बढ़ जाता है। ऐतिहासिक उपन्यास लेखन का कार्य सरल नहीं है। उसकी मर्यादायें तथा सीमायें काफी कठोर होती हैं। कल्पना का उपयोग करने पर भी लेखक अतीत के ऐतिहासिक सत्यों से बंधा रहता है। उसके लिए आवश्यक होता है कि इतिहास के जिस युग का चित्रण वह अपनी कृति में कर रहा हो, वह युग अपनी सारी सजीवता, व्यापकता और यथार्थता के साथ उसकी कृति में मूर्त हो सके। मुझे हर्ष है कि श्री उमाशंकर की कृति इस दृष्टि से बड़ी सीमा तक सफल है। उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यासकार का दायित्व निर्वाह करने की पूरी चेष्टा की है।

प्रस्तुत कृति की कथा-वस्तु मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अन्तिम हिन्दू साम्राज्य विजयनगर से सम्बन्धित है। अपने समुन्नत काल में विजयनगर साम्राज्य ने साहित्य, संस्कृति और कला के क्षेत्र में जिस उत्कर्ष का परिचय दिया था, श्री उमाशंकर का उपन्यास उसे सजीव रूप में पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है। उस समय की सामाजिक राजनीतिक उथल-पुथल भी उपन्यास में यथार्थता के साथ चित्रित की गई है। रीति-रिवाज और आचार-व्यवहार भी लेखक की दृष्टि से

अछूते नहीं रहे हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक सत्य अथवा ऐतिहासिक यथार्थ के जिस चित्रण की माँग की जाती है, लेखक उसके प्रति निष्ठावान है। उसकी कल्पना स्वच्छन्द होते हुए भी ऐतिहासिक सत्यों द्वारा अनुशासित रही है। यह उसकी कृतिका महत्वपूर्ण पक्ष है।

साहित्यिक दृष्टि से भी प्रस्तुत कृति का महत्व है। उसकी वस्तु-योजना प्रभावशाली तथा आकर्षक है। विविध ऐतिहासिक तथा काल्पनिक प्रसंगों को कुशलतापूर्वक एक दूसरे से सबंद्ध कर कथा की श्रृंखला को आदि से अन्त तक सुव्यवस्थित रखने का प्रयत्न किया गया है। प्रणय प्रसंग कथा को अतिरिक्त आकर्षण तथा गति प्रदान करते हैं। कथा के निर्माण और उसकी रोचकता की ओर विशेष ध्यान देने के कारण ही यह सब सम्भव हो सका है। पात्र अनेक हैं—ऐतिहासिक भी कल्पित भी। काल्पनिक पात्रों के नाम भी उस युग की अनुरूपता में ही निश्चित किये गये हैं—फलतः वे कृत्रिम नहीं प्रतीत होते। चरित्रों की रेखायें पर्याप्त स्पष्ट हैं। भाषा शैली को भी युगानुरूप निर्मित करने का प्रयत्न किया गया है। उसमें कथा को आकर्षक ढंग से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने की पर्याप्त क्षमता है। मुझे विश्वास है कि समय के साथ-साथ वह और भी परिष्कृत तथा प्रौढ़ होगी।

मुझे श्री उमाशंकर में एक श्रेष्ठ उपन्यासकार की अनेक सम्भावनायें दीख पड़ती हैं। उनकी कृतियाँ इस बात की सूचक हैं कि उनके लिखने, सामग्री आदि एकत्र करने तथा उसे आकर्षक रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में वे बड़ा श्रम करते हैं। मैं उनके इस श्रम की सराहना करता हूँ। स्वतन्त्र रूप से एकान्ततः साहित्य की सेवा करना उन के साहस और साहित्य के प्रति निष्ठा का प्रमाण है। मुझे विश्वास है कि श्री उमाशंकर सदैव इसी मनोयोग से साहित्य की सेवा करेंगे जिस से वे अधिकाधिक यशस्वी बन सकेंगे। उनकी प्रस्तुत कृति एक सुन्दर औपन्यासिक रचना के रूप में पाठकों के द्वारा ग्रहण की जायेगी।

आभार अभिव्यक्ति

● श्री क. राघव चारलू एम. ए., बी. एल; (कोकोनड, आन्ध्र प्रदेश निवासी) निष्णात इतिहासज्ञ हैं। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश अंश, ऐतिहासिक अनुसन्धान विशेषकर विजयनगर साम्राज्य की खोजों में लगाया है। इस विषय पर उन्होंने अनेक-ग्रन्थ भी लिखे हैं। अभी हाल ही में उनका सम्राट कृष्णदेव राय पर तेलुगु में विद्वता पूर्ण एवं अनुसन्धान युक्त ग्रन्थ छपा है जिस पर उन्हें पुरस्कार प्राप्त हुआ है। श्री चारलू विजयनगर साम्राज्य पर अधिकारी इतिहासकार हैं। उन्होंने मेरी अनेक शंकाओं का निवारण करके विशेष सहायता प्रदान की है।

● सुश्री पद्मा रस्तोगी परम विदुषी महिला हैं। आपकी सम्पूर्ण शिक्षा लंदन में हुई है। आप अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी, कन्नड़, तेलुगु आदि अनेक भाषाओं की ज्ञाता हैं। इतिहास आपका प्रिय विषय है। आपने अपने निजी पुस्तकालय से विजयनगर साम्राज्य पर अनेक बहुमूल्य और अप्राप्य पुस्तकें प्रदान करके तथा तेलुगु और कन्नड़ भाषाओं में प्राप्य सामग्री को हिन्दी में सुलभ करके मेरे उपन्यास की ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता के संवर्धन में बहुत योग दिया है।

● श्री क. र. नागप्पा, वैयक्तिक सहायक, राज्यपाल, उत्तर प्रदेश— विद्या व्यसनी, उदार और विनम्र व्यक्ति हैं। दक्षिण भारतीय होने के कारण आप विजयनगर साम्राज्य पर विशेष ज्ञान रखते हैं। आपने स्वयं तथा अन्य विद्वानों के माध्यम से मुझे अपने उपन्यास की सामग्री संकलन में सहयोग दिया है।

उक्त तीनों महानुभावों का मैं हृदय से आभारी हूँ।

परिचय

विजयनगर साम्राज्य का सम्पूर्ण इतिहास लगभग पौने तीन सौ वर्षों का है।

सन् १३३६ ई० में संगम के पुत्र हरिहर ने तुंगभद्रा नदी के दक्षिणी किनारे पर विजयनगर नामक राज्य की नींव डाली जो आगे चलकर साम्राज्य में परिवर्तित हो गया।

सन् १६१४ ई० में शासक श्री वेंकटपतिदेव की मृत्यु के उपरान्त इस साम्राज्य का अन्त हो गया।

यद्यपि मेरे उपन्यास का काल सन् १५०६-१५३० ई० के मध्य का है फिर भी मैं चाहूँगा कि कुछ शब्दों में विजयनगर साम्राज्य की शासन प्रणाली, वहाँ की समाजिक, धार्मिक, साहित्यिक एवं आर्थिक अवस्थाओं के विषय में थोड़ी बहुत चर्चा कर दूं। मेरे ऐतिहासिक उपन्यासों के लिखने का दृष्टिकोण होता है रोचकता लाने के साथ-साथ अधिक से अधिक ऐतिहासिक तथ्यों की छानबीन करके पाठकों के सन्मुख वास्तविक चित्रण प्रस्तुत करना।

कल्पना का सहारा जहाँ तक कम लिया जा सकेगा सत्यता उतनी ही उभरेगी जो प्रत्येक रूप से कथा प्रेमियों तथा इतिहास प्रेमियों, दोनों के लिये बौद्धिक भोजन देने वाली साबित हो सकेगी।

अपने अन्य उपन्यासों की भाँति मैंने इस उपन्यास में भी समय, समाज और देश को भरसक सही सही रूप में रखने का प्रयास किया है।

पुस्तक, विदेशी यात्रियों, राजदूतों एवं प्राचीन और नवीन इतिहास की पुस्तकों पर पूर्णतः आधारित है।

इटली निवासी प्रसिद्ध यात्री निकोले कोन्टी सन् १४२० ई० में विजयनगर आया था। इस समय देवराय द्वितीय शासन कर रहा था। निकोले ने स्वयं कुछ नहीं लिखा वरन् इसने जो कथा बताई उसे पोप के मन्त्री पोग्गियो ब्रासियोलिनी ने लेटिन में लिखकर पोप को सुनाई थी। इसने विजयनगर का बड़ा विस्तृत वर्णन किया है।

निकोले कोन्टी के बीस वर्ष बाद अब्दुर रज्ज़ाक नामक व्यक्ति विजयनगर में फारस का दूत होकर लगभग सन् १४४२ ई० में आया था। इसने सामाजिक अवस्था का सुन्दर शब्दों में चित्रण किया है।

डूयरेट बारबोसा सन् १५०० ई० के लगभग कालीकट में आकर बस गया था। इसके भी विवरण में सन् १५०४-१५१४ ई० का समाज है।

दूसरा विदेशी यात्री बारथीमा था। यह भी इटली का रहने वाला था। सन् १५०६ ई० के लगभग यह विजयनगर में था।

पेई नामक व्यक्ति पुर्तगाली था और वर्षों विजयनगर में रहा। इसके समय में सम्राट कृष्णदेव राय शासन कर रहा था। इसका विवरण बड़ा व्यापक है। इसके वर्णन ने बड़ी भ्रांतियाँ दूर की हैं।

न्यूनिज का वर्णन भी पेई के सदृश्य है, जो सम्भवतः सन् १५३५ ई० या १५३७ ई० के आसपास लिखा गया था। इस ने रायचूर के प्रसिद्ध युद्ध का चित्रण आँखों देखी, जैसा किया है।

सेवेल, राइस, फादर हेरास जैसे यूरोपीय इतिहास लेखकों

ने विजयनगर साम्राज्य के इतिहास और समाज पर अच्छा प्रकाश डाला है।

दक्षिण भारत के डा० कृष्ण स्वामी आयंगर, श्री सालातोर, श्री के. राघव चारलू, श्री जी० एस० दीक्षित, श्री एन० वेंकट राव, श्री एस० श्रीकंठ शास्त्री तथा उत्तर प्रदेश के वासुदेव उपाध्याय आदि विद्वानों ने जितनी सामग्री खोजकर जुटाई है सो तो उपलब्ध है ही; अभी आगे के लिये भी बहुतों का परिश्रम इसी दिशा में चल रहा है।

यही हैं इस उपन्यास के आधार स्तम्भ।

विजयनगर प्रान्त की भूमि उर्वरा है।

प्राचीन चट्टानों से निर्मित होने के कारण अधिक उपजाऊ भी है।

यद्यपि यहाँ की जलवायु गर्म है; किन्तु उत्तर भारत की भांति दुखदायी नहीं है। ठंडक भी अच्छी पड़ती है।

उपज में रूई, बाजरा, ज्वार, चावल, तिलहन इत्यादि प्रधान हैं। ऊंचे स्थानों पर फल भी उत्पन्न होता है। फूलों में गुलाब की अधिकाई है। पर्वत चन्दन और सागौन के वृक्षों से ढके हुये हैं।

इस प्रान्त में पालने वाले पशुओं में घोड़े, हाथी, गाय, कुत्ते, हिरन, भैंस, बकरी आदि हैं।

जंगली सूअर, भालू, चीता और शेर वन पशु हैं। पक्षियों में तोता, मोर और मैना मुख्य हैं। यत्र तत्र बाज और कबूतर भी पाले जाते हैं।

ऊँट सामान ढोने के साथ साथ सवारियों के भी काम आता है। उस युग में आने वाले समस्त विदेशी यात्रियों ने इस भू-भाग का बड़ा बखान किया है।

'स्वभागभृत्या दास्यत्वे, प्रजानां नृपः कृतः'—यह है शुक्राचार्य की नीति और इसी नीति का अनुकरण किया विजयनगर के समस्त शासकों ने।

स्वयं सम्राट कृष्णदेव राय ने अपनी पुस्तक 'आमुक्तमलयाडा' में इसी नीति का बार-बार समर्थन किया है जिससे सिद्ध होता है कि शासक अपने को प्रजा का सेवक समझते थे स्वामी नहीं।

विजयनगर के शासकों ने प्राचीन भारतीय शासन प्रणाली के अनुसार ही अपना शासन प्रबन्ध किया था।

शासन प्रबन्ध विभिन्न विभागों में बंटा था। साम्राज्य कई प्रान्तों में विभक्त था।

प्रान्त को राज्य कहते थे। राज्य का प्रधान शासक मण्डलेश्वर के नाम से जाना जाता था।

यह केवल पाँच वर्षों के लिये सम्राट द्वारा नियुक्त हुआ करता था।

मण्डलेश्वर अपने राज्य प्रबन्ध के लिये पूर्णतः स्वतंत्र होते थे यद्यपि आवश्यकतानुसार सम्राट हस्तक्षेप कर सकता था।

केन्द्रीय शासन का प्रधान सम्राट स्वयं हुआ करता था जो अपने विभिन्न विभागों के मंत्रियों की सलाह से शासन प्रबन्ध करता था।

मंत्रियों की नियुक्ति में जातीयता का कोई प्रश्न नहीं था। प्रत्येक योग्य व्यक्ति के लिये रास्ता खुला था। हाँ, झूठ बोलने वाले, धर्म से न डरने वाले, आचरण भ्रष्ट तथा प्रजा को कष्ट देने वाले व्यक्ति मंत्री नहीं बनाये जा सकते थे।

मंत्रियों में प्रधान को महामंत्री या प्रधान मंत्री कहा जाता था। महामंत्री का कार्यालय बहुत बड़ा कार्यालय होता था जो 'रायस' के नाम से जाना जाता था।

इस कार्यालय में कर्णिकों की संख्या अधिक थी। स्त्रियाँ भी यहां कर्णिक थीं।

सेनापति, दंडनायक पद का भी कार्यभार संभालता था। वह सारे अभियोगों को सुना करता था।

प्रधान न्यायाधीश स्वयं सम्राट होता था और प्रत्येक को छूट थी कि वह सम्राट तक सरलतापूर्वक अपने मुकदमे को ले जा सके।

दीवानी और फौजदारी के लिये पृथक-पृथक न्यायालय थे।

दण्ड तीन प्रकार के होते थे—जुर्माना, दिव्य और मृत्यु। चोरी करने वालों के हाथ पैर काट दिये जाते थे तथा मन्दिर में चोरी करने वालों को हाथी के पैरों के नीचे कुचल डालने का विधान था।

प्रजा पर अत्याचार करने वाले सरकारी कर्मचारियों को मृत्यु दण्ड तक दिया जाता था।

विजयनगर शासकों के पास असंख्य सेना थी जो कई भागों में बंटी थी।

तुर्क लोग भी सेना में रखे जाते थे।

सैनिकों को राजकीय भोजनालयों से भोजन मिलता था जिसमें माँस भी सम्मिलित था।

वस्त्रों में रेशम और मखमल का बहुतायत से प्रयोग था।

वेतन हर चौथे मास सैनिकों को दिया जाता था और प्रत्येक सैनिक के नाम और पते राजकीय पुस्तिका में दर्ज रहते थे।

पूर्वी और पश्चिमी दोनों समुद्री तटों पर लगभग ६० बन्दरगाह थे। इनकी रक्षा के लिये एक बड़ी जल सेना भी थी।

विजयनगर के कायस (पुलिस) और गुप्तचर विभाग उस युग में अपना सानी नही रखते थे।

भूमिकर साम्राज्य की आय का प्रधान जरिया था। प्रजाधान्य

का छठा भाग सम्राट को दिया करती थी।

प्रत्येक वर्ष पृथ्वी की नाप होती थी और उपज के अनुसार उसका वर्गीकरण कर दिया जाता था।

जो व्यक्ति लगातार तीन वर्षों तक भूमिकर नहीं देता था उस की जमीन राजकीय सम्पत्ति हो जाती थी।

लगान वसूली के लिये राजकीय पुस्तिकायें हुआ करती थीं जिनमें व्यक्ति का नाम, पता और रकम व्यौरेवार लिखे होते थे। भूमिकर राजकीय कोषाध्यक्ष के पास एकत्रित होता था।

राज को चुंगी से अच्छी आमदनी थी।

चुंगी अधिकारी (Custom officer) सुकंड अधिकारी के नाम से जाना जाता था।

अफ्रीका, चीन, अरब आदि देशों से व्यापार खूब होता था; फलस्वरूप बन्दरगाहों पर चुंगी अच्छी वसूल होती थी। राज में तेल, कपड़े, शक्कर आदि के जितने कारखाने थे उनसे भी कर वसूल किया जाता था। इसी प्रकार शराब की विक्री पर, धोबी, सुनार, बढ़ई, मोची, नाई आदि पर भी कर लगाया जाता था।

मछली मारने वाले तथा समुद्र से मोती निकालने वाले भी कर दिया करते थे।

प्रत्येक राज्य के मण्डलेश्वर भी प्रतिवर्ष कुछ धनराशि कर के रूप में केन्द्रीय शासन को दिया करते थे।

विजयनगर में भिक्षा मांगना जुर्म था। देखे जाने पर भिक्षा माँगने वाले को दण्ड का भागी होना पड़ता था।

आय का आधा भाग सेना पर व्यय किया जाता था। तीसरा भाग राजकीय महलों तथा अन्य आराम की वस्तुओं पर व्यय होता था। एक भाग कोष में रखा जाता था।

आवश्यकतानुसार सम्राट करों को माफ भी कर देता था।

केन्द्रीय सरकार से बिना पूछे प्रान्तों में नये कर नहीं लगाये जा सकते थे।
जाड़े के दिनों में शासक दौरा किया करते तथा जन सम्पर्क स्थापित करके उनकी कठिनाइयों को सुना करते थे।
सीमा का निर्धारण गरुड़ की मूर्ति, वामन की मूर्ति अथवा पत्थर पर चाँद और सूर्य की आकृतियाँ बनाकर किया जाता था।

विजयनगर साम्राज्य धन धान्य से परिपूर्ण था।
सबका जीवन आनन्द से कटता था।
निर्धनों की संख्या नहीं के बराबर थी। सभी खुशहाल थे।
कृषि मुख्य व्यवसाय था।
काली मिट्टी होने के कारण तिल, ज्वार, बाजरा और रूई की पैदावार अधिक मात्रा में होती थी।
सिंचाई के सम्बन्ध में विजयनगर के शासक सदैव सतर्क रहे। तालाबों, नहरों और कुओं के निर्माण में वे बहुत धन खर्च करते थे। नदियों में बाँध, बाँध कर भी जल संचय किया जाता था।
राज्य के पूर्वी और पश्चिमी किनारों पर गेहूँ, चावल और जव की उपज अच्छी होती थी।
गल्ला बाहर भी भेजा जाता था।
व्यापार दूसरी श्रेणी का व्यवसाय था।
प्रत्येक को व्यापार करने की छूट थी।
बाजार में सामान बेचने वाले दूकानदारों से कर वसूल किये जाते थे।
विदेशी व्यापार से साम्राज्य की बड़ी आमदनी थी।
आजकल की भाँति भी विजयनगर में बड़े-बड़े नगर विभिन्न

वस्तुओं के केन्द्र बन गये थे।
कई नगर कपड़ों के कारखानों के लिये विख्यात थे। जहाँ नये-नये किस्म के कपड़े सदैव बना करते थे।
लोहे और तेल के भी कारखाने थे। धातु की मूर्तियाँ बनाई जाती थीं। अब्दुर रज्जाक के कथनानुसार देवराय द्वितीय ने तो एक धातु का मन्दिर भी बनवा डाला था।
इस प्रकार नेलोर, चन्द्रगिरि, उदयगिरि, पेनुगोंडा आदि नगर व्यापारिक केन्द्र बन गये थे।
स्थल और जल दोनों मार्गों से व्यापार होता था परन्तु पहाड़ी प्रदेश होने के कारण स्थल मार्ग कम थे और जल मार्ग अधिक।
विजयनगर के प्रत्येक बड़े शहरों से गोआ का सीधा सम्बन्ध अच्छी सड़कों द्वारा स्थापित था।
बाहरी जगत की वस्तुएं यहां आती और यहां की वस्तुएं बाहर जातीं।
राज्य के अन्दर एक शहर से दूसरे शहर को जाने वाली वस्तुओं पर चुंगी लगाई जाती जो 'मार्ग आदायम' के नाम से जानी जाती थी। राज मार्गों पर चुंगी घर बने होते थे।
मसाले, मिर्च, सूत, चन्दन, नमक, पान, फल, इमली आदि वस्तुओं को एक नगर से दूसरे नगर में भेजने पर 'मार्ग आदायम' वसूल किया जाता था।
व्यापारिक दृष्टिकोण से उस युग में विजयनगर इतना समृद्धशाली बन चुका था कि समस्त विदेशियों ने इसे अद्वितीय घोषित किया था।
बन्दरगाहों पर लिये जाने वाले कर, मामूल आदायम (Export duty) और स्थल आदायम (Import duty) के वर्णनों को देखने से पता चलता है कि चीन, अरब, मिश्र,

ईरान, पुर्तगाल, अफ्रीका आदि देशों से प्रचुर मात्रा में व्यापार हुआ करता था।

पुर्तगाल वालों से मुख्य व्यापार घोड़ों का था जिसके बदले वे विजयनगर से सोना और हीरा ले जाते थे।

चीन से रेशमी कपड़े अधिक मात्रा में आया करते थे।

विजयनगर की जनता रेशमी वस्त्र अधिक पहना करती थी।

व्यापारी देश के अन्दर का माल अधिकतर बन्दरगाहों तक ले जाया करते थे जहाँ विदेशी उसे खरीद लेते थे। विदेशी या तो बन्दरगाहों पर अपना माल बेच देते अथवा स्वयं नगरों में जाकर बेचा करते थे।

विजयनगर से विदेश जाने वाली वस्तुओं में सूती कपड़े, मोती, हाथी दाँत, बहुमूल्य पत्थर, लोहा, चन्दन, हीरा, सुगन्धित पदार्थ आदि थे।

सुख और भोग विलास की सामग्री अधिकतर यहाँ से विदेशों को जाया करती थी।

देश में हीरे और नीलम की खाने थी।

व्यापारिक दृष्टिकोण से सबसे विशेष बात यह थी कि यहाँ का व्यापार पूँजीपतियों के हाथ में न होकर नाना प्रकार की व्यापारिक संस्थाओं के आधीन था।

संस्थाओं का अधिकार सर्वमान्य था और प्रत्येक व्यापारिक झगड़े को निबटाने का इन्हें राज्य की ओर से अधिकार प्राप्त था। संस्थाओं के प्रधान अधिकारी को 'वड्ड व्यवहारी' और छोटे अधिकारी को 'पट्टन स्वामी' कहा करते थे।

संस्थाओं द्वारा व्यापार में प्रशंसनीय कार्य करने पर राज्य की ओर से पुरस्कार मिला करते थे।

ये व्यापारिक संस्थायें सामाजिक-कार्यों में हर प्रकार का सहयोग भी दिया करती थीं।

किसी देश की समृद्धि व्यापार की उन्नति पर निर्भर किया करती है और तभी वहाँ के वैभव का अनुमान भी लग पाता है। विजयनगर में सम्राट का विशाल राजप्रासाद, हाथी दाँत तथा सोने और चाँदी के कक्ष, नायकों की ऊंची-ऊँची अट्टालिकायें, बड़े-बड़े बाजार, चौड़ी तथा पक्की सड़कें, सुन्दर और भव्य मन्दिर, नित्य नये-नये आमोद-प्रमोद के कार्यक्रम, सुन्दर और बहुमूल्य पहनावे, प्रत्येक के शरीर पर आभूषणों की अधिकाई इत्यादि सारी वस्तुएं साम्राज्य की आर्थिक स्थिति की सुदृढ़ता को सिद्ध करती थीं।

अब्दुर रज्ज़ाक का यह कथन पुष्टि के लिए पर्याप्त है—

'The city of Bidjanagar is such that the pupil of the eye has never seen a place like it and the ear of intelligence has never been informed that there existed any thing equal to it in the world.'

अर्थात—बिदजानगर (विजयनगर) ऐसा शहर न तो इन आँखों की पुतलियों ने कभी देखा है और न कानों को ही ऐसी जानकारी की सूचना मिली है कि विश्व में इसके समान कोई दूसरा नगर स्थित है।

विजयनगर में सोने, चाँदी और ताँबे तीनों प्रकार के सिक्कों का प्रचलन था। साथ ही उनकी तौल, आकार तथा कौन-सा सिक्का किस धातु का बनेगा—यह भी निश्चित था। सोने के सिक्कों में वाराह (जिसे विदेशी पगोदा के नाम से पुकारते थे) गद्याण, पण, प्रताप, हाग, अलग-अलग शासकों के समय में प्रचलित थे।

'तारा' चाँदी के सिक्के को कहा जाता था और 'जितल', 'परग' और 'कासु' ताँबे के सिक्के थे।

अलग-अलग राजाओं के सिक्कों पर अलग-अलग आकृतियाँ बनी थीं। किसी पर नन्दी तो किसी पर गरुड़, हनुमान, राम और विष्णु की मूर्ति थी। शेर, बाराह और घोड़े की भी आकृति मिलती है। एक बड़े पक्षी के पंजे में हाथी की आकृति भी देखने को मिली है।

इन सिक्कों के दूसरी तरफ राजाओं के नाम अंकित होते थे। सर्वप्रथम सम्राट कृष्णदेव राय ने अपनी मुद्राओं पर नागरी लिपि का प्रयोग किया था। वरन् इसके पूर्व तेलुगु में लिखा जाता था।

राजकीय मुद्रागृहों के अतिरिक्त अन्य संस्थाओं को भी सम्राट की ओर से सिक्के तैयार करने के अधिकार दिये जाते थे। मुद्रा गृहों के निरीक्षण के लिए उच्च पदाधिकारी हुआ करते थे जो सरकारी और गैर सरकारी दोनों टकसालों की जाँच किया करते थे

गैर सरकारी टकसालों से कर लिया जाता था।

विजयनगर की आर्थिक स्थिति इतनी अच्छी थी कि कहीं भी भिक्षा माँग कर जीविका चलाने वाला कोई व्यक्ति दिखलाई नहीं पड़ता था।

प्रत्येक व्यक्ति अपने धन्धे में लगा हुआ खुशहाल था।

सोने के सिक्कों की प्रचुरता के कारण यह पता चलता है कि राज्य में धन की प्रचुरता थी।

राज कोष सोना, चाँदी, हीरा, मोती तथा अन्य बहुमूल्य पदार्थों से भरा रहता था।

प्रजा सुखी तथा वैभव सम्पन्न थी।

समाज में ब्राह्मणों की सबसे अधिक प्रतिष्ठा थी; परन्तु यह प्रतिष्ठा ढोंग के आधार पर नहीं वरन् उनके कर्मकांडों और योग्यता के फलस्वरूप थी।

मनु तथा अन्य स्मृतिकारों ने ब्राह्मणों के जो कर्म बतलाये हैं उन कर्मों का पालन विजयनगर का समस्त ब्राह्मण समुदाय किया करता था।

पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-कराना, दान लेना और देना इन्हीं में उनका जीवन व्यतीत होता था; परन्तु साथ ही वे जीविका उपार्जन सम्बन्धी दूसरे कार्य भी कर सकते थे।

पेई तथा दूसरे यात्रियों ने लिखा है कि खेती, व्यापार, नौकरी आदि धन्धों से भी ब्राह्मण अपना जीवन निर्वाह करते थे। सैनिक, सेनापति और राजाओं के मंत्री भी हुआ करते थे। ब्राह्मणों का पहनावा विशेष प्रकार का था जिसका वर्णन

उपन्यास में मिल जायेगा।

दूसरी श्रेष्ठ जाति क्षत्रियों की थी।

राज्यप्रबन्ध में विशेषतः इन्हीं का हाथ होता था।

वैश्य अधिकतर मूल्यवान पदार्थों का व्यापार किया करते थे।

सेठी जाति की गणना वैश्यों में होती थी।

वैश्यों में पढ़ाई लिखाई का अभाव नहीं था। गणित शास्त्र का अध्ययन इनके यहाँ विशेष रूप से कराया जाता था। इनकी पहिचान इनकी वेषभूषा से सरलतापूर्वक की जा सकती थी।

ये लोग कमर से गले तक कोई वस्त्र धारण नहीं करते थे। कानों में हीरे जटित कुंडल, कमर में करधनी तथा उँगुलियों में अधिक अँगूठियाँ पहना करते थे।

सिर पर लम्बे लम्बे बाल होते थे तथा दाढ़ी घुटी रहती थी। टोपी के स्थान पर [illegible] [illegible] करते थे।

विजयनगर में शूद्रों की अवस्था आज जैसी घृणित और हेय नहीं थी। समाज में वे पतित नहीं समझे जाते थे। यद्यपि उनका कर्म सेवा कार्य ही था; परन्तु उनका जीवन अपमानित

नहीं था।

केकिकोलर, डाबर, कम्बलतर नामक आदि जातियों की गणना शूद्रों में की जाती थी। इनके अतिरिक्त गोप, रेडी योगी नामक दूसरी जातियाँ भी रहा करती थीं।

विजयनगर में दास प्रथा भी प्रचलित थी; परन्तु दासों की दशा दयनीय नहीं थी।

इन्हें खेतीबारी तथा नौकरी करने की छूट होती थी। कमाई का अधिक भाग इन्हें अपने स्वामी को देना होता था।

विजयनगर में स्त्रियों को उच्च स्थान प्राप्त था।

पर्दा बिल्कुल नहीं था।

स्त्रियाँ विदूषी होती थीं। कवितायें और ग्रन्थ लिखा करती थीं। कुमार कम्पण की पत्नी गंगदेवी ने 'मधुरा विजयम्' नामक महाकाव्य लिखा था।

मदुरा के रघुनाथ राव की पत्नी एक घंटे में सौ श्लोकों की रचना करती थीं।

स्त्रियों को संगीत और नृत्य की शिक्षा भी दी जाती थी, वे राजमहल तथा दूसरे कार्यालयों में नौकरियाँ भी करती थीं। व्यापार अथवा दूसरे प्रकार के कार्यों में भी हाथ बटाती थीं।

सम्राट कृष्णदेव राय के समय में स्त्रियों का कुश्ती लड़ना, अपने पतियों के साथ युद्धों में जाना, सामाजिक कार्यों में भाग लेना और यात्राओं में संग-संग जाने का विवरण मिलता है।

बहुविवाह की प्रथा भी थी।

साधारण व्यक्ति भी कई शादियाँ कर सकता था। दहेज लेने की प्रथा अधिक थी।

शूद्रों में बाल विवाह और बेटी बेचने की प्रथा का यत्र तत्र उल्लेख पाया जाता है।

सती प्रथा भी थी जिसे 'सहगमन' कहा जाता था। उच्च जातियों में विधवा विवाह का प्रचलन बिल्कुल नहीं था।
सार्वजनिक स्त्रियां गणिका कहलाती थीं। इनके रहने का एक निश्चित स्थान था।
ये मन्दिरों में, विभिन्न उत्सवों पर नाचा-गाया करती थीं; परन्तु समाज में इनकी प्रतिष्ठा बहुत अधिक थी। ये राज-प्रासाद तथा किसी भी प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित घरों में आ जा सकती थीं।
राजा इनका स्वयं सम्मान करता था। इतना ही नहीं यदि सम्राट के सामने किसी को पान खाने का अधिकार था तो केवल इन वेश्याओं को।
ये संगीत और नृत्य में अत्यधिक निपुण हुआ करती थीं। ये राजकुमारियों तथा दूसरे घरों की लड़कियों को नाच गाना सिखलाया करती थीं। ये पढ़ी लिखी होती थीं। प्रत्येक शनिवार को मन्दिरों में इनका नृत्य प्रदर्शन होता था।
महानवमी, होली, रामनवमी आदि उत्सवों पर ये अपनी कला का विशेष परिचय देती थीं।
इनकी वेश-भूषा दूसरी स्त्रियों से भिन्न हुआ करती थी। इन का सिर खुला रहता था। बालों में एक विशेष प्रकार का आभूषण पहनती तथा नाक में झुलनी होती थी। पैरों में जूते भी होते थे।
सम्राट कृष्णदेव राय के शासन काल में गणिकायें सबसे अधिक संख्या में थीं।
जैसे सम्पन्न देशों में विलासिता का बढ़ना स्वाभाविक हो जाता है वैसे ही धन-धान्य से पूर्ण विजयगर की जनता विलासी थी।
गणिकायें जनता के मनोरंजनार्थ थीं; परन्तु इनके अतिरिक्त

आमोद प्रमोद के दूसरे साधन भी थे।

नाटक खेलना, साहित्यकारों की जमघट लगना, दंगल होना, मुष्ठिका युद्ध (Boxing) होना, कोलाट (लकड़ी) खेलना, स्त्रियों का दंगल होना, तलवार से द्वन्द्व युद्ध करना, नदी में तैराकी प्रतियोगिता तथा घुड़दौड़ की प्रतियोगिता होना, मुर्गों की लड़ाई होना, शतरंज खेलना, नटों द्वारा खेल दिखलाना, जंगलों में आखेट करना आदि तमाम मनोरंजन के साधन थे।

स्त्रियाँ भी तलवार और लाठी चलाना सीखती और अभ्यास करती थीं।

राजा लोग हाथी का आखेट अधिक पसन्द करते थे तथा जब तब उत्सवों पर हाथियों के द्वन्द युद्ध का भी अनोखा आयोजन कराते थे।

कबूतर और बाज पक्षी पालकर उनसे भी मनोरंजन किया जाता था।

समय समय पर बड़ी बड़ी प्रदर्शनियाँ भी लगा करती थीं।

विजयनगर के घरों की शोभा अद्वितीय थी।

खम्भों और छतों में दस्तकारी के काम बड़े अनूठे ढंग से किये जाते थे तथा उन्हें खूब सजाया जाता था। उनमें मूल्यवान पत्थर भी जड़े जाते थे।

अधिकतर कमरों के चारों ओर बरामदे हुआ करते थे।

सम्पन्न व्यक्तियों, राज्य पदाधिकारियों, नायकों, सामन्तों, मंत्रियों आदि के भवन चारों ओर दीवारों से घिरे होते थे जैसे आजकल के बंगले होते हैं। अन्दर फूल पत्तियाँ भी लगी होती थीं।

इमारतें कई मंजिल की भी होती थीं और एक मंजिल की भी होती थीं।

पलास्तर किये हुए चिकने मकानों में नाना प्रकार के रंगों को मिलाकर कमरों, छतों और दीवारों को रंगीन भी बना दिया जाता था।

भोजन में चावल, जौ, गेहूँ, शक्कर, मक्खन, शहद, दाल, दूध, माँस आदि का प्रयोग होता था।

समुद्री मछलियाँ, सूअर, कबूतर, भैंसा, बकरी तथा अन्य दूसरे पक्षियों का माँस खाया जाता था।

ब्राह्मणों को छोड़कर शेष सभी जाति के लोग माँस खाते थे।

गोआ से आम अधिक मात्रा में आते थे।

इमली, कटहल और मसाले का भोजन में विशेष प्रयोग होता था।

बाहर से आने वाले फलों में अंगूर, नीबू, संतरे, बादाम थे और ये बड़े सस्ते भाव पर बिका करते थे।

पान खाने का प्रचलन अधिक था और प्रत्येक नगर में पान की दूकाने अत्यधिक संख्या में थीं।

अब्दुर रज्ज़ाक कहता है—राजा और रंक एक जैसा कपड़ा पहिना करते थे।

मलमल और रेशमी कपड़े करीब-करीब सभी धारण करते थे। सूती कपड़ों में विभिन्न प्रकार की छींटे सस्ती और महंगी दोनों प्रकार की बनती थीं।

राजा जिस कपड़े को एक बार पहन लेता था उसे पुनः धारण नहीं करता था। इन कपड़ों को महल के सेवकों अथवा निर्धन व्यक्तियों को दे दिया जाता था।

राजा तुर्कीनुमा ऊँची कामदार टोपी लगाता था और इस प्रकार की टोपियाँ केवल राज्य के उच्च पदाधिकारियों के अतिरिक्त साधारण लोग नहीं लगा सकते थे। सर्वसाधारण पगड़ी बाँधते थे।

आभूषणों में करधनी, बाजूबन्द, गुलूबन्द, कानों में कुन्डल, गले में हार और उँगुलियों में अंगूठियों के पहनने का प्रचलन स्त्रियों और पुरुषों दोनों में ही था; परन्तु स्त्रियों के कुंडल कुछ अधिक लम्बे हुआ करते थे। आभूषणों के आधार पर एक दूसरे की हैसियत का अनुमान लगाया जा सकता था।

पुरुषों के केश लम्बे-लम्बे होते थे।

स्त्रियों में जूड़ा बाँधने का फैशन था जिसे वे नये-नये प्रकारों से सजाया करती थीं।

सुगंधित पदार्थों में चन्दन, केसर, कस्तूरी, गुलाब जल तथा नाना प्रकार के इत्र और तेल उपयोग में लाये जाते थे। इत्रों का शौक विजयनगर निवासियों में अधिक था। बहुमूल्य और सुन्दर छातों का भी उपयोग होता था। सरदार सामन्तों के छाते रेशमी और रत्नों से सुशोभित होते थे।

पुरुष जूतों के स्थान पर फीतेदार सैंडिल पहना करते थे। स्त्रियाँ जूतियाँ पहनती थीं।

विजयनगर के शासक हजारों की संख्या में धार्मिक और सामाजिक उत्सव मनाया करते थे जिनमें होली, दीवाली और महानवमी प्रधान थे।

महानवमी का उत्सव राष्ट्रीय उत्सव था जो बड़े समारोह के साथ मनाया जाता था। उस युग में यह उत्सव बड़ी दूर-दूर तक विख्यात था।

इन उत्सवों के अतिरिक्त आये दिन मेले भी लगा करते थे जिन्हें जब तब शासक भी देखने जाते थे।

पहाड़ी प्रदेश होने के कारण वाहनों में सबसे अधिक उपयोगी और प्रिय वाहन घोड़ा था।

रथों का भी उपयोग होता था, परन्तु वे बड़े बड़े नगरों तक

ही सीमित थे।
हाथी और ऊँट भी सवारी के काम में लाये जाते थे।
शासक तीर्थ यात्रा भी किया करते थे तथा तीर्थ स्थानों पर अतुल धन दान में दिया करते थे।
मरने पर पिण्ड दान देने की प्रथा थी तथा लोग मृतकों की राख काशी भी ले जाया करते थे।
अतः समस्त विवरणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि विजयनगर का समाज प्रत्येक दृष्टि से सम्पन्न और वैभवपूर्ण था।

किसी देश की संस्कृति का उत्थान वहाँ के समाज के साहित्यिक वातावरण पर निर्भर करता है।
साहित्य की उन्नति में जितनी गति होगी समाज रूपी पुष्प नित्य विकसित होकर सुगंधित वायुमंडल बनाने में समर्थ हो सकेगा।
वास्तव में विजयनगर कालीन साहित्य ने अपने युग को सुगंधमय बना दिया था।
इसने ऐसी-ऐसी विभूतियों को जन्म दिया था जो सृष्टि के अन्त तक अमर बनी रहेंगी।
विजयनगर में शैव मत, जैन मत और वैष्णव मत तीनों एक दूसरे को भला बुरा कह कर अपने को श्रेष्ठ और जीवनोपयोगी सिद्ध करने में तल्लीन थे; परन्तु इनकी यह तल्लीनता लड़ाई झगड़े नहीं कराती वरन् नये नये ग्रन्थों का सृजन करके तर्क के बल पर एक दूसरे को उखाड़ फेंकने में प्रयत्नशील थीं।
परिणाम-स्वरूप कन्नड़, संस्कृत, तेलुगु और तमिल में धुरंधर विद्वानों और धर्म प्रचारकों ने बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे।
इनके अतिरिक्त शासकों, मंत्रियों तथा जनसाधारण ने भी सुन्दर ग्रन्थ लिखकर साहित्यक विकास में हाथ बंटाया।

कन्नड़ भाषा में किन-किन मतावलम्बियों ने कितने कितने ग्रन्थ लिखे, कितनी टीकायें कीं, कितने भाष्य हुए, कितनी कहानियाँ लिखी गईं तथा कितने विद्वानों ने अलंकार, ज्योतिष और वैद्यक पर पुस्तकें लिखीं इत्यादि यदि विस्तार पूर्वक लिखा जाय तो सम्भवतः एक बड़ा ग्रन्थ तैयार हो जायेगा। अतः यहाँ इतना कह देना पर्याप्त होगा कि प्रत्येक धर्म प्रचारक ने अपने धर्म प्रचार में इस भाषा का अधिक प्रयोग किया था।

कन्नड़ भाषा में रत्नाकर नामक व्यक्ति सबसे बड़ा जैन कवि हुआ है।

मंगराज ने एक पुस्तक विष पर बड़ी प्रामाणिक लिखी है।

शैव चामरस की 'प्रभु लिंग लीला' एक प्रसिद्ध पुस्तक है।

वैष्णवों में सुकुमार भारती, कुमार वाल्मीकि आदि विद्वानों ने तमाम पुस्तकें लिखी हैं।

इसी प्रकार तेलुगु साहित्य की भी बड़ी उन्नति हुई थी।

इस साहित्य का भी खूब भंडार भरा गया।

नाचना सोम, चौदहवीं शताब्दी का सबसे बड़ा कवि था।

सम्राट कृष्णदेव राय का राजकवि पेदण्ण जो तेलुगु में लिखा करता था—'आंध्र कविता पितामह' के नाम से सम्बोधित होता था।

कृष्णदेव राय ने स्वयं अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'आमुक्तमलयाडा' तेलुगु में लिखा था।

संस्कृत साहित्य की उन्नति के विषय में अधिक न कहकर माधवाचार्य और सायणाचार्य का नाम ले लेना मैं समझता हूँ पर्याप्त होगा।

बुक्कराय के मंत्री माधवाचार्य संस्कृत के उद्भट विद्वान थे जिन्होंने मीमांसा, [धर्मशास्त्र, पराशर माधव, मुहूर्त माधव

आदि अनेक संस्कृत में पुस्तकें लिखकर अपने नाम को अमर कर लिया है। इन्हीं के कनिष्ठ भ्राता सायणाचार्य थे जो अपनी विद्वत्ता के लिए जगत विख्यात हैं।

सर्वप्रथम यदि वेदों पर किसी ने भाष्य लिखा था तो वह थे सायणाचार्य।

वेदों के साथ-साथ सायणाचार्य ने अपने को भी अमर कर लिया। वेदभाष्य के अतिरिक्त अलंकार सुधानिधि, प्रायश्चित सुधानिधि, सुभाषित सुधानिधि आदि अनेक ग्रन्थों की सायणाचार्य ने रचना की थीं। सम्राट कृष्णदेव राय ने भी कई पुस्तकें संस्कृत में लिखी थीं।

विजयनगर के अन्तिम राजवंश आरविदु के शासनकाल में संस्कृत साहित्य अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था। द्वैत, अद्वैत और विशिष्टाद्वैत मतों के प्रतिपादन में एक-एक विद्वान ने सौ-सो पुस्तकों की रचना की थी।

प्रसिद्ध दार्शनिक व्यासराज के शिष्य वादिराज ने तीस पुस्तकें लिखी थीं।

अप्पयदीक्षित के विरोध में विजयेन्द्र ने लगभग एक सौ चार ग्रन्थों का सृजन किया था।

जयतीर्थ टीकाचार्य ने लगभग तेईस पुस्तकें लिखी थीं।

संगीत शास्त्र, नाट्य शास्त्र, नृत्यशास्त्र की भी अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं।

इस प्रकार विजयनगर साम्राज्य में साहित्य का भण्डार सदैव बढ़ता ही रहा घटा नहीं और इसका श्रेय बहुत कुछ विजयनगर के शासकों को ही देना उचित होगा। इन्होंने विद्वानों को राजाश्रय दिया। वे विद्वानों की प्रतिष्ठा को अपनी प्रतिष्ठा समझते थे। शिक्षा का माध्यम कन्नड़, तेलुगु और संस्कृत तीनों भाषायें थी। प्रायः मन्दिरों में ही शिक्षा-दीक्षा

हुआ करती थी ।

मदुरा पढ़ाई का केन्द्र था ।

पादरी नोबिली ने लिखा है कि मदुरा में हजारों विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण किया करते थे ।

विद्यार्थियों की फीस, भोजन और वस्त्र राज्य से प्रबन्ध होते थे । शिक्षकों के परिवारों के भरण पोषण की पूरी जिम्मेदारी सरकार को हुआ करती थी ।

तीन सौ वर्षों में साहित्य की उन्नति जितनी विजयनगर साम्राज्य में हो सकी थी उतनी उन्नति सम्भवतः संसार के किसी भी शासन काल में देखने को नहीं मिलती है ।

धार्मिक सहिष्णुता विजयनगर शासकों की सराहनीय है । इन्होंने धार्मिक प्रश्नों को उठाकर कभी कोई काम नहीं किया । प्रत्येक धर्मानुयायी को अपने धर्म के पालन करने की पूरी-पूरी छूट थी ।

शासकों ने शक्ति का दुरुपयोग नहीं किया । बलपूर्वक किसी के धर्म को कुचलने का कभी प्रयत्न नहीं हुआ ।

जैसा मैं ऊपर लिख चुका हूँ शैव, वैष्णव और जैन धर्म ही विजयनगर के प्रधान धर्मों में थे ।

प्रथम विजयनगर के शासक शैव मतावलम्बी थे; परन्तु बाद में वैष्णव मतानुयायी हो गये ।

शासक शैव मतानुयायी हो अथवा वैष्णव; परन्तु उसने कभी भी किसी के धर्म सम्बन्धी विषयों में हस्तक्षेप नहीं किया ।

सब लोग अपने अपने धर्मों का प्रचार कर सकते थे तथा एक दूसरे का खंडन भी कर सकते थे ।

इतना ही नहीं शासकों ने मुसलमानों और पुर्तगाली ईसाइयों को भी हर तरह की छूट दे रक्खी थी ।

मुसलमानों की मस्जिदें और ईसाइयों के गिरजाघर बने

हुये थे।
मुसलमानों की सेना भी थी।
राजा अपने सिंहासन के बगल में कुरान रखता था।
धर्म के आधार पर न तो किसी को भला बुरा कहा जाता था और न किसी की प्रगति में किसी प्रकार के रोड़े अटकाये जाते थे।
ऐसे तमाम उदाहरण हैं जब राजा वैष्णव था तो मन्त्री शैव या जैनी और यदि राजा शैव था तो मंत्री वैष्णव। हरिहर द्वितीय का प्रसिद्ध मंत्री इरूगप्य जैन मतावलम्बी था।
देवराय प्रथम की भीमा देवी नामक स्त्री जैनी थी। विजयनगर के शासकों की धार्मिक सहिष्णुता सराहनीय है।

●

श्री के. राघव चारलू के शब्दों में—'The age of Krishnaraya was a great epoch in mediaeval South Indian History. It was an Age of Renaissance in arts and has been rightly called the 'Augustan Age' of Telugu Literature. With the possible exception of Asoka, Samudragupta and Harsh Vardhan, Hindu India had not witnessed a parallel of the benevolent rule of that mighty Emperor.' (Vijayanagar Sexcentenary Commemoration Volume.)

अर्थात–'कृष्णदेव राय का समय, मध्य युग के दक्षिण भारतीय इतिहास का एक बहुत बड़ा युग था। वह युग कला में जागृति का युग था और उसे तेलुगु साहित्य का जो 'पूज्यनीय युग' कहा गया है वह बहुत सही है। अशोक, समुद्रगुप्त और हर्षवर्द्धन को छोड़ कर हिन्दू भारत ने ऐसे शक्तिशाली सम्राट के उदार शासन के सदृश दूसरा शासन नहीं देखा था।' (विजयनगर सेक्ससन्टेनेरी कममेरेशन वालूम)

सम्राट कृष्णदेव राय तुलुव वंश का तीसरा शासक था। इसका शासनकाल सन् १५११–१५२६ ई० तक का है। २० या २४ वर्ष की अवस्था के बीच वह सिंहासन पर बैठा था। ३८ या ४० वर्ष की अल्प आयु में पूर्वजों की भाँति उरूसन्धि में पीड़ा के कारण मृत्यु हो गई थी।

विजयनगर इस सम्राट के शासन काल में अपनी उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था।

साम्राज्य रामेश्वरम् से लेकर उत्तर में कृष्णा नदी तक और पश्चिमी समुद्र से लेकर पूरब में उड़ीसा तक विस्तृत था। समस्त वैरियों ने इसके सामने घुटने टेक दिये थे।

Paes says, 'The King is of medium height and of fair complexion and good figure, rather fat than thin; he has on his face signs of small pox. He is the most feared and perfect King that could possibly be, cheerful of disposition and very merry. He is one that seeks to honour foreigners and receives them kindly, asking about all their affairs whatever their condition may be. He is a great

ruler and a man of much justice.' (A Forgotten Empire.)

पेई कहता है—'राजा औसत कद का सुन्दर आकृति वाला गौरवर्ण का है। वह दुबला नहीं वरन् कुछ मोटा है। उसके चेहरे पर चेचक के दाग हैं। उसका आतंक अधिक है और उस जैसा दक्ष राजा होना सम्भव नहीं। वह हँस मुख और अच्छी प्रकृति का है। एक वहां ऐसा है, जो विदेशियों का सम्मान करता है और उदारतापूर्वक मिलता है तथा उनके समाचारों की जानकारी करता है। वह एक महान शासक और न्याय प्रिय व्यक्ति है।' (ए फारगाटन इम्पायर)

पेई के कथनानुसार कृष्णदेव राय के बारह पत्नियाँ थीं जिनमें तिरूमल देवी, चिन्नादेवी और अन्नपूर्णा प्रधान स्त्रियों की श्रेणी में आती थीं।

तिरूपति में सम्राट की जो धातु मूर्ति मिली है उसके दाहिनी ओर तिरूमल देवी की और बाँयी ओर चिन्नादेवी की मूर्ति का अनुमान लगाया जाता है।

उड़ीसा के राजा की पुत्री अन्नपूर्णा के विषय में विद्वानों में मतभेद अवश्य है; परन्तु श्री. के. वी. लक्ष्मणराव के मत से यह सिद्ध हो गया है कि अन्नपूर्णा ही उड़ीसा नरेश की पुत्री थी।

अन्नपूर्णा ने अपने पति कृष्णदेव राय के विरुद्ध जो षड़यंत्र किया था उसके विषय में श्री. के. राघव चारलू ने इस प्रकार लिखा है—'xxx The tradition prevalent in the Andhra country points out that as there was a suspicion about Krishnaraya's Kashatriya lineage she plotted against his life xxx and having

been abandoned by him she lived near Kambham xxx.'

अर्थात—आंध्र प्रदेश में जनश्रुति के आधार पर कहा जाता है कि कृष्णदेव राय के क्षत्रिय वंशी न होने के सन्देह में अन्न-पूर्णा ने राजा को मरवा डालने का षड़यन्त्र किया था xxx। वह राजप्रासाद से हटाकर कम्भम में भेज दी गई थी।

'xxx The Aravidu dynasty was connected with the family of Krishna-raya by marriage, the brothers Ramraya and Tirumala having married his daughters Tirumalamba and Venga-lamba xxx.' (Vijayanagar Sexcentenary Commemoration Volume.)

अर्थात—'वैवाहिक आधार पर आरविदु वंश का सम्बन्ध कृष्णराय के परिवार से हुआ। उसने अपनी पुत्री तिरुमलाम्बा और वेंगलाम्बा का विवाह रामराय और तिरुमल भाइयों से कर दिया।'

इसकी पुष्टि श्री वासुदेव उपाध्याय लिखित 'विजयनगर साम्राज्य का इतिहास' से इस प्रकार होती है। वह लिखते हैं—'xxx "नगरपति विजयम्" नामक काव्य में यही लिखा मिलता है कि रामराय से कृष्णदेव राय की पुत्री तिरुमलाम्बा ब्याही गई थी xxx।'

इसी पुस्तक में इतिहासकार ने एक स्थान पर यह भी लिखा है—'xxx रामराय की पत्नी एक प्रसिद्ध कवयित्री थी xxx।'

श्री आर. एन. सालातोर के अनुसार—"Krishnadeva Raya himself was also an accomplished

musician like Ramraya. In the Krishnapura epigraphs he is specially eulogised as being unrivalled in music. xxx.'

अर्थात—'स्वयं कृष्णदेव राय रामराय की भाँति एक निपुण संगीतज्ञ था। कृष्णपुरा में प्राप्त शिलालेखों के अनुसार वह संगीत में अद्वितीय कहा गया है।'

'संस्कृत लिटरेचर अन्डर विजयनगर' (Sanskrit Literature under Vijaynagar) लेख में श्री एस. श्रीकंठ शास्त्री ने लिखा है—'xxx Krishnaraya is said to have learnt to play on the Vina under one Krishna, an ancestor of Raghavendra tirtha. xxx.'

अर्थात—'कहा जाता है कि कृष्णनामक व्यक्ति जो राघवेन्द्र तीर्थ के पूर्वज थे, कृष्णदेव राय को वीणा सिखलाया करते थे।'

सम्राट कृष्णदेव राय को संगीत में अधिक रुचि रखने की पुष्टि इन वाक्यों से भी होती है—'xxx Bandam Laxminarayan wrote a work on music in five chapters called 'Sangita Suryodayam' and dedicated it to Krishnadevaraya. The introductory portion of the work is useful to historians, as it gives some rare informations regarding Krishnadevaraya's early compaigns.He was the natya charya of Krishnadevaraya's court and from this we learnt that Krishna-

devaraya has a great taste for music and dancing xxx' (Vijayanagar S. Commemoration Volume.)

अर्थात्—'बन्दम लक्ष्मीनारायण ने पाँच अध्यायों में 'संगीत सुरोदयम्' नामक संगीत की एक पुस्तक लिखी थी जो कृष्णदेव राय को समर्पित की गई थी। इस पुस्तक का प्रारम्भिक भाग इतिहासकारों के लिये बड़ा उपयोगी है क्योंकि इससे कृष्णदेव राय की आरम्भिक लड़ाइयों की विशेष जानकारी होती है। वह कृष्णदेव राय के दरबार में नाट्याचार्य के पद से विभूषित था और इस प्रकार यह विदित होता है कि कृष्णदेव राय को संगीत और नृत्य में अत्यधिक रुचि थी।'

डा० एस. के. आयंगर द्वारा सम्पादित 'सोर्सेज आफ विजय-नगर हिस्ट्री'(Sources of Vijaynagar History) में जिक्र आया है कि 'जाम्वती कल्यानम्' नामक नाटक के रचयिता कृष्णदेव राय थे तथा वसन्तोत्सव के अवसर पर एक बड़े जनसमूह के सामने यह रंगमंच पर प्रदर्शित भी किया गया था।

Sri Bandh kavi Keseva Rao writes 'xxx it is also mentioned that Krishnadevaraya was in the habit of celeberating Vasanto-tsaram' just like Bhoj and used to invite poets from all parts of the country. After examining their poetic talent, he bestowed on them lavish gifts of gold. xxx' (The Historical Importance of Parijatapaharanam.)

श्रीबन्ध कवि केसवराव लिखते हैं—'xxx यह भी जिक्र आया है कि भोज की भाँति कृष्णदेव राय को 'वसन्तोत्सवम' मनाने की आदत थी तथा इस अवसर पर वह देश के प्रत्येक भाग से कवियों को आमंत्रित करता था। उनकी काव्यात्मक प्रतिभा को परखने के उपरान्त खुले हाथों उन्हें उपहार में स्वर्ण दिया करता था xxx' (दी हिस्टोरिकल इम्पार्टेन्स आफ पारिजातपहारनम्)
उसे चित्रकला और मूर्तिकला से भी अभिरुचि थी जिसका वर्णन पाठकों को उपन्यास में स्थान-स्थान पर देखने को मिल जायेगा।

सम्राट कृष्णदेव राय की आय और व्यय के विषय में विस्तारपूर्वक न लिखकर इतना बता देना पर्याप्त होगा कि वह प्रति वर्ष १०,०००,००० प्रताप कोष में बचत के रूप में रखता था। १,१००,००० प्रताप से १५,००० प्रताप तक मंत्रियों, राजपालों तथा दूसरे उच्च पदाधिकारियों की वार्षिक आय थी जिसमें केवल एक तिहाई सम्राट को कर के रूप में देना होता था। शेष उनकी सम्पत्ति होती थी।
मोरलेंड(Moreland) ने लिखा है—'It is still to my mind undisputable that in the matter of industry, India was more advanced relatively to Westərn Europe than she is to-day xxx.' (India At the Death of Akbar.)
अर्थात्—'यह मेरे मस्तिष्क में अब भी विवाद रहित है कि उद्योग के सम्बन्ध में भारत जिस रूप में आज है उस से कहीं अधिक पश्चिमी यूरोप के मुकाबिले में उन्नतिशील था।' (इन्डिया एट दी डेथ आफ अकबर)

कृष्णदेव राय द्वारा निर्मित बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ, सुन्दर-सुन्दर भवन, शोभनीय मन्दिर जिनकी दीवारों, स्तम्भों और छतों पर बनी हुई नक्कासी तथा नाना प्रकार के अलंकरण, पत्थरों की सजीव मूर्तियाँ, नगरों में चित्रकारों की बढ़ती हुई संख्या तथा तंजौर, त्रिचनापल्ली आदि स्थानों में ढलती हुई धातुओं की मूर्तियाँ, इस बात की द्योतक थीं कि ललित कला इस काल में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई थी।

तालिकोट के युद्ध के उपरान्त मुसलमानी सेना ने छः मास तक विजयनगर में रुककर जिस तरह भी नगर को जलाते बना जलाकर राख कर दिया था फिर भी कृष्णदेव राय द्वारा निर्मित प्रसिद्ध विट्ठल स्वामी और हजाराराम के मन्दिरों के ध्वंसावशेष आज प्रमाणित करने में समर्थ हैं कि सम्राट के युग में वास्तु कला भी अपने शिखर पर थी।

अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री आफ इन्डियन एन्ड इंडोनिशियन आर्ट' में डा० कुमार स्वामी ने यह सिद्ध कर दिया है कि कृष्णदेव राय के शासन काल में कला अपनी सीमा का उल्लंघन कर गई थी।

श्री वासुदेव उपाध्याय ने तो यहां तक लिख दिया है 'XXX भवनों की सुन्दरता के कारण विजयनगर एशिया का एक प्रधान स्थान समझा जाता था XXX।'

सम्राट ने बड़ी-बड़ी झीलें, तालाबों और नहरों का भी निर्माण कराया था।

विदेशी यात्रियों और इतिहासकारों के अनुसार कृष्णदेव राय के समय में विजयनगर साम्राज्य की जनसंख्या १ करोड़ ८० लाख के लगभग थी।

राजधानी की जनसंख्या १२ लाख थी।

६ लाख के लगभग केवल सम्राट की सेना थी।

रामराय इस उपन्यास का नायक है।
यह आरविदु वंश का था।
सन् १५६२ ई० में यह साम्राज्य का सम्राट घोषित
हुआ था।
इसके प्रारम्भिक जीवन के विषय में इतिहासकारों के बीच
वड़ा मतभेद है।

रामराय के पिता का नाम श्री रंगराय था और उसका विवाह कृष्णदेव राय की पुत्री तिरुमलाम्बा से हुआ था। इसकी पुष्टि में डा० हुलजेस (Dr. Hullzsch) ने एपीग्रेफिया इन्डिका (Epigraphia Indica) में जो वंश वृक्ष दे रक्खा है वह इस प्रकार है—
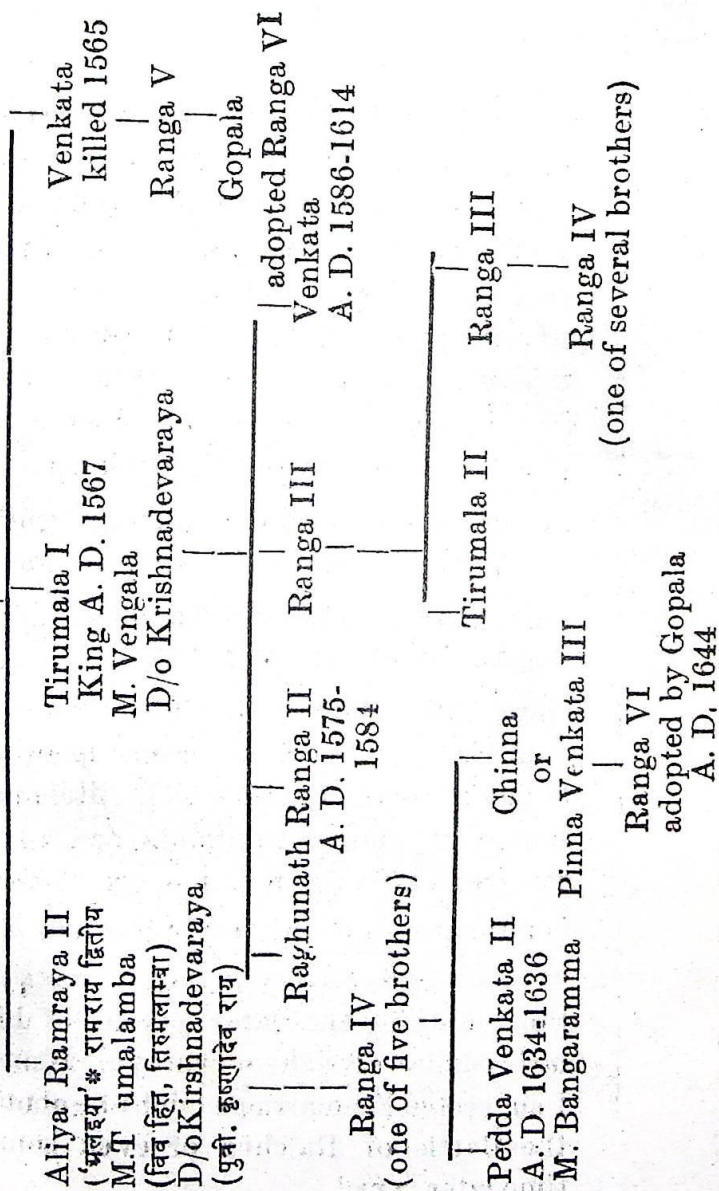
*'अलइया' बड़े दामाद को कहते हैं।

रामराय पाँच भाई थे। दो भाई इससे बड़े थे और दो छोटे। बहुत कुछ ढूँढ़ने पर भी जब रामराय के प्रारम्भिक जीवन के विषय में वास्तविकता की जानकारी न हो सकी तो मैं बड़ा निराश हुआ। तब मैंने श्री के. राघव चारलू—जिन्होंने कृष्णदेव राय पर तमाम प्रामाणिक खोजें की हैं—को पत्र लिख कर कुछ प्रकाश डालने के लिये आग्रह किया। उन्होंने मुझे जो पत्र लिखे थे वे इस प्रकार हैं— xxx Nothing definitely is known about his (Ramraya) early days. He belonged to Kurnool (then Kandanolu) & his family was large and influential 'xxx. Ramraya must have been his (Krishnadevaraya) Son-in-law about 1520 A.D. and associated with him in his later life only. xxx. He must have been married about the time of 1520 A.D., Raichur Battle and come into prominence. xxx.' पत्र के अन्त में उन्होंने पुनः लिखा था—'xxx There is no material for his early life and he is associated with Vijaynagar inscriptions only in the later period of his father-in-law Krishnadevaraya. Hence I suggested his marriage might be about the Battle of Raichur or even some time later. xxx.'

अर्थात्—'रामराय के प्रारम्भिक जीवन के विषय में कुछ भी सही रूप से विदित नहीं है। वह कुरनूल (उस समय का कन्डनोलू) का रहने वाला था और उसका परिवार प्रभावशाली और वड़ा था। XXX रामराय १५२० ई० के लगभग कृष्णदेव राय का दामाद अवश्य बन गया होगा और वह कृष्णदेव राय के बाद के जीवन से ही सम्बंधित प्रतीत होता है। XXX उसका विवाह १५२० ई०—रायचूर युद्ध—के लगभग अवश्य हो गया होगा और तभी से उसकी प्रधानता भी बढ़ी होगी। XXX उसके प्रारम्भिक जीवन पर कोई सामग्री नहीं है और उसका विजयनगर शिलालेखों में उल्लेख उसके श्वसुर कृष्णदेव राय के बाद वाले काल में ही मिलता है। इसलिये मैंने उसके विवाह की मान्यता रायचूर युद्ध के लगभग अथवा उसके कुछ समय बाद की दी है।'

रामराय लम्बे-चौड़े डीलडौल का मनुष्य था। उसका व्यक्तित्व आकर्षक था।

वह साहित्य प्रेमी और विद्वानों का आश्रय दाता था।

बहादुरी उसके अंग-अंग से टपकती थी।

शिलालेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि वैरी उसके नाम को सुनकर थर्रा उठते थे।

वह अस्सी वर्ष की आयु में भी लड़ता हुआ युद्ध-क्षेत्र में मारा गया था।

श्री के. राघव चारलू ने रामराय का वंशवृक्ष भी मुझे भेजा था जो इस प्रकार है—

(Pinnaraja)
बुक्का राजा
(Bukkaraja)
अब्बालादेवी
(Abbala Devi)
सिंगाराजा
(Singaraja)
बल्लादेवी
(Balla Devi)
रामराजा
(Ramraja)
Ruled in Kandanolu
विवाहित ४ पत्नियाँ
अनबालम्बा
(Anbalamba)
लक्काम्बा
(Lakkamba)
रमगाम्बा
(Ramgamamba)
अमलाम्बा
(Amlamba)
तिम्मा
(Timma)
कोंडा
(Konda)
श्रीरंग
(Sri Ranga)
कन्डनोलू या कुरनूल
'अलइया' रामराय
('Aliya' Ramraya)
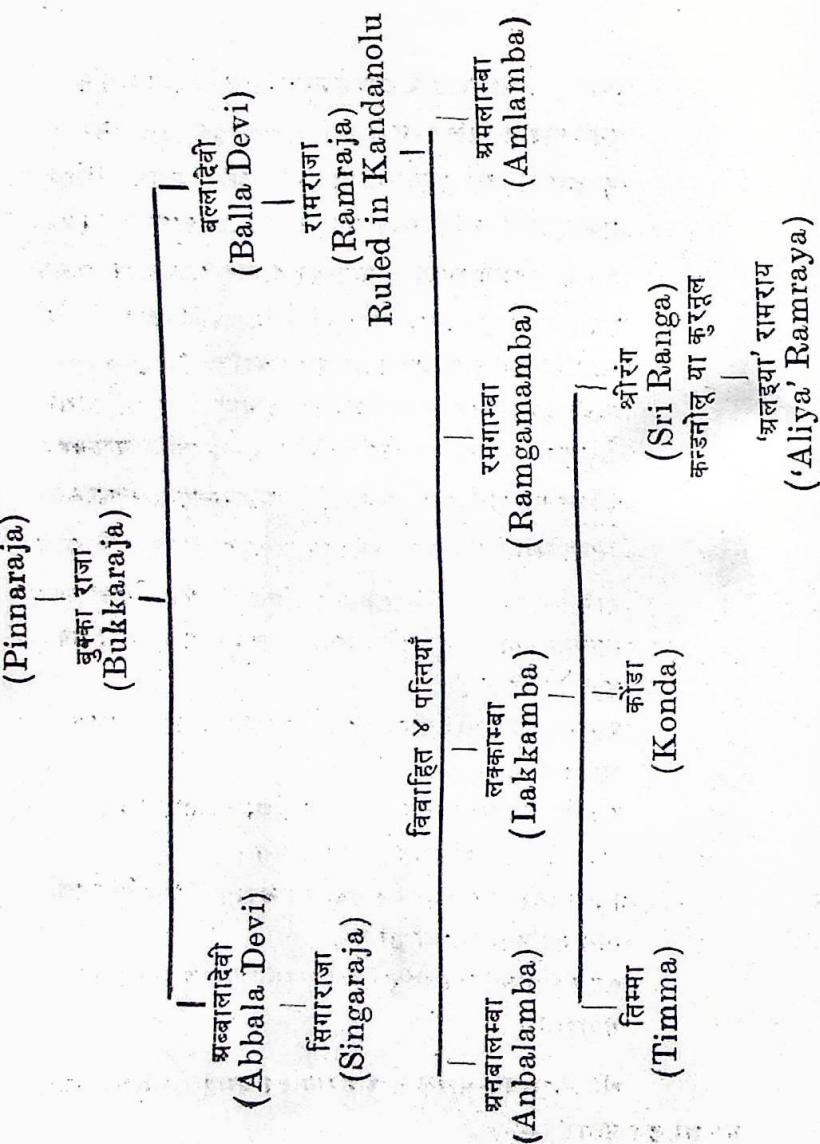
विवश होकर मुझे रामराय के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में फिरिश्ता के कथन को मान्यता देनी पड़ी ।
उसके कथनानुसार रामराय गोलकुन्डा के कुतुबशाह के एक जिले का शासक था। बीजापुर का आदिलशाह किसी कारण वश उससे असंतुष्ट हो गया और उसने कुतुबशाह से कह कर बुरी तरह से उसे निकाल बाहर करवाया ।
रामराय प्रतिष्ठा रहित विजयनगर लौटा ।
कृष्णदेव राय ने इसे योग्य और बहादुर देखकर अपनी पुत्री ब्याह दी और उसे तमिल देश का नायक नियुक्त कर दिया ।
उपन्यास में उरूसी और रामराय के प्रेमालाप की कथा इसी आधार पर रची गई है ।
रामराय का चरित्र वर्णन करते हुए श्री वासुदेव उपाध्याय ने लिखा है—'रामराय एक न्याय परायण, साहसी तथा शक्तिशाली राजा था। उसने आदर्श रीति से शासन किया । वह दयावान होते हुए भी शत्रुओं के लिये कठोर था । उसके गुण उसके उल्लेखों में उल्लिखित हैं।[1] xxx वह संगीत से भी प्रेम रखता था तथा स्वयं वीणा बजाया करता था । xxx ।'

सालुव तिम्म सम्राट कृष्णदेव राय का प्रधान मंत्री था और 'अप्पा जी' के नाम से सम्बोधित होता था ।
वह सम्राट का दाहिना हाथ समझा जाता था और उसकी बड़ी धाक थी परन्तु इतिहासकार न्युनिज के कथनानुसार उसने कृष्णदेव राय के छः वर्षीय पुत्र को जिसे सम्राट ने साम्राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया था—विष देकर मार डाला था ।
दुखी पिता ने अप्पा जी, उसके पुत्र तिम्मप्पा तथा अनुज

१. एपिग्रेफिका कर्नाटिका भाग ५

गोविन्द राजा को बन्दी बनाकर अन्त में सबकी आँखें निकलवा लीं।

'Vyasraja was the leading Dvaita philosopher in the days of Krishnadeva-raya. He was the son of Ramacharya and Sitamba and born on 2nd April 1447 A. D. He became a Sannyasin in 1555 A. D. and studied under Brahamanyatirtha and Sripada-raja. He died in 1539 A.D. xxx. The Vaishnavism of Vallabha, as the form of Sudha-dvaita, was also patronized. Vallabha requested by the king, defeated all opponents of Vaishnavism and was bathed in gold by the king. In this Vallabha is said to have been assisted by Vyasraja. xxx.' (Vijayanagar Sexcen-tenary Commemoration Volume.)

अर्थात्—'व्यासराज कृष्णदेव राय के समय में द्वैत दर्शन का बहुत बड़ा दार्शनिक था। वह रामाचार्य और सीताम्बा का पुत्र था तथा उसका जन्म दिन २ अप्रैल, १४४७ ई० था। सन् १५५५ ई० में उसने सन्यास ले लिया और ब्राह्मण्य तीर्थ तथा श्री पदराज से शिक्षा ग्रहण करता रहा। उसकी मृत्यु १५३९ में हुई थी। xxx वल्लभ के वैष्णवमत को शुद्ध द्वैत के रूप में संरक्षण प्राप्त हुआ। राजा के आग्रह पर वल्लभ ने वैष्णव मत के विरोधियों को परास्त करके स्वर्ण में स्नान किया। कहा जाता है कि इस कार्य में वल्लभ को

व्यासराज से सहयोग मिला था।

मैं लिख चुका हूँ कि विजयनगर काल में वेश्याओं की बड़ी प्रतिष्ठा थी। उनका जीवन आज जैसा नहीं था। पेई कहता है—'xxx These women are of loose character and live in the best streets that are in the city; it is the same in all cities; their streets have the best rows of houses. They are very much esteemed, and are classed among those honoured ones who are the mistresses of their captains; any respectable man may go to their houses without any blame attaching thereto. These women (are allowed) even to enter the presence of the wives of the king & they stay with tham & eat betel with them, a thing which no other person may do, no metter what his rank may be. xxx.' (A Forgotten Empire).

अर्थात—'ये स्त्रियाँ चरित्र की हीन हैं और नगर के सबसे अच्छे मार्गों पर रहती हैं। ऐसी व्यवस्था प्रत्येक शहर में देखने को मिलती है। इनकी सड़कों के पंक्तिवद्ध मकान अत्यन्त सुन्दर हैं। इनका अत्यधिक आदर है और इनकी गणना उन प्रतिष्ठित स्त्रियों में होती हैं जिनमें नायकों और सरदारों की पत्नियाँ आती हैं। कोई भी सम्मानित व्यक्ति बिना किसी दोष का भागी बने इनके घर जा सकता है। ये स्त्रियाँ राजा की पत्नियों से मिलती हैं और उनके साथ बैठकर पान खाती हैं जो बड़े से बड़े

पदाधिकारी को भी यह अधिकार प्राप्त नहीं है।'
मुख्य पात्रों में केवल विशभदेव और नीलाम्बई काल्पनिक हैं।
गौण पात्र सब ऐतिहासिक हैं केवल उरूसी को छोड़कर।
उपन्यास में घटने वाली समस्त घटनायें वास्तविक और प्रामाणिक हैं।
नगर तथा विभिन्न स्थानों के चित्रण उसी रूप में किए गए हैं जैसे वे थे। अपनी ओर से कुछ जोड़ने का प्रयत्न नहीं हुआ है।

अन्त में—

उपन्यासकार अनुज प्रेम शंकर, श्री शम्भू रत्न त्रिपाठी, सम्पादक, साप्ताहिक 'मनु', डा० शिवकुमार मिश्र, सागर विश्वविद्यालय, डा० रमेश कुन्तल मेघ, पंजाब विश्वविद्यालय, प्रो० मदनमोहन शर्मा और श्री राजेन्द्रसिंह के सहयोग का मैं अत्यधिक आभारी हूँ।

श्री लक्ष्मीचन्द श्रीवास्तव और श्रीमती जयमंगला श्रीवास्तव की सहायता का मैं बड़ा कृतज्ञ हूँ।

उमाशंकर

ख़ास बाजार
कानपुर
१-६-६१

एक

श्वेत पत्थरों से निर्मित परकोटे के मध्य में उस विशाल राजप्रासाद के भीतरी द्वार से रजत पत्तरों से मढ़ा हुआ एक अत्यन्त सुन्दर रथ निकला। बाहर का प्रहरी सचेत हुआ—'राजकुमारी तिरुमलाम्बा,' उसने ऊँचे स्वर से उच्चारण किया और अपनी गर्दन झुका ली।

रथ परकोटे के बाहर निकल कर दूसरे परकोटे में आया। मार्ग पर नियुक्त आगे वाले बल्लमधारी प्रहरी ने पुनः उच्चारण किया—'राजकुमारी तिरुमलाम्बा' और नतमस्तक हो गया। उसके आगे वाला प्रहरी भी सतर्क हुआ। प्रस्तर के चौड़े मार्ग पर हिनहिनाते हुये श्वेत वर्ण घोड़े सम्भवतः अधिक गर्व का अनुभव करने लगे थे।

मार्ग के दोनों ओर गुलाब की क्यारियाँ थीं। विभिन्न प्रकार के अनगिनित गुलाब के पौधों में खिले हुये पुष्पों से उड़ता हुआ पराग वातावरण को सुगंधमय बना रहा था। आगे रथ बढ़ता हुआ एक गोलाकार भव्य कक्ष के सामने पहुँचा जो दर्शनीय था। कक्ष हरे रंग के पत्थरों से बना हुआ जैसा प्रतीत होता था और उसके चारों ओर हरे रंग का ओसारा भी था जो बड़े-बड़े गोलाकार स्तम्भों पर स्थिर था। हर तरफ लाल रंग के मखमली पर्दे झूल रहे थे जिन पर ज़री का किया हुआ काम अद्वितीय था। खम्भों पर बने हुए बेल बूटे तथा नाना प्रकार के पशुओं की आकृतियाँ अनोखी थीं। रथ भवन के बायीं ओर से चक्कर काटता हुआ आगे बढ़ गया।

दूसरा परकोटा समाप्त हुआ। सारथि ने रास तानी। घोड़ों की चाल में तीव्रता आई। तीसरे परकोटे का घेरा अधिक बड़ा था। मार्ग के दोनों ओर एक जैसे एक खंड वाले मकान बने हुए थे जो कार्यालय सदृश्य दिखते थे। मकानों के अन्तिम छोर पर दो खंड का एक

भवन अवश्य था जिसे 'मुद्रा-गृह' कहा जाता था। साम्राज्य की मुद्रायें यहीं ढला करती थीं। प्राकृतिक सौंदर्य उत्पन्न करने के अभिप्रायवश फूलों की क्यारियाँ तथा स्थान-स्थान पर नीबू, चकोतरे और आमों के वृक्ष लगा दिये गये थे।

तीसरा कोट समाप्त हुआ। राजकुमारी तिरुमलाम्बा का रथ 'राज मार्ग' पर आया और उत्तर की ओर बढ़ चला। इस मार्ग पर जन-साधारण के आने की अनुमति नहीं थी। मार्ग के दोनों ओर सागौन के वृक्ष सुशोभित हो रहे थे। बल्लमधारी प्रहरियों के स्थान पर अब ढाल और तलवार धारण किये सशस्त्र सैनिक दृष्टिगोचर होने लगे थे। वातावरण में निस्तब्धता के साथ-साथ प्राकृतिक मादकता भी थी। घोड़े उड़ने लगे थे।

गुलाबी रंग के अतलस का चमकता हुआ घुटनों तक लम्बा अंगा, कमर में माणिक्य जड़ित सोने की करधनी जिसकी कसाव में नितम्बों और उरोजों की शोभा निखर आई थी, नीचे खुली हुई भरी-भरी पिंडुलियाँ तथा पैरों में मखमली ज़रीदार जूतियाँ, कमल के डँठल की भाँति सुकोमल खुली सुन्दर बाहों में बाजूबन्द तथा रत्न जड़ित कड़े, गले में हीरे का गुलूबंद कानों में लटकते हुए लम्बे २ कुन्डल, पीछे ग्रन्थि मुक्त केशों में खुंसे हुए सोने के फूल राजकुमारी तिरुमलाम्बा के यौवन और सौन्दर्य में चार चाँद लगा रहे थे। राजकुमारी के पार्श्व में एक और युवती बैठी हुई थी जो हृष्ट पुष्ट और कसे शरीर की दिख रही थी। उसने कमर में तलवार धारण कर रखी थी। सम्भवतः वह दासी और अंगरक्षक दोनों थी। तिरुमलाम्बा अपलक दृष्टि से सामने छूटते हुए मन्दिरों के गगनचुम्बी कलस तथा बड़ी बड़ी अट्टालिकाओं को देखती हुई कुछ सोच रही थी। रथ की तीव्रता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। लगभग आध प्रहर समाप्त होने को आया, वह उसी प्रकार मौन अपने विचारों में उलझ रही थी। चौथे कोट का द्वार आया। द्वार पर नियुक्त सैनिकों ने सामरिक अभिवादन दिया। रथ अपनी गति से आगे बढ़ गया।

पाँचवा कोट 'सैनिक कोट' के नाम से जाना जाता था। ६ लाख पदातिक, ६६ हजार अश्वारोही और दो हजार हाथियों के अतिरिक्त तोपशाला, रथशाला, ऊंटशाला तथा धनुषधारियों का एक नगर-सा बसा हुआ था। तिरुमलाम्बा ने गर्दन मोड़ी 'सैनिक कोट आरम्भ हुआ चित्रपुष्पी ?'

'हाँ राजकुमारी जी।' उसने उत्तर दिया और तत्क्षण दूसरी बात आरम्भ की 'सुनते हैं,' सम्भवत: सेविका राजकुमारी की मौन.वस्था से ऊब उठी थी, वह बातों के क्रम को वढ़ाकर शुष्क वातावरण में सरसता लाना चाहती थी, 'संसार में इतनी बड़ी सेना कहीं भी नहीं है। बहमनी के राजाओं को अब बड़ी चिन्ता होने लगी है।'

राजकुमारी ने उसकी बातों पर जैसे कुछ ध्यान न दिया हो। वह पुनः अपनी गुत्थी सुलझाने लगी थी। चित्रपुष्पी का प्रयास निष्फल गया। उसे चुप हो जाना पड़ा।

धूप की गर्मी वढ़ने लगी थी; परन्तु वायु अपनी शीतलता से उसकी उष्णता को क्षीण कर रही थी। कुछ समय उपरान्त राजकुमारी के मुँह से निकला 'कल का उत्सव सुन्दर रहा ?'

'सुन्दर क्यों न होता ? लोग भी तो सुन्दर सुन्दर आये हुये थे। कल तो पूरा वातावरण सम्मोहित हो उठा था।' चित्रपुष्पी के ओष्ठों पर मुसकान की रेखा फैल गई।

तिरुमलाम्बा ने गर्दन टेढ़ी करके बड़े अनूठे ढंग से देखा 'तेरी नस नस में पाजीपन है। सुन्दर व्यक्तियों के आगमन से क्या उत्सव सुन्दर हो जाया करता है ? दुष्ट। ऊटपटाँग की बातें किया करती है। ज़रा अपने सुन्दर व्यक्तियों के नाम तो बता। क्या तू सबसे अलग देखती है ? मैं भी तो वहाँ बैठी हुई थी।'

नाम अभी बताये देती हूँ किन्तु बात सत्य होने पर राजकुमारी जी को मुँह माँगा पुरस्कार देना होगा।'

'और यदि सत्य न हुई तो ?'

'प्राणदंड।'

'चल बता।'

'बताती हूँ। पहले यह तो सोच लूं कि पुरस्कार में मुझे माँगना क्या है?' वह क्षण भर तक आँखें बन्द करके सोचती रही तदुपरान्त बोली 'अब सुनिये। सर्वप्रथम नाम आता है मूलवापी के मण्डलेश्वर पुत्र श्री विशभदेव का,' उसने तिरछी दृष्टि से तिरुमलाम्बा को देखा और हँस पड़ी 'किन्तु कल उन्हें भी लोहा मानना पड़ा। एक क्षण के लिए दृष्टि हटती नहीं थी। मालूम पड़ रहा था ·····।'

राजकुमारी का अन्तर गुदगुदा उठा था; परन्तु बाहरी गम्भीरता को उसने उसी प्रकार बनाये रक्खा 'आगे बता आगे। इस वाक्य चातुरी से काम नहीं बनने का। दंड के विषय में मेरा हृदय बड़ा कठोर है।'

'कठोर है तभी तो कल दया की भीख माँग रहे थे; अन्यथा अब तक काम सुलझ न गया होता?'

तिरुमलाम्बा को हँसी आगई 'चुप रह। कहाँ की बात और कहां लाकर जोड़ दिया। उत्तर तो तेरे मस्तिष्क में मानों पहले ही से गढ़े होते हैं।'

चित्रपुष्पी ने सिर नवा लिया। परन्तु कुछ ही क्षण उपरान्त उसने फिर छेड़ा 'परन्तु वास्तव में जैसी प्रशंसा सुनती थी वैसे वह निकले भी। मैं समझती हूँ हम्पी* क्या पूरे साम्राज्य में ऐसे सुन्दर व्यक्ति इक्के-दुक्के मिलेंगे। जोड़ी अगर बनी तो शोभा देखते बनेगी। लोगों ··।'

राजकुमारी ने उसका कान पकड़ा 'अब चुप होती है या रथ से नीचे उतार दूँ?'

'बस एक बात पूछ लूँ फिर बिल्कुल नहीं बोलूँगी।' चित्रपुष्पी समझ रही थी कि राजकुमारी को भी उसकी बातों में आनन्द मिल रहा था।

'नहीं। एकदम नहीं।'

---

*हम्पी—राजधानी।

चित्रपुष्पी मुस्कराती हुई मौन हो गई।

रथ ने छठे कोट में प्रवेश किया। दूर इधर उधर मिट्टी के छोटे-छोटे मकान किन्तु साफ सुथरे और लिपेपुते दिखलाई पड़ने लगे थे। स्थान स्थान पर बड़े-बड़े पक्के तालाब भी देखने में आ जाते थे। बस्ती घनी थी और अधिकतर मजदूरों, सेवकों, कारीगरों और उन छोटे-छोटे व्यापारियों की थी जिनकी जीविका रोज की कमाई पर चला करती थी। छठवें कोट के उपरान्त सातवाँ कोट आया। अभी रथ द्वार से निकल भी नहीं पाया था कि सम्भवत: प्रतीक्षा में खड़े उन पन्द्रह-बीस सशस्त्र अश्वारोहियों ने रास तानी और राजकुमारी के रथ के आगे आगे चलने लगे। सैनिकों के अस्त्र और वस्त्र इस बात का संकेत कर रहे थे कि मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति तथा सवारियाँ सतर्क हो जायं।

शीघ्र रथ पश्चिम की ओर मुड़ता हुआ मुख्य मार्ग पर आ गया। सड़क बहुत चौड़ी थी फिर भी विभिन्न प्रकार की वस्तुओं से लदी हुई बैल और ऊँट गाड़ियाँ, सेठियों के द्रुतगामी रथ, घोड़ों पर आने जाने वाले व्यक्ति तथा पैदल चलने वालों की संख्या इतनी अधिक थी कि यदि स्थान स्थान पर **कायस*** सार का उचित प्रबन्ध न हो तो बात का बतंगड़ बनते देर नहीं लग सकती थी। सारथि ने रथ की चाल कुछ धीमी की। रथ नगर छोड़ता हुआ विशाल द्वार से बाहर निकल गया। यह सड़क हम्पी से गोआ को सीधी जाती थी। समुद्र पार पश्चिमी जगत का व्यापार और उस व्यापार के द्वारा साम्राज्य का विभिन्न देशों से सम्पर्क इसी मार्ग द्वारा संभव हुआ करता था। इस मार्ग का बड़ा महत्व था।

सशस्त्र अश्वारोहियों के पीछे राजकुमारी तिरुमलाम्बा का रथ कुछ अन्तर देकर चलने लगा। घोड़ों ने हवा से होड़ लगा दी। राजकुमारी ने पूछा 'व्यासराज का नाम तुमने सुना है चित्रपुष्पी ?'

'क्यों नहीं सुना है ? वह तो मनुष्य के रूप में देवता तुल्य हैं। बाल

---

* कायस—पुलिस

ब्रह्मचारी होना साधारण व्यक्तियों का काम नहीं। क्या राजगुरु की कुटिया पर उनका भी आगमन हुआ है ?'

'हाँ। उन्हीं के दर्शनार्थ तो चल रही हूँ। उनकी विद्वत्ता की बड़ी चर्चा सुन रक्खी है।'

'गोविन्द की कृपा से जीवन सफल हुआ, नहीं उनके दर्शन कहाँ बदा थे।'

'नहीं। अब बदा होंगे। पिता जी के आग्रह को उन्होंने स्वीकार कर लिया है। अगले वर्ष से उनका अधिक समय अब हम्पी में ही व्यतीत होगा। वे अब घूम-घूम कर उपदेश देंगे।'

चित्रपुष्पी तनिक धीरे से बोली 'अवसर अच्छा है। प्रभु के आशीर्वाद से मनोरथ सिद्ध हो जायगा।'

राजकुमारी ने उसे घूरा 'मेरे मनोरथ की तुझे बड़ी चिन्ता है ? तू कोई अपना मनोरथ क्यों नहीं सिद्ध कर लेती ? कल से प्राण खा रक्खा है। जब देखो तब वही बात। मुझे तो पागल बना देगी।'

'पागल ही बन कर तो सच्चा आन्नद उठाया जाता है राजकुमारी जी ! प्रेम की दुनियाँ में इसी की आवश्यकता है। पागल बनने का बार-बार अवसर थोड़े मिलता है जो ····।'

'अच्छा-अच्छा। अब बकवास बन्द करती है या नहीं ?'

चित्रपुष्पी ने अपने दोनों कान पकड़ लिये 'अब नहीं बोलूँगी।' उसने उसांस ली और हाथ जोड़ती हुई आकाश की ओर देखकर बुदबुदाई 'प्रभु, स्वामिनी की कार्य सिद्धि में विलम्ब न हो।'

तिरुमलाम्बा मुँह फेर कर हँसने लगी।

रथ कुछ रुकता हुआ सड़क से उतर कर बाँयीं ओर जंगल में लीक पर चलने लगा। लीक चौड़ी और असुविधा रहित थी। यह तुंगभद्रा के किनारे तक जाती थी जहाँ राजगुरु रंगनाथ दीक्षित की कुटिया बनी हुई थी। प्रति वर्ष राजगुरु दो मास के लिये तुंगभद्रा के तट पर आकर एकान्त सेवन किया करते थे। इस दो मास की अवधि में वह राज-

परिवार के व्यक्तियों के अतिरिक्त, अन्य किसी से नहीं मिला करते थे।

राजकुमारी के रथ के पहुँचने में बहुत समय नहीं लगा। स्थान समीप आने पर आगे के अश्वारोही सैनिक लीक के दोनों ओर अपने घोड़ों को रोकते हुये मस्तक नवा कर खड़े हो गये। सारथि ने कुछ आगे और बढ़ाकर निश्चित स्थान पर रथ रोक लिया। दोनो उतर पड़ीं।

कल कल बहती हुई तुंगभद्रा की ऊँची कगार पर, सघन वृक्षों की छाया में राजगुरु रंगनाथ दीक्षित और उस युग के सबसे बड़े दार्शनिक तथा बाल ब्रह्मचारी व्यासराज बैठे हुये द्वैत-अद्वैत के प्रश्न पर कुछ विचार विमर्श कर रहे थे। दोनों की आयु लगभग सत्तर वर्ष की थी; परन्तु श्वेत दाढ़ी और बालों के कारण राजगुरु अधिक वृद्ध दिखते थे। आहट पाकर राजगुरु की दृष्टि मुड़ी—सामने तिरुमलाम्बा आती हुई दिखलाई पड़ी। राजकुमारी ने शीघ्रता से आगे बढ़कर राजगुरु के चरण रज को मस्तक से लगाया तदुपरान्त व्यासराज की रज को। चित्रपुष्पी ने भी ऐसा ही किया।

राजकुमारी को पार्श्व में बिठलाते हुये राजगुरु बोले 'सम्राट् की पुत्री तिरु है व्यासराज। तुम्हारे दर्शनों की बड़ी इच्छुक थी। अध्ययन से इसे अधिक रुचि है। सम्भवतः तुमसे कुछ जानना भी चाहेगी।'

सन्यासी मुस्कराये; परन्तु उनकी मुस्कराहट में स्नेह था—'पूछो बेटी। शंकाओं का निवारण अनिवार्य है। तुम्हें अपने जीवन के लिये उचित मार्ग ढूंढ़ना है न ?'

'प्रभु यहां कब तक रुकने का विचार कर रहे हैं ?'

'लगभग एक सप्ताह तक—।'

'तब तो मुझे नित्य दर्शनार्थ आने की अनुमति मिल जायेगी ?'

'यदि मैं कह भी दूं नहीं तो क्या मेरी बातों को तू मान लेगी ?

'तुझे कौन रोक सकता है रे।' बाबा तुल्य व्यासराज मुसकराने लगे 'पूछ। क्या पूछना चाहती है ?'

'कल रात पिताजी ने अन्तःपुर में भोजनोपरान्त कविगोष्ठी का

आयोजन रक्खा था। कुछ समय तक तो कार्यक्रम चलता रहा; परन्तु बीच में कहीं माता जी ने जीवन-मरण के प्रश्न को उठा दिया। फल-स्वरूप कविता के स्थान पर वादविवाद आरम्भ हो गया और फिर जीव, आत्मा, जगत, संसार, ईश्वर आदि पर तर्क वितर्क होने लगे। कविगोष्ठी में मूलवापी के मण्डलेश्वर के पुत्र श्री विशभदेव भी आमन्त्रित थे। उन्होंने····· ।'

'मैं उसे जानता हूँ तिरु। वह मेरे आश्रम पर आ चुका है। नास्तिक होते हुये भी उसके गहन अध्ययन और कुशाग्र बुद्धि की सराहना तो करनी ही पड़ेगी। वह योग्य व्यक्ति है।'

'सो तो ठीक है पर क्या उनके तर्कों का कोई खंडन नहीं है?' तिरू ने आश्चर्य से देखा।

व्यासराज ने अपने सिर पर हाथ फेरा 'सत्य जो सच्चिदानन्द है वह भला कहीं तर्कों के द्वारा असत्य सिद्ध हो सकता है? उसने क्या कहा था?' दार्शनिक ने अनुमान लगा लिया था कि विशभदेव ने अपने तर्कों के बल पर किस सिद्धान्त की पुष्टि की होगी।

'उन्होंने बताया कि इन्द्रिय-गम्य जगत ही सद्वस्तु है। शेष मिथ्या और कल्पनिक है। इस कारण वृहदारण्यक उपनिषद् के इस वाक्य—'न प्रेत्य संज्ञास्ति"—को ही ध्यान में रखकर जीवन को सुखी और कल्याणकारी बनाया जा सकता है अन्यथा नही।'

'ठीक। पर तूने यह नहीं पूछा कि इस इन्द्रिय-गम्य जगत की उत्पत्ति कैसे हुई?'

'पूछा था और उसके उत्तर में उन्होंने कहा कि पृथ्वी, जल, तेज तथा वायु चार भूतों के आकस्मिक सम्मिलन से इसका निर्माण हुआ है।'

'और इन भूत चतुष्टय को बनाने वाला कौन है?' दार्शनिक तर्क के द्वारा विशभदेव के सिद्धान्त को खंडित करके तिरू के मस्तिष्क में

मरण के अनन्तर चैतन्य नहीं रहता।

अपने मत का सही बीज रोपना चाह रहा था।

'ये स्वयं बने हैं।' उन्होंने उत्तर दिया था।

व्यासराज वैसे ही गम्भीर शब्दों में बोले 'उचित है। फिर यह सिद्ध हो गया कि इन्हीं भौतिक परमाणुओं से जगत, विषय ग्राहिणी इन्द्रियाँ और शरीर उत्पन्न हुये।'

'जी हाँ। उन्होंने यही तर्क रक्खा था।'

वृद्ध मुसकराये 'बेटी, यदि विशभदेव के इन तर्कों को मान भी लिया जाय तो भी एक शंका अभी बनी रह जाती है। क्या भौतिक परमाणुओं से मन और बुद्धि जैसे सूक्ष्म पदार्थों की भी उत्पत्ति सम्भावित है?'

राजकुमारी विस्फारित नेत्रों से देखने लगी।

'असम्भव है तिरु। इन्हें जन्म देने वाली दूसरी शक्ति है और वह प्रकृति है। प्रकृति जननी है जो मूल कारण होने के हेतु अपरिमित और स्वतंत्र है जबकि जगत के समस्त पदार्थ सीमित, परिमित और परतंत्र हैं। दूसरी बात, जब जगत के पदार्थों में त्रिविध गुणों की सत्ता सर्वत्र दृष्टिगोचर हो रही है तो यह निश्चित है कि ये पदार्थ सुख और दुख दोनों को उत्पन्न करने वाले हैं। इसलिए एक ऐसा मूल कारण अवश्य होना चाहिए जिसमें इन विशेषताओं का सद्भाव हो। आविर्भाव काल में कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है और विनाश में कार्य का उसी कारण में विलय हो जाना होता है। इस प्रकार सृष्टि काल में पदार्थ जिस मूल कारण से उत्पन्न होते हैं, प्रलय में उसी में विलीन हो जाते हैं। परिणामस्वरूप इस इन्द्रियगम्य जगत पर उस अपरिमित, स्वतंत्र और सर्वव्यापक को समझना उचित होगा जिसकी कृपा से प्राणीमात्र इह लोक से छुटकारा पाकर मोक्ष को प्राप्त होता है। यही है जीवन का वास्तविक सुख।'

तिरुमलाम्बा का हृदय गद्गद् हो उठा 'एक बहुत बड़ी द्विधा प्रभु ने दूर कर दी। विशभदेव से भेंट होने पर इसका उत्तर पूछूँगी। देखती हूँ अब वह कौन सा तर्क रखते हैं।' उस अठ्ठारह वर्षीय बाला को

वही वस्तु प्राप्त हुई थी जिसकी उसे खोज थी। उसने राजगुरु की ओर देखा, 'अगले वर्ष प्रभु ने पिताजी से हम्पी में पधारने का वचन दे रक्खा है। ऐसा न हो कि आगामी वर्ष में प्रभु कहीं और का कार्यक्रम बना लें। उस समय मैं सारा दोष आपके ही मत्थे मढ़ूँगी। प्रभु के लाने का सम्पूर्ण दायित्व आप के ऊपर है।'

राजगुरु हँसने लगे, 'सुन लिया तुमने ?' वह व्यासराज से बोले 'यदि अगले वर्ष तुम्हारा आना न हुआ तो मुझे एक क्षण भी चैन से बैठने नहीं देगी।'

सन्यासी मुसकराने लगे, 'नहीं। आगामी वर्ष से,' उनका सम्बोधन राजकुमारी को था 'मेरा अधिक समय तेरी राजधानी में व्यतीत होगा। ठीक है ?'

'जी।' वह उठी और दोनों गुरुओं के चरण स्पर्श करती हुई जाने के लिए अनुमति माँगने लगी।

दो

रामेश्वरम् से लेकर उत्तर में कृष्णा तक तथा पश्चिमी समुद्र से लेकर पूरब में उड़ीसा तक लगभग छ सौ कोस के दायरे में फैला हुआ विजय-नगर साम्राज्य अपने वैभव की सीमा पर पहुँच चुका था। सम्राट् कृष्णदेव राय के पराक्रम से वैरी थर्रा उठे थे। उसकी तलवार अपना सानी नहीं रख रही थी। जो किसी से नहीं हो सका था उसको उसने पूरा कर दिखाया था। फलस्वरूप सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक

तीनों ही दृष्टियों से देश उत्तरोतर उन्नति की ओर अग्रसर होता चला जा रहा था।

इसी साम्राज्य की राजधानी थी विजयनगर जो हम्पी के नाम से जानी जाती थी। तुंगभद्रा के पार्श्व में, हेमकूट पर्वत पर, तीस कोस के घेरे में बसा हुआ यह शहर उस युग में सर्व सम्पन्न और अद्वितीय समझा जाता था। यहाँ की जन संख्या लगभग बारह लाख थी। हम्पी तीन भागों में बंटी थी। बीच के भाग में विरुपाक्ष[1] का विशाल मन्दिर और 'हम्पी बाज़ार' था दूसरे भागों में सम्राट् का राज़प्रासाद, ऊंचे पदाधिकारियों की ऊँची अट्टालिकायें, साम्राज्य के विभिन्न विभागों के कार्यालय, हजारराम का प्रसिद्ध मन्दिर तथा 'विज़यगृह' आदि थे। तीसरा भाग 'नांगलपुर' के नाम से जाना जाता था जिसका निर्माणकर्ता स्वयं सम्राट् कृष्णदेव राय था। सम्राट् ने अपनी माता नागम्बिका के नाम पर यह स्थान निर्मित किया था

भगवान विरुपाक्ष के विशाल मन्दिर के सामने लगभग कोस भर तक प्रस्तर की चौड़ी और चिकनी सड़क थी। इस सड़क पर दस रथ सरलतापूर्वक एक साथ चल सकते थे। सड़क के दोनों ओर बारामदायुक्त दो मंज़िली दूकानें थीं जहाँ हीरे जवाहरातों से लेकर अन्य सभी आवश्यकीय वस्तुयें बिका करती थीं। कपड़ों में छपे और सादे दोनों प्रकार के कपड़े थे। रेशमी कपड़ों की अधिक खपत थी। सूती वस्त्रों में रंग बिरंगी छींटों के प्रकार देखते ही बनते थे। विशेषकर कनपाई की 'चितली' नामक छींट तो इतनी आकर्षक और जनप्रिय थी कि प्रति गज दस बाराह[2] के हिसाब से बेची जाती थी।

दिन भर के तपे सूरज में नम्रता आई। मन्द बहती हुई वायु ने वातावरण को शीतल और सुखद बनाने का प्रयत्न किया। ऊपर आकाश में पक्षियों ने आमोद प्रमोद सहित अपने नीड़ों को प्रस्थान किया। संध्या के आगमन से प्रकृति उल्लसित हो उठी और फिर भला विजयनगर का

१. विरुपाक्ष—भगवान शिव २. बाराह—सोने का एक सिक्का।

जीवन इस आनन्द से क्यों वंचित रह सकता था ? हम्पी बाज़ार की चहलपहल बढ़ गई। गजरे वाले गुलाब के गजरों को डंडियों में लटकाये इधर-उधर घूमने लगे। कुछ लोग ऐसे भी दिखलाई पड़ रहे थे जिनके पास कलात्मक ढंग से बनाए हुये, इत्र सुवासित कागज के सुन्दर फूल और वेलें थीं ये फूल सम्भवतः स्त्रियों के जूड़े में लगाने के काम आते थे। धीरे-धीरे रथों की संख्या बढ़ी जिनमें तुर्कीनुमा कामदार लम्बी टोपी, कानों में हीरे के कुंडल, हाथों में भुजदण्ड, कमर में करधनी तथा हीरे की अँगूठियाँ धारण किये हुए साम्राज्य के सामन्त और उच्च पदाधिकारी आसीन थे। इन लोगों ने रेशमी अथवा मलमल का वस्त्र पहिन रक्खा था। सेठियों का शरीर अधिकतर नंगा था। वे लोग कमर से कन्धे तक कोई वस्त्र धारण नहीं करते थे टोपी के स्थान पर इनके सिरों पर पगड़ी थी। आभूषण वे उसी प्रकार पहिने हुए थे। स्वर्ण कुंडल धारण करने वाले व्यक्ति साधारण स्थिति के समझे जाते थे। ब्राह्मण भी सोने के कुंडल धारण करते थे। पर उनके कन्धे पर पड़ी हुई मलमल की पतली चादर इस बात की द्योतक थी कि वे द्विज परिवार के हैं।

रंगबिरंगे वस्त्रों और आभूषणों से अलंकृत स्त्री-पुरुषों की चमक-दमक, आकर्षक रथों में जुते हुये सुन्दर घोड़ों की टापों की टपटपटप ध्वनि, मखमली झोल के ऊपर चाँदी के हौदों में बैठे हुए गजपतियों का इधर-उधर आना-जाना; खिलौने वालों द्वारा पीपिहरी तथा धुन-धुने बजा बजाकर बच्चों को आकर्षित करके उनके माता-पिता को खरीदने के लिए बाध्य करना, बड़ी-बड़ी दूकानों की बड़ी-बड़ी सजावटों आदि ने बाज़ार की शोभा को बढ़ा दिया था। ऐसे ही मनोरंजक वातावरण में एक रथ जिसमें श्यामवर्ण के जुते हुए घोड़ों की कलंगी में लटकते हुए हीरों के टुकड़े झिलमिला रहे थे—आकर विरुपाक्ष मन्दिर के समीप खड़ा हुआ। रथपति जो स्वयं सारथि के रूप में बैठा हुआ था कूद कर नीचे आया। कुछ पुष्प मोल लिए और पुनः रथ पर बैठते हुए दाहिने हाथ

की रास को हिलाया। घोड़े मुड़ते हुए बाज़ार की ओर चल पड़े। जैसे सुन्दर घोड़े थे वैसा ही सुन्दर रथ और इन दोनों से भी अधिक सुन्दर था रथ-पति जिसका रूप युवतियों क्या पुरुषों तक को अपनी ओर आकृष्ट करने में समर्थ था। रथ पर दृष्टि पड़ते ही प्रत्येक के मुँह से बरवस निकल पड़ता—'विशभदेव !' हरि ने युवक विशभदेव को सभी कुछ दे रक्खा था।

बाज़ार में एक स्थान पर विशभदेव ने रथ रोका। कई गजरे वाले दौड़ आये और एक स्वर से अपने-अपने हारों की प्रशंसा करने लगे—'प्रभु ! मेरे फूलों को प्रभु, हमारे सुगंध का कोई मुकाबिले नहीं', उसने झट से एक हार सामने को बढ़ा दिया। तब तक तीसरा बोला, 'यह बकता है प्रभु ! सुगंध तो मेरे पुष्पों में है। बिलकुल ताजे हैं। अभी-अभी तोड़ कर बनाया है ?' उसने भी हार बढ़ा दिया।

विशभदेव ने मुस्कराते हुए एक 'तारा'* उसकी हथेली पर रख दिया और हार गले में डालते हुए रासों को ताना। घोड़े झूमकर आगे बढ़ चले।

बाज़ार के कोलाहल पूर्ण वातावरण को पीछे छोड़ता हुआ रथ दूसरी सड़क पर जा पहुँचा। यह मार्ग 'वधुनगर' होता हुआ राजसभा तक चला जाता था जो 'भुवन विजयम्' के नाम से विख्यात था। सम्राट् यहीं बैठकर दरबार किया करता था। सड़क की चौड़ाई उतनी ही थी जितनी बाज़ार की; परन्तु मध्य में बहती हुई नहर ने इसे दो भागों में बाँट रक्खा था। नहर का आकर्षण भी अनोखा था। दस-दस हाथ की दूरी पर दो-दो हाथ ऊँचे सुडौल कटे हुए काले पत्थरों की ओट पर बड़ी-बड़ी चट्टानों को काट कर बनाई हुई लगभग पाँच हाथ चौड़ी नहर शिल्प कला की विशेष परिचायक थी। पत्थरों को तराश कर इतना चिकना बना दिया गया था कि अन्दर स्थान-स्थान पर बनी हुई छोटी-बड़ी मछलियों की आकृतियाँ साकार हो उठी थीं। मार्ग के दोनों ओर

---
* तारा—चाँदी का सिक्का

सागौन के लम्बे-लम्बे वृक्ष शोभायमान थे।

रथ को 'वधुनगर' पहुँचने में बहुत समय नहीं लगा। एक बड़ी अट्टालिका जो चहार दीवारी से घिरी हुई थी उसी के मुख्य द्वार में रथ ने प्रवेश किया। अन्दर बागों के मध्य से होता हुआ रथ भवन के सामने आकर रुका। यहाँ चार छः रथ पहले से खड़े थे। विशभदेव ने अपना रथ एक कोने में लगाया और रथ से कूदता हुआ सीढ़ियों पर चढ़ने लगा। ऊपर सेविका ने झुककर प्रणाम किया।

'तुम्हारी स्वामिनी ....।' विशभदेव ने पूछा।

'प्रभु की प्रतीक्षा में हैं।' चतुर सेविका ने पुनः झुककर प्रणाम किया।

बरामदे से होता हुआ विशभदेव दूसरी ओर पहुँचा। उधर एक छोटी-सी फुलवारी थी। फुलवारी को पार करके वह बरामदे में जा पहुँचा। एक सेविका वहाँ भी खड़ी थी। उसने भी झुककर प्रणाम किया और विशभदेव के कुछ कहने के पूर्व ही बोल उठी 'स्वामिनी कई दिनों से प्रभु की प्रतीक्षा में हैं।'

विशभदेव ने एक वाराह उसकी हथेली पर रख दिया और सीढ़ियों चढ़ता हुआ दूसरे खंड पर जा पहुँचा।

चौकोर छत के मध्य में चौकोर खम्भों पर आधारित एक खुला हुआ बड़ा-सा कक्ष था। कक्ष के चारों ओर ओसारा भी था। ओसारा के चारों ओर मखमली पर्दे लगे थे जो इस समय खम्भों से बंधे हुये थे। अन्दर कक्ष में मखमली फर्श पर मखमली गावतकियों के सहारे कुछ सामन्त बैठे हुये थे। मध्य में राजनर्तकी नीलाम्बई जो विजयनगर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी, बैठी उनका मनोरंजन कर रही थी। तीस वर्षीय इस वेश्या का यौवन और रूप आज दिन भी बीस वर्षीय समझा जाता था। मादकता वही थी और सम्मोहन भी वैसा ही जिसको एक बार भी उसके समीप बैठने का अवसर मिला वह अपना भाग्य सराहता हुआ पुनः सामीप्य के लिए लालायित हो उठता था। यह विशेषता नीलाम्बई

की थी या उसके रूप यौवन की कहना कठिन है। कारण, तर्क से सिद्ध करने वालों की संख्या दोनों पक्ष में थी।

सामने विशभदेव को आता हुआ देखकर नीलाम्बई खड़ी हुई—मालूम पड़ा स्वर्ग लोक से रति उतर आई है। कमर से कंधे तक कोई वस्त्र नहीं था। केवल सुडौल उरोजों पर रेशमी चोली कसी हुई थी। कमर में लँहगा जैसा रेशमी वस्त्र था जिसे विशेष ढंग से लपेट कर पहिनने के कारण नितम्बों की सुडौलता उभर आई थी। कमर में मणि जटित करधनी थी। हाथों में कड़े और बाजूबन्द थे। अनूठे ग्रन्थियुक्त केश की शोभा केश विन्यास का अद्वितीय उदाहरण रख रही थीं। विधि ने रमणी में बड़ी मादकता दे रक्खी थी।

विशभदेव के समीप आने पर नीलाम्बई ने मुसकराते हुए प्रणाम किया 'पधारिये। इस बार तो मैं निराश हो गई थी। सम्भवतः प्रभु को आये तो कई दिन हो गये हैं? मुझ से कोई त्रुटि तो नहीं हो गई है?'

विशभदेव ने कोई उत्तर नहीं दिया। खड़े-खड़े निहारता रहा, 'कई मास उपरान्त देखने को मिली हो। पहले तुम्हें इच्छा भर देख लूँ उसके बाद त्रुटियों को बतलाऊँगा।' वह हँसता हुआ गावतकिये के सहारे बैठ गया।

नीलाम्बई ने पीछे खड़ी सेविका को देखा। सेविका ने पान की तश्तरी थमा दी। 'लीजिए।' नीलाम्बई ने उसके समीप बैठते हुए तश्तरी को सामने किया, 'अब तो मेरी त्रुटि अवगत कराई जायेगी?' उसने अनूठे ढंग से देखा।

'अवश्य। अवगत कराने के साथ-साथ भविष्य के लिये चेतावनी भी दी जायेगी।'

'यदि इतना स्नेह मिल सके तो जीवन धन्य न हो जाय प्रभु!'

विशभदेव हँसने लगा 'तुम्हारे यहां यही सीखने आता हूँ नीलाम्बई। कहने और करने में इतना अन्तर न बरतो।'

राजनर्तकी होठों में हंसती हुई अन्य व्यक्तियों से पान ग्रहण करने का आग्रह करने लगी।

सेवक प्रकाश जलाकर चले गये। जगमगाहट फैल गई। रूप का आकर्षण बढ़ गया। नीलाम्बई ने आगन्तुकों से कहा 'अब मैं आप सज्जनों से अवकाश की अनुमति चाहूँगी। मुझे आप से,' उसने विशभ-देव की ओर संकेत किया 'कुछ आवश्यक बातें करनी हैं। आशा है आप मेरी अशिष्टता पर ध्यान न देंगे।' वह हाथ जोड़ती हुई खड़ी हो गई।

लोगों को उठना पड़ा।

सब के चले जाने पर उसने दासी को आदेश दिया—'अन्य आगन्तुकों के लिए कल का समय रक्खा जाय। आज मिलना बिल्कुल सम्भव न हो सकेगा। समझ गई ?'

'जी स्वामिनी।' दासी सूचनार्थ नीचे चली गई।

नीलाम्बई बैठ गई 'बातों का आनन्द तो दो के बीच का है। जो चाहो कह लो और जो चाहो सुन लो।'

विशभदेव ने टोपी उतार कर रक्खी और अपने गले का गजरा उसके गले में डाल दिया 'आनन्द न बातों में है और न संख्या के बढ़ाने घटाने में। जो उपभोग्य हैं उन्हीं में आनन्द है और यही जीवन की सार्थकता है।'

वह मुसकराई 'पर क्या वह क्षणिक नही है ?' वह विशभदेव के भाव को समझ रही थी।

'क्षणिक तो जीवन भी है। पलक उठते हैं, पलक गिरते नहीं।'

किन्तु फिर भी उसमें संदिग्धत्व का अंश वर्तमान है न। सौ वर्ष की लम्बी अवधि का भी तो ध्यान रखना होगा।'

'तब तो और भी उत्तम है नीलाम्बई। सुख की उपलब्धि अधिक मात्रा में और अधिक समय तक की जा सकेगी।'

सेविका ने सुरापात्र लाकर रक्खा। नीलाम्बई ने पात्र में उड़ेल कर विशभदेव की ओर बढ़ाया। वह पी गया। 'मैं नहीं समझता कि तुम्हें' उसने नर्तकी के नेत्रों में अपने नेत्र डालते हुए पूछा 'प्रत्यक्ष के स्थान पर परोक्ष के लिए क्यों इतनी चिन्ता बनी रहती है ? परोक्ष में सत्य क्या

है इसकी जानकारी न तो किसी को है और न कभी किसी को हो सकेगी यह शरीर आत्मा है और मरण मुक्ति । अधिक से अधिक जहां तक सम्भव हो सके इन्द्रियों की संतुष्टि ही आत्मा की संतुष्टि है ।'

'पर इन्द्रियों में आकर्षण के साथ-साथ नवीनता का भी प्राबल्य है न प्रभु । क्या इनकी भी संतुष्टि की आशा की जा सकती है ?' उसने पुनः पात्र भर कर उसे थमा दिया ।

बिल्कुल नहीं की जा सकती और सच पूछो तो होना भी नहीं चाहिये । तृप्ति अकर्मण्यता की जननी है, जो समाज और सभ्यता के लिए घातक है । यह ऊंची अट्टालिका तथा शयन के लिए ये मखमली गद्दे, विलास की नई नई सामग्री तथा उनसे उत्पन्न नई नई मादकता सब उसी आकर्षण और नवीनता की देन हैं नीलाम्बई; अन्यथा आदिम निवासियों की भाँति झाड़ियों और पत्थरों पर ही सोकर जीवन निर्वाह करना पड़ता । हैं न ऐसी बात ?' वह मुसकराया और पात्र मुंह से लगाकर अधखुली दृष्टि से नीलाम्बई को निहारने लगा ।

नर्तकी तनिक भी विचलित नहीं हुई । वह विशभदेव की तर्कशक्ति को जानती थी । उसने उसी सहज भाव से खंडन किया'पर निद्रा का जैसा आनन्द उन व्यक्तियों को प्राप्त हो सका था क्या वैसे ही निद्रा इन मखमली गद्दों में है ? क्या आत्मीयता और सौहार्द्र की भावना वैसे ही है जैसे उनके बीच थी ? क्या हमारा आपका दृष्टिकोण संकुचित होकर अपने स्वार्थ को प्रधानता नहीं देने लगा है ? और यदि देने लगा है तो क्या स्वार्थरत व्यक्ति सुखों के मिलने पर उन आदिम निवासियों जैसी शान्ति का अनुभव कर सकेगा ?'

'बिल्कुल नहीं । मैं कब कह रहा हूँ कि वह कर सकेगा ?'

'फिर जहाँ शान्ति नहीं वहाँ सुख कैसा ?'

विशभदेव ठहाका मार कर हंस उठा, 'सुन्दरी ! जहाँ सुख है वहीं तो शान्ति होगी ।' तार्किक ने फिर घेर लिया ।

'किन्तु उस सुख के लिये एकरसता अनिवार्य है प्रभु ; भंवरे की

भांति प्रत्येक फूल पर बैठकर सुगन्ध लेने वालों को शान्ति का अनुभव नहीं हो सकेगा।' नीलाम्बई होठों में मुस्कराई और मदिरा से रिक्तपात्र को भरने लगी। उसने अकाट्य तर्क रख दिया था।

विशभदेव को आज प्रथम बार उत्तर देने के लिए कुछ सोचना पड़ा था; किन्तु उसकी दुर्बलता नीलाम्बई को विदित न हो सकी। उसने मदिरा पात्र मुँह से लगा लिया था। इतना अवसर उसके लिए पर्याप्त था। अन्तिम घूंट कंठ से उतारता हुआ वह बड़े इतमिनान से बोला 'इसी भोलेपन ने तो सारे साम्राज्य पर सम्मोहन डाल रखा है।' वह कुहनी के सहारे तिरछा लेटता हुआ उससे सट गया, 'नीलाम्बई! भंवरे की भाँति रसास्वादन करने की मनोवृत्ति प्राकृतिक है। दृश्यमान जगत के कण-कण में नवीनता का ग्रहण तथा प्राचीनता के त्याग का चिरन्तन सन्देश है। विहँसते हुए पुष्प का उपयोग होना चाहिए सुन्द ी; अन्यथा वह एक दिन सूख कर गिर जायेगा। सदैव के लिए गिर जायेगा।' उसने हाथ बढ़ाकर उसकी ठोढ़ी को पकड़ लिया।

धीरे से उसके हाथ को हटाती हुई नीलाम्बई हँसने लगी 'आप से तर्क करना बड़ा कठिन है।' उसने ताली बजाई।

सेविका उपस्थित हुई।

'भोजन……।'

'नहीं। इस समय राजकवि ने निमंत्रित कर रक्खा है।' वह टोपी पहनता हुआ खड़ा हो गया।

'पर इतनी जल्दी क्या है?'

'समय हो गया है।' उसके पैर उठ गये।

सीढ़ी के पास पहूँचने पर नीलाम्बई ने पूछा 'कल का मेरा निमंत्रण स्वीकार किया जायेगा?'

'नहीं।'

'क्यों?'

'इसका कारण तुम्हें ज्ञात है।' वह हँसता हुआ नीचे उतर गया।

तीन

भुवन विजयम् का वृहदाकार भवन चालीस विशाल शिलास्तम्भों पर आधारित था। दीवारें न थीं। रंगीन मोटे कपड़े के पर्दे चारों ओर लगे हुए थे जो इस समय खींचकर ऊपर उठा दिए गये थे। राज सभा प्रकाशित हो चुकी थी, परिणामस्वरूप स्तम्भों पर काट कर बनाई गई विभिन्न आकृतियाँ और मूर्तियाँ शिल्पी की प्रशंसा में उन्मुख हो उठी थीं। भवन का आकार आगे की ओर चौड़ा तथा पीछे की ओर संकरा था। यहीं पर साम्राज्य के अधिपति का स्वर्ण सिंहासन रक्खा हुआ था जिसमें जड़े हुए मणिमाणिक्य प्रकाश में झिलमिलाने लगे थे। शेष तीन भाग में पत्थर की कलात्मक ढंग से बनी युगल स्त्रियों की खड़ी अर्ध नंगी मूर्तियाँ लगी हुई थीं। फर्श पर विभिन्न प्रकार की कालीनें बिछाकर श्रेणियों का वर्गीकरण कर दिया गया था।

राजमार्ग पर प्रकाश-स्तम्भों के नीचे खड़े बल्लमधारी सैनिकों की सचेतता बढ़ी। स्त्री-पुरुषों का आगमन आरम्भ हो गया था। धीरे-धीरे रथों और घोड़ों की जमघट बढ़ने लगी। फिर कुछ समय उपरान्त ऐसे रथ आने लगे जिनके आगे मशालधारी अश्वारोही भी चल रहे थे; परन्तु इन मशालधारी अश्वारोहियों की संख्या पद प्रतिष्ठा के अनुसार भिन्न थी। किसी के चार तो किसी के छः और किसी के आठ तो किसी के बारह मशालधारी चल रहे थे। रात में सामन्त-सरदारों अथवा उच्च-पदाधिकारियों की यही एक पहिचान थी।

इसी बीच 'आन्ध्र कविता पितामह' राजकवि पेदण्ण का आगमन

हुआ। इनके साथ नन्दि तिमण्ण, अय्यलराजू रामभद्र कवि, धूर्जटि, मल्लण्ण, पिंगाली सूरण्ण, रामराज भूषण्ण और तेनालीराम कृष्ण कवि थे। ये सम्राट् के दरबार के 'अष्ट दिग्गज' थे और सम्राट् को इन पर अत्यधिक गर्व था।

राज सभा में बैठे हुए व्यक्तियों ने आन्ध्र कविता पितामह का स्वागत किया। राजकवि सबको प्रणाम करते हुए सिंहासन के समीप दाहिनी ओर बिछी कालीन पर जाकर बैठ गये

थोड़ी देर बाद दूर में दिखलाई पड़ता हुआ मशालों का आलोक फैला और वह ज्यों-ज्यों समीप होता गया उजाले में उतनी ही वृद्धि होती गई। लगभग डेढ़ सौ मशालधारी अश्वारोही रथ के आगे पीछे चल रहे थे। तब तक दो अश्वारोही तेजी से कहते हुए निकल गये। सावधान, सावधान, राजाधिराज परमेश्वर परम वैष्णव भुजबलप्रताप श्री कृष्णदेव राय महाराज पधार रहे हैं। सावधान।

दरबार में सन्नाटा खिच आया। लोग यथा स्थान खड़े हो गये।

सम्राट् का रथ 'भुवन विजयम्' के सामने आकर रुका। कृष्णदेव राय अपनी पट्टरानी तिरुमल देवी के साथ उतरा। पीछे उसकी अठारह वर्षीय पुत्री तिरुमलाम्बा भी थी। सम्राट् का कद औसत दर्जे का था। यद्यपि चेहरे पर चेचक के दाग थे; परन्तु गौर वर्ण और आकर्षक मुखाकृति होने के कारण उसकी गणना सुन्दर पुरुषों में की जा सकती थी। सिर पर तुर्कीनुमा कामदार लम्बी टोपी थी। घुटनों तक लटकता हुआ सफेद रेशमी वस्त्र था जिसपर सुनहले काम में गुलाब की कलियाँ कढ़ी हुई थी। आभूषणों में केवल हीरे के हार के अतिरिक्त और कुछ दिखलाई नहीं पड़ रहा था। पैर में नुकीला जरीदार मखमली जूता था।

सम्राट् के राज सभा में प्रवेश करते ही सबने मस्तक नवा लिया और प्रणाम किया। वह सिंहासन पर जाकर बैठ गया तदुपरान्त बैठने की अनुमति देता हुआ उसने सरसरी दृष्टि से चारों ओर देखकर कुछ रुकता हुआ बोला 'आप उपस्थित व्यक्तियों में सम्भवतः थोड़े लोग ऐसे

होंगे जो मूलवापी के मण्डलेश्वर के पुत्र विशभदेव के विषय में जानकारी रखते हों। मैं विशभदेव के अध्ययन की गूढ़ता और उनकी तर्क शक्ति से बड़ा प्रभावित हूँ। इसीलिए मैंने आज उनको विशेष रूप से निमंत्रित करके यह जानना चाहा है कि उनके मतानुसार संसार में उत्पन्न इसी प्राणी मात्र के जीवन का लक्ष्य क्या है ?' उसने विशभदेव की ओर देखा।

विशभदेव अपने स्थान से उठा और सम्राट् के सिंहासन से कुछ हट कर दाहिने पार्श्व में आकर खड़ा हो गया। 'भुवन विजदम्' में जलते हुए हजारों प्रकाश की ज्योति मानो विशभदेव के रूप किरण के सन्मुख धूमिल पड़ने लगी थी। प्रत्येक की दृष्टि उस पर जाकर अटक गई। तिरुमलाम्बा बार-बार देखती और बार-बार आँखें नीची कर लेती।

विशभदेव ने सम्बोधित किया 'यद्यपि राजकुल तम्बिरन के आदेशानुसार मुझे आप सबों के सामने मनुष्य के जीवन के लक्ष्य पर अपना मत प्रकट करना है फिर भी मैं चाहूँगा कि यदि बैठी हुई विद्वत् मंडली मेरे तर्कों का खंडन करके मेरी त्रुटियों को बता सके तो बड़ा उत्तम होगा। इससे मेरे जीवन को एक नई ज्योति मिलेगी।' वह भीतर ही भीतर मुसकराया। उसने तिरछी निगाह से राजकुमारी को देखा 'तो यह प्रत्यक्ष है' वह आगे बोला 'कि सुख हो अथवा दुख, आह्लाद हो अथवा चिन्ता, क्लेश हो या आराम प्रत्येक का अनुभव हम इसी शरीर द्वारा करते हैं। शरीर यदि है तो सब कुछ है और यदि नहीं है तो कुछ भी नहीं अतः ···· ।'

तब तक सामने से आवाज आई 'यह तो कोई तर्क नहीं हुआ मण्डलेश्वर पुत्र। जब तक आप कुछ सिद्ध न करलें तब·······।'

'मैं वही करने जा रहा हूँ बन्धुवर ! अभी मेरी बात समाप्त कहाँ हुई। क्या मैं आपसे एक बात पूछ सकता हूँ ?'

'पूछिये।'

'क्या आप जीव और जगत् के अतिरिक्त किसी तीसरी वस्तु के

अस्तित्व में भी विश्वास रखते हैं ?'

वह व्यक्ति खड़ा हो गया। गले में लटकता हुआ सोने का शिवलिंग चमक उठा। 'आप नास्तिक तो नहीं है ?' उसके शब्दों में रूखापन था।

विशभदेव मुस्कराया 'यह तो लड़ने वाली बात हुई महाशय, मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं। मैं जो पूछ रहा हूँ आप उसका उत्तर दें।'

उसके गाल पर जैसे किसी ने थप्पड़ मार दिया हो। उसने कुछ कर्कश स्वर में कहा 'जीव और जगत् के साथ साथ रचयिता परमेश्वर तथा घट-घट में व्याप्त उस सूक्ष्म अंश आत्मा पर भी विश्वास रखता हूँ और प्रमाणित कर सकता हूँ कि इनके ही अस्तितत्व से जीव और जगत् का अस्तित्व है; अन्यथा कुछ नहीं।'

'यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य की वस्तु होगी। कृपया प्रकाश डालने का कष्ट करें।'

उसने शिवलिंग को मस्तक से लगाया तदुपरान्त सीना फुलाता हुआ बोला 'क्या आप आप्त पुरुषों के वाक्यों की सत्यता में विश्वास रखते हैं ?'

'रखता हूँ यदि वे जगद्विषयक प्रत्यक्ष पदार्थों का वर्णन करते हों तब ?'

'ऐसा क्यों ?'

इसलिये कि आप के यहाँ ज्योतिष्टोम में मारा गया पशु स्वर्ग पहुंच जाता है और जब पशु स्वर्ग पहुँच सकता है तो मैं समझता हूँ यजमान को भी अपने पिता का वध करके स्वर्ग पहुँचा देना चाहिये। मैं सही कह रहा हूँ न। अतः ...।' विशभदेव के कड़ुवे तर्क से लोग तिलमिला उठे।

शिवलिंगधारी ने बीच में कड़ककर कहा 'आप प्रत्यक्ष पदार्थों के वर्णन में तो विश्वास रखते हैं ?'

'जी हाँ'

'यह तो सिद्ध है कि मुँह से निकली हुई ध्वनि सत्य और नित्य है ?'

'जी नहीं। ध्वनि कभी नित्य नहीं हो सकती और जब वह नित्य नहीं हो सकती तो सत्य भी नहीं हो सकती। ध्वनि केवल शब्द के स्वरूप की सूचिका है।'

लिंगधारी मुसकराया। सम्भवतः वह विशभदेव से यही कहलाना चाह रहा था, उसने सम्राट् की ओर देखा, 'राजवकल तम्बिरन ध्यान दें, जब उच्चारण शब्द को उत्पन्न नहीं करता प्रत्युत उसके स्वरूप का आविर्भाव करता है तो यह बिल्कुल साफ है कि शब्द, उच्चारण पर अवलम्बित न होने के कारण नित्य है और जो नित्य है वह सत्य भी है और जब शब्द सत्य और नित्य दोनों है उसके निकले हुये अर्थ का भी सत्य-नित्य होना स्वाभाविक हैं। अतः परमेश्वर ....।'

आस्तिकों का मन खिल उठा। नास्तिक परास्त हुआ यह साधारण ता नहीं थी। तिरु आश्चर्य में पड़ गई। तब तक विशभदेव चिल्लाया 'रुकिये महाशय ! इतनी जल्दी में निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न न करें। मैंने जगद्विषयक प्रत्यक्ष पदार्थों के वर्णन पर अपनी आस्था प्रगट की है न की अदृष्टलोक अश्रुत पूर्व पदार्थों के वर्णन में। इस में सन्देह नहीं कि उन आप्त पुरुषों के शब्द नित्य और सत्य हैं जिनकी प्रमाणिकता प्रत्यक्ष द्वारा सिद्ध कर दी जाती है परन्तु जो शब्द परोक्ष का अर्थ बोध कराते हैं उनकी नित्यता और सत्यता पर कैसे विश्वास किया जा सकता है ? वे तो अनुमेय है। और जो अनुमेय हैं ? वे सत्य-नित्य नहीं हो सकते। एक विशिष्ट धूम्र का सम्बन्ध एक विशिष्ट अग्नि के साथ देखकर यह तो नहीं कहा जा सकता कि समस्त धूम्र का सम्बन्ध समस्त अग्नि से होगा ही। आम के फल गर्मियों में लगते हैं और इसी अनुमान पर यह कह देना कि हर वर्ष हर पेड़ में आम लगेगें क्या यह उचित और न्याय संगत हो सकेगा ? सम्भवतः कभी नही हो सकेगा। अतः यह साफ है कि अनुमान भी असत्य और भ्रमपूर्ण है। केवल शरीर और जगत को छोड़ कर तीसरी कोई वस्तु नहीं जिसकी वास्तविकता और नित्यता पर विश्वास किया जा सके।' विशभदेव ने अकाट्य तर्क रख दिया।

राज सभा में बैठे हुये व्यक्ति एक दूसरे का मुँह देखने लगे। शिवलिंगधारी को उत्तर देने के लिये सोचना पड़ा। तब तक मधुर कंठ से निकली हुई ध्वनि सब के कानों में पड़ी 'तो क्या आपकी दृष्टि में जगत में कार्य-कारण भाव के लिये कोई स्थान नहीं है?' पतले-पतले ओष्ठों पर फैली हुई पान की लालिमा राजकुमारी के रूप सौन्दर्य को इस समय अधिक आकषर्क बना रही थी।

'नही राजकुमारी जी।' उसके नेत्र उसे निहारने लगे थे। वह तिरुमलाम्बा के प्रश्न की गूढ़ता को समझ रहा था, 'जगत् स्वभाव सिद्ध है। इस की विचित्रता कार्य-कारण भाव से नहीं वरन् स्वभाव के कारण है। अग्नि जलाने वाली है तथा जल स्पर्श से शीतलता प्रदान करता है। यहाँ वस्तु स्वभाव ही कारण हुआ न? इनके लिये किसी कारण को नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार पान, खैर, चूना तथा सुपारी में अलग-अलग ललाई दीख नहीं पड़ती; परन्तु सब का संयोग हो जाने पर खाने वाले के होठों पर लालिमा का जो सौन्दर्य निखर आता है उसे स्वभाव सिद्ध के अतिरिक्त दूसरा कुछ तो नहीं कहा जा सकता?' उसने रुकते हुये आगे कहा 'इसी प्रकार मदिरा के साधक-द्रव्यों में मादक शक्ति नाम मात्र को नहीं है पर मदिरा में मादकता का आविर्भाव अनुभव सिद्ध है। इसलिये वस्तु स्वभाव ही जगत की विचित्रता तथा उत्पत्ति और विनाश का मूल कारण है।' उसने सम्राट् की ओर गर्दन घुमाई 'मुझे आशा है राजकल तम्बिरन को मेरी बातों में सार्थकता प्रतीत हुई होगी।' विशभदेव समझ गया था कि जो कुछ उसने कहा है उसे खंडित करने का किसी में सामर्थ्य नहीं है।

सम्राट् ने सिर हिलाया 'मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हुआ विशभदेव! तुम्हारी प्रतिभा सराहनीय है। विजयश्री की पगिया आज तुम्हारे मस्तक पर सुशोभित होगी।'

विशभदेव सम्राट् के समीप आया। सम्राट् ने गले से हीरे का हार निकाल कर उसके गले में डाल दिया। 'अभी जीवन के लक्ष्य की

विवेचना शेष है।'

'जी राजक्कल तम्बिरन।' वह प्रणाम करता हुआ एक तरफ हट गया।

तब सम्राट ने दूसरी चर्चा शुरू कर दी।

रात की नीरवता में राजकुमारी तिरू अपने पर्यंक पर करवटें बदल रही थी। उसे नींद नहीं आ रही थी। विचारों में भिन्नता होने पर भी विशभदेव आज उस नवयौवना के हृदय में पैठता ही चला जा रहा था।

चार

चार खंड का राज-प्रासाद जो 'मलयकूट' के नाम से प्रसिद्ध था, एक ऊँचे प्राचीर से घिरा हुआ था। प्राचीर अनुमानतः दो कोस के क्षेत्रफल में था। प्रासाद के पिछले भाग में, बिल्कुल अन्तिम सिरे पर सम्राट् ने एक जंगल सदृश्य उद्यान बनवा रक्खा था, जिसकी लम्बाई अधिक और चौड़ाई कम थी। उद्यान के मध्य में एक नदी बनाई गई थी जिसके दोनों ओर नारियल के पंक्तिवद्ध वृक्षों को लगाकर एक नवीन आकर्षण की उत्पत्ति कर दी गई थी। बीच में एक स्थान पर पुल भी बनाया गया था जो सुन्दरता और सुगमता दोनों का परिचायक था। वैसे तो स्थान-स्थान पर नाना प्रकार के फूलों की क्यारियाँ अनूठे ढंग से बनाई गई थीं किन्तु बन जैसी सघनता और वातावरण उत्पन्न करने के अभि-प्राय से कटहल, खजूर, आम और सुपारी के वृक्ष अधिक संख्या में लगे

हुए थे। यत्र तत्र जभीरी नीबू और नारंगियों के भी पेड़ थे जिनमें लटकती हुई पीली-पीली नारंगियाँ बरबस अपनी ओर आर्कषित कर लेती थीं। कुंजों का निर्माण दाख की बेलों को विशेष आकार प्रकार से फैला कर किया गया था। जल क्रीड़ा के लिए बेंत के बने हुए आकार के टोकरे जिनके ऊपर चमड़ा सिला हुआ था, किनारे पेड़ों पर बंधे जल पर तैर रहे थे। इन विशेष प्रकार की नौकाओं में केवल दो ही व्यक्ति बैठ सकते थे। बाग को वन का रूप देने में कोई कमी उठा नहीं रक्खी गई थी।

इस उद्यान की प्राकृतिक छटा का आनन्द राज परिवार के अतिरिक्त, सेनापति का परिवार, मण्डलेश्वर परिवार तथा साम्राज्य के कुछ अन्य विशिष्ट पदाधिकारियों को ही ले सकने की अनुमति थी और वह भी सप्ताह के निश्चित दिनों में—नित्य नहीं।

वर्षा ऋतु के आगमन का सन्देश लेकर आज नभ मंडल में दौड़ता हुआ मेघों का समूह ग्रीष्म की भीषणता के अहंकार को धूल धूसरित करता हुआ प्रकृति में सम्मोहन उत्पन्न कर रहा था। वर्षा के इस नए रूप पर जड़-चेतन सभी रीझ कर उसे प्राप्त करने में आकुल हो उठे थे। नवीनता में ऐसा ही आकर्षण है। राजकुमारी तिरुमलाम्बा ऊपर वाले कक्ष से उतर कर नीचे आई और अपनी भावनाओं की तरंगों में कुछ बनाती बिगाड़ती, बिना दूरी का ध्यान किए उद्यान की ओर चल पड़ी। युवा अवस्था की उमंगे, विशभदेव के लिए हृदय में फूटता हुआ प्रेम का अंकुर और फिर आज के प्राकृतिक सम्मोहन ने यदि उसकी सुध-बुध का अपहरण कर लिया था तो कोई बड़ी बात नहीं थी।

राजकुमारी को कुछ जान भी न पड़ा और उद्यान भी आ गया। बाग में प्रवेश करते ही मानो उसका आनन्दित हृदय अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए आतुर हो उठा हो। वह नाच उठी। कभी फूलों को चूम कर तो कभी किसी डाली पर बैठ कर वह गुनगुनाती हुई कल्पना को साकार करने का प्रयास करने लगी। कुछ समय बाद वह नौका में आकर बैठ गई और लगी उसे नचा-नचा कर अठखेलियाँ करने

और तभी उसकी बुद्धि ने कविता को जन्म दिया और अनायास उसके मुंह से निकल पड़ा—

आओ तो चँवर डुलाऊँ।

उसे यह पंक्ति बड़ी प्रिय लगी। उसने इसे कई बार दुहराया और वह जितनी बार दुहराती मिठास उसी अंश में बढ़ती जारही थी। भावनाओं की तन्मयता बढ़ी। वह आगे की पंक्ति के सृजन का प्रयत्न करने लगी। उसने नौका को किनारे लगाया और फिर एक कुंज में दूब की हरी मखमली चादर पर लेट कर मधुर ध्वनि के धागे में इन अक्षरों को पिरो-पिरो कर गुनगुनाने लगी। उसने आगे की पंक्ति बनाई—

यह मधुर प्रकृति की वेला,
सुरभित पुष्पों से मिलकर।
मन पाता आज अकेला,
उलझा है हृदय संभलकर।
मैं ढूँढ़ तुम्हें बुलाऊँ॥ आओ तो चँवर डुलाऊँ।

तिरुमलाम्वा ने पुनः दुहराया और आगे की पंक्ति सोचने लगी।

कोकिल कंठ से निकली हुई हलकी-हलकी ध्वनि जो लताओं और कुंजों से टकरा-टकरा कर इधर-उधर फैल रही थी, किसी आगन्तुक के कानों में पड़ी। आगन्तुक खड़ा हो गया और बड़े एकाग्रचित से कान लगाकर आती हुई ध्वनि की दिशा को समझने का प्रयत्न करने लगा। कुछ अनुमान लगने पर वह आगे बढ़ा। ध्वनि उधर से ही आरही थी। वह और आगे बढ़ा तथा उस स्थान तक आया जहाँ से कविता के एक-एक अक्षर को वह साफ-साफ सुन सकता था। क्षण भर तक सुनते रहने के उपरान्त उसके पैर आगे को उठे किन्तु तत्काल रुक गए। दो भावनाओं का अन्तर्द्वन्द उठ खड़ा हुआ। गीत का खिचाव उसे आगे चलने के लिए कह रहा था और भय मिश्रित शिष्टाचार उसके पैरों को पीछे धकेल रहे थे। उसके मस्तिष्क में एक बात और आई—सम्भव है उक्त रमणी इसे अशिष्ट व्यवहार मानकर सम्राट् के कानों तक खबर पहुँचा

दे। उसने आगे जाना उचित नहीं समझा और दो पग पीछे मुड़कर फिर रुक गया। अमृत घुले गीत से अपने को वंचित करना उसके सामर्थ्य के बाहर की वस्तु थी। वह वहीं घास पर बैठ गया और दूसरी तरफ मुँह करके कविता सुनने लगा।

अभी मुश्किल से कुछ क्षण बीते होंगे कि किसी के पुकारने की आवाज़ आई 'राजकुमारी जी। राजकुमारी जी।' उस व्यक्ति ने उधर को गर्दन घुमाई। पुनः आवाज़ आई—'राजकुमारी जी। राजकुमारी जी··· ।' और अचानक चित्रपुष्पी एक पेड़ की ओट से उसके सामने आ गई। उसकी आँखें विशभदेव से मिली। वह ठिठकी और तत्काल सिर नवाती हुई अभिवादन किया।

विशभदेव मुस्कराया। उसे अब समझने की आश्यकता नहीं रही कि कोकिल कंठ से निकली हुई स्वर लहरी किसकी है? वह बोला 'तेरी स्वामिनी का अभी पता नहीं लगा?'

'लग जायेगा। इधर ही कहीं बैठी होंगी।' उसने विशभदेव को देखकर शीघ्रता से आँखें नीची करली।

'तो एक बार यहाँ से भी पुकार कर देखले। सम्भव है तेरी बात सच निकल जाय।'

चित्रपुष्पी ने मुस्कराते हुये पुकारा 'राजकुमारी जी·· ···।'

सामने पत्तियों में खड़खड़ाहट हुई और राजकुमारी की आवाज़ आई 'क्या है चित्रपुष्पी ···!' आगे उसकी जबान हिलने में असमर्थ हो गई। उसकी दृष्टि विशभदेव से जा टकराई थी।

विशभदेव ने खड़े होते हुए हाथ जोड़े। तिरुमलाम्बा भी हाथ जोड़ती हुई समीप आई किन्तु सकुचाती हुई।

'मैंने राजकुमारी जी की वीणा और नृत्य की प्रशंसा सुन रक्खी थी पर आज एक तीसरी वस्तु की भी जानकारी हुई और सौभाग्य से उसे सुनने का भी अवसर मिला! अन्यथा ऐसे भाग्य ···।

'किन्तु मैंने तो सुना है कि प्रभु भाग्य पर विश्वास करते ही नहीं।'

चित्रपुष्पी ने बीच में टोका ।

'करता तो नहीं था लेकिन अब देखता हूँ करना ही पड़ेगा ।' उसने तिरु की तरफ देखा 'बैठिये ।'

'तू क्यों पुकार रही थी चित्रपुष्पी ?'

'किसी कारण वश नहीं ।' उसने एक बार विशभदेव की तरफ और फिर राजकुमारी की ओर देखा फिर यह कहती हुई कि बिछाने के लिये आसन ले कर शीघ्र आती हूँ, दौड़ती हुई वृक्षों की ओट में अन्तर्ध्यान हो गई । उसने ऐसा जान बूझकर किया था ।

'बैठिये ।' विशभदेव ने पुनः आग्रह किया ।

राजकुमारी बैठी । विशभदेव भी कुछ हटकर बैठ गया ।

'मैं जब आई थी तब तो आप यहाँ नहीं थे ।'

'अच्छा हुआ मैं नहीं था वरना आपकी कविता सुनने को कहाँ मिलती ? वास्तव में पंक्तियों के भाव और कंठ की मिठास सोने में सुहागा जैसा ·· ।'

'बस, रहने दीजिए । अधिक प्रशंसा से मस्तिष्क में भ्रम उत्पन्न हो जायेगा । यदि इतनी ही बुद्धि होती तो मुझे भी सभाओं में राजक्कल तम्बिरन से पुरस्कार न मिला करते ।'

'पर इन विजयों से कोई लाभ भी है । जब तक किसी का हृदय न विजित हो तब तक पुरस्कारों का क्या मूल्य ? मुझे नास्तिक जान कर यों भी लोग मुँह फेर लिया करते थे किन्तु उस दिन से तो मैं बिल्कुल ही घृणा का पात्र बन गया हूँ ।' उसके वाक्यों में भावों की गहराई थी ।

'ऐसी बात तो नहीं है ।'

'ऐसी ही बात है राजकुमारी जी' विशभदेव पूरी तरह से जान लेना चाहता था, 'जिन के हृदय में कुछ स्थान था अब वह भी समाप्त हो गया ।'

तिरुमलाम्बा की झुकी दृष्टि किसी जिज्ञासावश उठी । विशभदेव अपलक उसके मुख मंडल को निहार रहा था । वह लजा गई । चोर

पकड़ा गया। विशभदेव का मन लहरा उठा। राजकुमारी ने पर्दा डालना चाहा 'सुना है उस दिन से हम्पी में आप की बड़ी चर्चा है ?'

विशभदेव मुसकराया 'उतनी नहीं जितनी राजकुमारी तिरुमलाम्बा की वीणा और नृत्य की। अच्छा बताइये, क्या मुझे भी वीणा सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो सकेगा ? मैं सच कहता हूँ यह मेरी हार्दिक इच्छा है। आप ······ ।'

'बस-बस। अधिक नहीं। पिता जी नित्य डाँटते हैं कि मुझे उँगली तक रखनी नहीं आती और आप प्रशंसा के पुल बाँधे डाल रहे हैं।'

'चलिये एक बात सिद्ध हुई कि अभ्यास नित्य होता है और वर्षों से होता चला आ रहा है। तो अगर कल का अभ्यास इसी स्थान पर करने का विचार बना लिया जाय तो एक पंथ दो काज वाली कहावत के अनुसार मेरी इच्छा और अभ्यास दोनों की पूर्ति हो जायेगी।'

तिरुमलाम्बा ने कनखियों से देखा 'कल पर आप विश्वास रखते हैं ?'

'रखते इसलिये नहीं थे कि अभी तक ऐसा कोई अवसर उपलब्ध नहीं हो पाया था; परन्तु अब जब होने लगा है तो विश्वास करना ही पड़ेगा। प्रत्यक्ष को प्रमाण कैसा ?' उसने अपनी और राजकुमारी दोनों की बात कह दी।

तिरुमलाम्बा का हृदय खिल उठा परन्तु इस भय से कि कहीं वह विशभदेव की जानकारी में न आ जाय उसने बात के क्रम को बदला 'चित्रपुष्पी अभी तक ··· ।'

'वह आ गई।' विशभदेव ने पीछे की ओर संकेत किया।

राजकुमारी ने गर्दन मोड़कर देखा। चित्रपुष्पी आसन लेकर तो नहीं आ रही थी किन्तु फलों और मिठाइयों की तश्तरियाँ उसने अवश्य विशभदेव के सामने लाकर रख दीं और यह कहती हुई कि रथ से जल का पात्र ले आऊँ—वह पुनः दौड़ती हुई चली गई।

'ऐसा कहा जाता है कि यदि आरम्भ उत्तम है तो' विशभदेव ने बत-

लाया 'अन्त भी उत्तम होगा। आप भी इससे सहमत है न ?'

'लीजिये।' तिरुमलाम्बा ने तश्तरियों को उसकी ओर बढ़ाया 'आरम्भ कीजिये।' जैसे उसने विशभदेव की बातों को समझा ही न हो।

पाँच

दूसरे खंड की खुली छत पर, टहकती चाँदनी की शुभ्र ज्योत्सना में मखमली गावतकियों के सहारे लेटा हुआ, विशभदेव नीलाम्बई को टकटकी लगाये देख रहा था। नीलाम्बई ने सुरापात्र बढ़ाया; परन्तु बिना उसकी तरफ ध्यान दिये ही वह अपनी कल्पनाओं में बोला, 'मैं आज तुमसे एक प्रश्न का स्पष्टीकरण चाहता हूँ नीलाम्बई।'

राजनर्तकी मुसकराई 'आज्ञा करें प्रभु। क्या अब भी इस प्रकार का कोई प्रश्न शेष रह गया है जिसका स्पष्टीकरण न हो सका हो ? आश्चर्य है। प्रभु से तो मैंने कभी कोई पर्दा रखा नहीं।'

'कहती तो तुम सत्य हो किन्तु इसकी वास्तविकता पर भी तुमने कभी ध्यान दिया है ? मैं तुम्हारे बहुत समीप हूँ इसमें संदेह नहीं पर मुझे भी तो तुम्हें अपने समीप लाने का अवसर मिलना चाहिये। क्या मैं इसका अधिकारी नहीं ?'

नीलाम्बई खिलखिला पड़ी, 'समझी। परन्तु प्रभु ने यह दोष मेरे सिर क्यों मढ़ दिया ? अधिकारी को अपने अधिकार का स्वयं ज्ञान होना चाहिये। यदि आप अपने अधिकारों का उपयोग नहीं कर सकते तो क्या मैं भी अपने अधिकार से वंचित रहूँ ?' उसने सुरापात्र की ओर

संकेत किया, 'लीजिये । इतने समीप हूँ फिर भी समीपता के लिये उलाहना है ।'

उसने पात्र पकड़ लिया । उसके चेहरे पर कुछ अधिक गंभीरता आ गई । 'मैं आज दो टूक उत्तर लेना चाहता हूँ । मेरी समीपता तुम्हारी समीपता से भिन्न है इसे तुम भली भाँति समझती हो । मेरी प्रतीक्षा की सीमा समाप्त हो चुकी है । अब मैं और नहीं रुक सकता । मुझे तुम्हारा निर्णय आज अवश्य सुन लेना है ।'

'ऐसा कहकर सम्भवतः प्रभु मुझे लज्जित कर रहे हैं । इसमें क्या कोई और राय हो सकती है कि प्रभु की समीपता मेरी समीपता से भिन्न अर्थ रखती है पर आज की उत्सुकता कल भी इसी प्रकार वर्तमान रह सकेगी—यही एक चिंता है ।'

विशभदेव का हाथ मुँह तक पहुँच कर रुक गया, 'आज जैसी उत्सुकता कल भी बनी रहे यह तो अप्राकृतिक है । कली पुष्प के रूप में विकसित होकर एक दिन धूलधूसरित हो जाती है । उसे एक जैसा नहीं रक्खा जा सकता । आज और कल में अन्तर स्वाभाविक है ।' उसने पात्र मुँह से लगा लिया ।

'प्रभु का कहना यथार्थ है,' नीलाम्बई ने उसी कोमलता से उत्तर दिया, 'किन्तु प्रयत्न द्वारा ब्रह्म से भी साक्षात्कार हो सकता है न ? इसे प्रभु क्यो भूले जाते हैं ?'

विशभदेव ने गर्दन हिलाई 'सो क्यों नहीं, पर उस में एक शंका है । साक्षात्कार न होने पर मुसलमानों वाली कहावत—न खुदा ही मिला न विसाले सनम, का पछतावा जीवन को कितना दुखमय बना देगा इस का तुम्हें अनुमान है ? प्राण निकलेगा किन्तु अधिक वेदना के साथ जो असहनीय होगा ।'

'प्रभु ने इसे दूसरे प्रकार से सोच लिया, इसे सोचने का एक और भी रास्ता है । मुझे खुदा के मिलने की उत्सुकता थोड़े है, मैं तो सनम की मुहब्बत को इस रूप से संजो कर रखना चाहती हूँ कि मरते दम तक

उसमें वही आकर्षण बना रहे। मैं प्रेम और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं मानती।' नीलाम्बई उसके हाथ से रिक्तपात्र लेकर सुरा उंडेलने लगी।

विशभदेव को कुछ झुंझलाहट आ गई 'यह तो तुम्हारी बात हुई परन्तु तुम्हारे हृदय में यदि मेरे लिये कोई स्थान है तो मेरी प्रसन्नता का तुम्हें ध्यान रखना ही होगा; अन्यथा यह कहना असंगत न होगा कि जिस प्रेम की तुम दुहाई देती हो वह एक प्रपंच है। तुम्हें अच्छी तरह मालूम है कि मेरा प्रेम प्रत्यक्ष को लेकर चलता है, जो प्रमाण सहित और शंका रहित है। उसे तुम किसी भी समय किसी भी रूप में समझ सकती हो; पर क्या ऐसी ही सुविधा तुम्हारे प्रेम के समझने में मुझे मिल सकेगी? तुम्हारे प्रेम में डर की भावना निहित है जो 'आज' की चिन्ता न करके 'कल' को संवारने में लगा रहता है। ऐसी दशा में न 'आज' की उपलब्धि हो पायेगी न 'कल' की और जीवन यों ही समाप्त हो जायेगा।'

'डर मेरे में है प्रभु। मैंने अभी तक जीवन में खोया है कुछ पाया नहीं। बड़ी कठिनाइयों के उपरान्त एक वस्तु मिली है यदि उसे कल के लिये संवार कर न रक्खूँ तो इतना बड़ा जीवन कटेगा कैसे? सहारा छूट जाने पर फिर कहीं की न रह पाऊँगी।' नीलाम्बई ने जैसे हृदय निकाल कर सामने रख दिया हो।

विशभदेव पैर फैलाता हुआ सीधा लेट गया और आकाश की ओर देखने लगा। कुछ समय तक सोचते रहने के उपरान्त वह धीरे से बोला 'तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहीं है?'

'नहीं प्रभु स्वयं से उठ गया है। सुख की मात्रा में यदि वृद्धि की लालसा उठ खड़ी हुई तो फिर 'कल' को अपने समीप संजो कर रखने में समर्थ न हो सकूँगी। सम्भव है तब वह मृगतृष्णा का रूप धारण कर ले।' नीलाम्बई के कथन में गूढ़ता थी।

विशभदेव उठकर सीधा बैठ गया। उसने सुरा के लिये हाथ बढ़ाया। नीलाम्बई ने थमा दिया। उसने एक घूँट कंठ से उतारी 'तो

इस समय क्या तुम्हारी मृगतृष्णा वाली स्थिति नही है ?'

'है।'

'फिर ?'

'रूप बदला हुआ है न प्रभु। इस में प्यास रहते हुये भी तृप्ति का अनुभव होता रहता है और वहाँ भ्रम की जानकारी हो जाने पर भी प्यास की तृप्ति के हेतु मनुष्य इतना आकुल हो उठता है कि वह बिना कुछ सोचे विचारे तब तक चक्कर लगाता रहता है जब तक निष्प्राण बनकर पृथ्वी पर गिर नहीं पड़ता। दोनों के रूप में यही अन्तर है।'

विशभदेव हँसा—'चलो, तुम ने अपनी बचत का रास्ता निकाल लिया है। रही मेरी बात, उसकी तुम्हें क्यों चिन्ता होने लगी ? ठीक भी है। होना नहीं चाहिये। दीपक की जलती हुई बाती पतंगों से कब कहती है कि वे उसकी लौ में अपने को जला कर राख करलें। पर नहीं, जो लौ के प्यासे हैं, उन्हें एक बार क्या सौ बार भी इसी प्रकार जलना पड़े तो भी जलते रहेंगे। मैं भी सारी यातनायें झेलूँगा। बस दुख यही है कि वहाँ पतंगा दीपक की गोद में सिर रखकर मरता है और यहाँ समीप बैठने में भी आपत्ति है। मुझे इस योग्य भी नहीं समझा जा रहा है।'

नीलाम्बई ने कनखियों से देखा, 'इस प्रकार का अवसर तो तब दिया जाता जब राख बनाने और बनने की योजना होती। यहाँ तो अमरत्व की खोज है जो जीवन के लक्ष्य की चरम सीमा है।' नीलाम्बई खिसक कर आगे आ गई, 'लीजिये, समीप हो गई न ? बोलिये, भोजन मंगवाऊँ ?'

उसने विशभदेव के हाथ से पात्र ले लिया।

'नहीं।'

'क्यों ?'

'तबीयत। जब तुम्हारी इच्छाओं पर किसी का अकुंश नहीं तो मेरी इच्छाओं पर किसी का क्यों होने लगा ?' विशभदेव दूसरी ओर मुँह करके कह रहा था। 'कभी मैंने यहाँ भोजन किया है या आज ही

करूँगा ?'

नीलाम्बई क्षण भर सोचती रही 'मेरी तरफ देखिये।'

विशभदेव के नेत्र उसके नेत्रों से मिले 'कहो।'

'विद्वान पुरुषों में तुनुकमिजाजी आज ही देखने को मिली है।' वह हँसने लगी 'इतनी-सी बात के लिये ऐसी अप्रसन्नता ? भविष्य में प्रभुको ऐसा अवसर नही दूँगी।' उसने ताली बजाई।

सेविका उपस्थित हुई।

'भोजन।' उसने आदेश दिया।

वह नतमस्तक होती हुई लौट गई।

'अब इच्छाओं पर जीवन पर्यन्त अंकुश रहेगा।' वह बोली।

विशभदेव ने कुछ कहा नहीं। मौन उसे देखता रहा और अनायास टोपी उठा कर सिर पर रक्खा और उठ खड़ा हुआ, 'मैं चलूँगा।'

नीलाम्बई भौचक्का-सी निहारती रह गई। वह कुछ समझ न सकी पर ····।' आगे उसकी जिह्वा कहना चाह कर भी कुछ कह नहीं पा रही थी।

'यों ही। अब और किसी दिन भोजन करूँगा।'

नीलाम्बई ने खड़े होते हुये हाथ जोड़े 'अच्छा।'

विशभदेव द्वार के समीप पहुँच कर ठिठका और लौट पड़ा। गुम सुम खड़ी नीलाम्बई के कपोलो को उसने थपथपाया 'कल रात में भोजन के उपरान्त राजनर्तकी का वह बहु प्रशंसित नृत्य भी देखूँगा जिसकी प्रशंसा करने में स्वयं राजक्कल तम्बिरन भी गर्व का अनुभव करते हैं। अब मैं चल रहा हूँ। कल की संध्या पूर्ण रूप से मेरी होगी। समझी।' वह झूमता हुआ मुड़ गया।

नीलाम्बई उसी प्रकार गुमसुम खड़ी रही।

छः

कृष्णा नदी, विजयनगर साम्राज्य और बहमनी रियासतों की सरहद थी। इस पार हिन्दू और उस पार मुसलमान। ये मुसलमान हुकूमतें—बीजापुर, गोलकुण्डा, बीदर, अहमदनगर और बरार एक ही पिता की पाँच बेटियाँ थीं जो अलग-अलग अपना परिवार बसाकर रहने लगी थीं। बीजापुर का शासक आदिल शाह था जो उन चारों में अधिक शक्तिशाली एवं प्रभावशाली था। यह इस्लाम धर्म का कट्टर पक्षपाती और हिन्दुओं को हेयकी दृष्टि से देखने वाला था। अतः बीजापुर और विजयनगर में आये दिन युद्ध होना स्वाभाविक था।

गोलकुंडा के सुल्तान कुतुबशाह के एक ज़िले का शासक एक रामराय नामक हिन्दू नवयुवक था जो बात का धनी और तलवार में अपना सानी नहीं रखता था। साथ ही वह ऊँचे दर्जे का वीणा वादक भी था। उसकी वीणा से निकली हुई स्वर लहरियाँ किसी को भी अपनी ओर आकृष्ट करने में असमर्थ थीं। सुल्तान स्वयं उसकी कला के प्रशंसकों में था और दरबार में होने वाले उन समस्त उत्सवों पर उसे बुलाकर उसकी वीणा सुना करता और मुँह माँगा पुरस्कार देकर उसकी कला को प्रोत्साहित किया करता था। रामराय की प्रतिष्ठा दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी जो राज्य के दूसरे पदाधिकारियों के लिए एक ईर्षा का कारण बन गई थी। यद्यपि दो-एक बार दबी जबान से उसकी चुगली भी की गई लेकिन सुल्तान ने उसे सुनी अनसुनी कर दी। सुल्तान को विश्वास था कि रामराय हिन्दू होने के साथ-साथ क्षत्रिय भी है जिनकी

बहादुरी और वफादारी पर तनिक भी सन्देह नहीं किया जा सकता। रामराय ने भी ऐसा ही परिचय दिया था और यही उसकी उन्नति के कारण थे।

लगभग एक सप्ताह से बीजापुर नगर ने स्वर्ग का रूप ले लिया था। आदिलशाह ने गोलकुंडा, बीदर, अहमदनगर और बरार के सुल्तानों को अपने यहाँ आमन्त्रित कर रखा था। शासक अपने दलबल के साथ उपस्थित हुए थे और नित्य होने वाले नवीन उत्सवों में भाग लेकर राजधानी में आनन्द का स्रोत बहा रहे थे। यद्यपि इस समारोह का बाह्य रूप पूर्णतः मनोरंजन के लिए था;परन्तु वास्तविकता कुछ दूसरी थी। समस्त शासकों को बीजापुर में एकत्रित करके सम्भवतः आदिल-शाह किसी नई राजनीति को जन्म देना चाह रहा था; परन्तु एक हफ्ते से अधिक बीत जाने पर भी अभी तक सुरा-सुन्दरी के अतिरिक्त अन्य किसी विषय पर ध्यान नहीं दिया गया था। देने की आवश्यकता भी नहीं थी। जब सब एकत्रित थे और एक दूसरे के गले मिल रहे थे तब भी किसी को किसी मसले पर आपत्ति होगी—ऐसी अब सम्भावना नहीं रह गई थी। आमोद प्रमोद चल रहा था।

आज दीवाने-ए-ख़ास में संगीत और नृत्य का आयोजन था। सर-दारों तथा अमीर उमराओं के आने के उपरान्त आदिलशाह के आगमन की सूचना हुई। सब उठकर खड़े हो गये। शाह आया। सबने झुककर सलाम किया। शाहने बैठते हुए लोगों को बैठने की अनुमति दी। थोड़ी देर बाद गोलकुंडा के सुल्तान के आगमन की सूचना दी गई। आदिल-शाह ने उठकर उसका स्वागत किया और बड़े आवभगत से लाकर बिठ-लाया। कुछ क्षणों बाद अहमदनगर, बरार और बीदर के सुल्तानों के भी आगम की सूचना मिली। आदिलशाह ने प्रत्येक का उसी आवभगत से उठकर स्वागत किया। फिर साक़ी ने शराब को सागर में छलकाया। नूपुरों की झनझनाहट हुई। वीणा के तार खिचे। मृदंग पर थाप पड़ी और अप्सराओं जैसी रूप का आलोक लिए, यौवन में मदमाती नर्तकियों

ने भाव दिखलाने आरम्भ किए। सुल्तानों ने कहकहे के बीच जाम खाली किए और तत्पश्चात दौर पर दौर चलने लगा। वातावरण आनन्दमय हो उठा।

ऊपर झरोखों के पीछे बैठी हुई बेगमें आपस में टीका टिप्पणियाँ करने लगी थीं।

अचानक कुतुबशाह ने हाथ से संकेत किया। नाच रुक गया। वह आदिलशाह से बोला 'कहिए तो बहुत लाजवाब वीणा सुनवाऊँ ? इससे तबीयत को बहुत सकून नहीं मिल रही है। क्या ख्याल है आप लोगों का ?'

'अगर जनाब कोई उम्दा बजाने वाला अपने साथ लाए हों तो हम लोग ज़रूर सुनेंगे। बुलवाईए।' आदिलशाह का उत्तर था।

सामने बैठे हुए रामराय को सुल्तान ने संकेत किया। वह उठकर आया और झुककर सलाम करता हुआ नतमस्तक खड़ा हो गया।

'तुम्हारी वीणा कहाँ है ?' सुल्तान ने पूछा।

'पड़ाव··· ।'

'मंगवाओ।'

'बेहतर है ग़रीबपरवर।' वह पीछे हटता हुआ मुड़ गया।

तत्काल शिविर से वीणा आई। रामराय सभा-मंडप में आकर बैठा। स्वर मिलाये तदुपरान्त आज्ञा लेता हुआ आरोह-अवरोह भरने लगा। धीरे-धीरे उँगुलियों में थिरकन बढ़ी। आलाप समाप्त करके उसने राग उठाया। मृदंग पर साथ करने वाले उस्ताद ने समय पर थाप दी और धीरे से बोला 'बहुत अच्छे।' रामराय ने प्रत्युत्तर में गर्दन हिला कर कृतज्ञता प्रगट की और आँखें बन्द करके अपनी कला को साकार करने का प्रयत्न करने लगा।

लोगों की तन्मयता बढ़ी। वातावरण में निस्तब्धता आई। वादक का मन बढ़ा। लोग झूमने लगे। सुलतानों ने बराबर वाह, वाह' करके अपने हृदय के उदगारों को व्यक्त किया। रामराय ने लगभग पौन घंटे

उपरान्त अपनी नाचती हुई उँगलियों को सम पर लाकर रोक दिया।

'बहुत-खूब ! बहुत-खूब !!' पाँचों सुलतानों के मुँह से एकबारगी निकल पड़ा।

रामराय ने सिर झुकाकर प्रणाम किया।

'एक दूसरी चीज।' अहमदनगर का सुलतान बोला। फिर उसने कुतुबशाह की ओर देखा 'वाकई इसकी उँगलियों में क़यामत बरपा करने की ताकत है। इसका नाम ?'

'रामराय।' कुतुबशाह ने बताया, 'आपको सुन कर ताज्जुब होगा कि इसकी यही उँगलियाँ जब तलवार पकड़ती हैं तो मैदाने जंग में दुश्मनों के दाँत खट्टे पड़ जाते हैं। वफादार इतना है कि शायद ही इस तरह का हिन्दू आपको देखने में मिल सके।'

'खैर वफादारी के मामले में हिन्दू हम से बहुत आगे हैं।' अहमदनगर के सुल्तान ने रामराय की तरफ देखा; चलो, शुरू करो। तुमसे तबीयत बड़ी खुश हुई।'

रामराय ने सलाम किया। दूसरा राग आरम्भ हुआ।

ऊपर बेगमें एक कंठ से रामराय की प्रशंसा कर रही थीं।

धीरे-धीरे वीणा की स्वर लहरी दीवाने-ए-खास में पुनः अपने जादू के डोरे डालने लगी और कुछ समय बाद ही पहले की तरह सब लोग भाव विभोर हो उठे। वादक इस बार और अधिक संतुलन तथा कलात्मक ढंग से बजा रहा था। इस बार उसने राग समाप्त करने में पहले से अधिक समय लिया किन्तु साथ ही उसने यह सिद्ध कर दिया कि यदि सचमुच कहीं वास्तविक आनन्द है तो वह है संगीत के स्वरों में।

सुल्तानों की तरफ से तमाम इनाम इकराम मिले और महफिल बर्खास्त हुई।

उठते-उठते झरोखों से पुनः एक बार रामराय को देखती हुई चाँद जैसी बीस वर्षीय उरूसी ने कहा 'अम्मीखानम, हरम में भी करवाइये न। नज़दीक से सुनने में कुछ और ही लुत्फ आता है। कल बादशाह सलामत

से कहला दीजिये।'

'हाँ खानम ! यह राय हम लोगों की भी है।' दूसरी बेगमों ने समर्थन किया 'बादशाह सलामत आपकी जबान को टालेंगे नहीं।'

खानम सोचती-सोचती बोली 'शायद बादशाह सलामत से इजाज़त न मिले लेकिन मैं कोशिश करूंगी। अगर इजाज़त मिल गई तो दोपहर में इन्तज़ाम करवा दूँगी। वक्त ठीक रहेगा ?'

सबने हामी भर दी।

वहुत पहले जब आदिल शाह 'शाह' के रूप में नहीं था तब उसकी भेंट उरूसी की माँ से हुई थी। आदिल खाँ ने उरूसी की माँ के रूप पर सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था। समय बीता। दोनों के हृदय में बड़ी-बड़ी उमंगे थीं। आदिल खाँ, आदिलशाह हुआ किन्तु उसकी माँ मल्का न बन सकी जो उसके जीवन की सबसे बड़ी आकांक्षा थी। शाह के जीवन में अब खानम ने प्रवेश कर लिया था। उरूसी की माँ ने जीवित रहने से मर जाना उत्तम समझा और एक रात उसने आत्म हत्या कर ली। सब छूट गये।

× × ×

दूसरे दिन शाह से आज्ञा मिल गई। दोपहर में रामराय हरम में उपस्थित हुआ। चांदी की तीलियों से बनी हुई चिलमनों के पीछे बेगमें बैठीं और सामने कक्ष के मध्य में रामराय। तारों को मिलाने के उपरान्त उसने झुकी दृष्टि से पूछा 'इजाज़त है ?'

'सुनाइये।' खानम के शब्द थे।

वादक ने आरम्भ किया। उरूसी चिलमन से चिपकी हुई कलाकार को निहार रही थी, उसकी उँगुलियों को निहार रही थी और निहार रही थी उसके मुखमंडल पर फैली सौम्यता को जो आकर्षक के साथ-साथ उसके हृदय की परिचायक थी। धीरे-धीरे वीणा की कसक स्वयं उसके हृदय की कसक में परिवर्तित होने लगी थी।

एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी और तीसरी के बाद चौथी

बेगमी की फर्माइश होती गई। रामराय बड़ी तन्मयता से सुनाता गया। सुनाता क्यों नहीं ? साधना की यही तो सार्थकता है। कई राग सुन लेने के उपरान्त भी जब खानम ने बेगमों की फर्माइश में कमी होते न देखा तो वह रामराय से बोली 'सुनने को तो अगर जिन्दगी भर सुना जाय तब भी शायद तबीयत नहीं भर पायेगी। अल्लाह ताला ने आपकी उँगलियों में बड़ी कशिश भर दी है। मगर अब आप भी थक गये होंगे। किसी दिन फिर आपको तकलीफ दूँगी।'

'हुज़ूर मुझे शर्मिन्दा न करें। मैं तो आपका एक अदना खादिम हूँ।' उसने सलाम किया 'मेरे लिये गोलकुंडा के सुल्तान या बीजापुर के शाह दोनों ही परवरदीगार हैं। वह वीणा को हटाता हुआ उठने की तैयारी करने लगा।

'अम्मी खानम।' उरूसी अपने स्थान से उठकर जल्दी से खानम के पास आई 'एक और सुनवा दीजिये अम्मी खानम। सिर्फ एक।' वह गिड़-गिड़ा रही थी।

'नहीं उनकी उंगलियाँ क्या पत्थर की बनी हुई हैं ? कुछ अपने दिमाग से भी तो सोचो। कल-परसों मैं फिर बुलवा लूंगी।' उसने पीछे खड़ी एक दासी को बुलवाया और उससे कुछ कहा।

दासी अन्दर से एक चाँदी के थाल में सौ पगोदे* रख कर तत्काल लौटी और खानम को दिखलाती हुई रामराय के सामने लाकर रख दिया। 'इसे कबूल करें।' खानम की आवाज थी।

रामराय ने पुनः सलाम किया और उन्हें समेटने लगा।

'अम्मी खानम ....।'

खानम ने तनिक क्रोध से उसकी ओर देखा। उरूसी की आँखें डब-डबाई हुई थीं। उसे विवश हो जाना पड़ा 'बहुत ज़िद करती है तू ! बेवकूफ।' वह रामराय से बोली 'शाहज़ादी उरूसी एक और चीज आप से सुनना चाहती थीं अगर ....।'

---

*पगोदार बाराह को ही कहा जाता था।

'बिल्कुल नहीं हुज़ूर। मुझे किसी तरह की परेशानी नहीं।' वह वीणा को सामने खींचकर स्वरों को भरने लगा।

सात

लगभग एक मास से अधिक समय समाप्त हो चुका था परन्तु अब भी आदिलशाह की मेहमाननवाज़ी खत्म नहीं हुई थी। संध्या ने आंचल फैलाया। अंधेरा बढ़ा। विवश होकर लोगों को प्रकाश का सहारा लेना पड़ा। नगर में और पड़ावों पर दीपक जगमगा उठे। रामराय की रावटी में ख़िदमतगार प्रकाश जलाकर चला गया पर वह अब भी खाट पर लेटा किन्हीं कल्पनाओं में विचर रहा था। उसकी यह स्थिति आज दोपहर से थी। बत्ती जलने के साथ-साथ उसके विचारों की लड़ियाँ टूटीं। उसने इधर-उधर देखा और उठकर बैठ गया। ठीक इसी समय एक सैनिक ने रावटी में प्रवेश करते हुए सामरिक रीति से अभिवादन किया और बोला, 'मल्का का सन्देश लेकर एक खोजा आया हुआ है। सरदार से मिलना चाहता है।'

'भेज दो।' रामराय जरा सीधा बैठ गया।

खोजा अन्दर आया। बड़े अन्दाज़ से झुककर उसने सलाम किया, 'मल्का हुज़ूर ने याद फर्माया है। सरकार की वीणा सुनने की ख्वाहिश-मन्द हैं।'

'अच्छी बात है। तुम बाहर बैठो। मैं अभी तैयार हुआ जाता हूँ।' खोजा 'जी' कहकर बाहर चला गया।

रामराय ने खोजा के पीछे-पीछे महल में प्रवेश किया। पर इस बार पहले वाला परिचित मार्ग नहीं था। इधर अंधेरा अधिक था। उसके मन में शंका उठी। परन्तु वह मौन रहा। कई मोड़ से दाहिने बाँये मुड़ते हुये खोजा ने एक संकरे दरवाजे से अन्दर प्रवेश किया। किन्तु सीढ़ियों से ऊपर चढ़ते ही एक कमरा मिला जो सुसज्जित था। इस कमरे से होकर ये दोनों दूसरे भव्य कक्ष में जा पहुँचे जो अत्यधिक सुन्दर था। दरवाजे पर प्रतीक्षा में एक दासी मिली। वह रामराय को अन्दर लिवा ले गई। खोजा लौट गया।

'आप तशरीफ रक्खें। शाहज़ादी उरूसी तशरीफ ला रही हैं।' वह अन्दर चली गई।

रामराय बैठकर कुछ सोचने लगा।

कुछ क्षणों बाद सामने दरवाजे पर लटकते हुए मखमली पर्दे के उठने की आहट मिली और रूप का आगार लिये, गुलाब की पंखुड़ियों जैसी कोमल शाहज़ादी उरूसी ने कमरे में प्रवेश किया। रामराय घबड़ा कर खड़ा हो गया और झुककर सलाम किया।

'आप तशरीफ रक्खें।' उरूसी की आवाज में मिठास थी।

'जी······ आप ···।' रामराय सकपका सा गया था।

उरूसी गावतकियों के सहारे बैठ गई। रामराय बैठा।' आपको आने में तकलीफ हुई होगी ? इधर का रास्ता खराब है।'

'जी नहीं,' उसने साहस बटोर कर उरूसी को देखना चाहा पर उसकी दृष्टि सध न सकी। तत्काल झुक गई। 'कोई खास तकलीफ नहीं हुई।' वह चुप हो गया। उसका हृदय धक्-धक् कर रहा था।

'मैं अगर वीणा सीखना चाहूं तो कितने दिनों में सीख लूँगी ?'

'ज़्यादा नहीं। साल भर में आप उँगुलियां रखने लगेंगी।'

उरूसी हँस पड़ी 'अगर साल भर में उँगुलियां रखना सीख पाऊँगी तब तो इस जिन्दगी में आप की बराबरी होना गैर मुमकिन है और जब तक आप की बराबरी का कोई बजाना न जाने उसके लिये बजाना न

बजाना एक जैसा है।'

'शाहज़ादी साहिबा ने मेरी वक़त ज़्यादा आँक ली है। इस काबिल मैं हूँ नहीं।' रामराय ने पुनः साहस एकत्रित करके गर्दन उठाई। क्षण भर तक उसके नेत्र उरूसी को देखते रहे तदुपरान्त झुक गये। बड़ी मादकता थी उसकी सुन्दरता में।

'एक बात बताइये,' उरूसी का प्रश्न था अगर आप साल छः महीने यहाँ रुककर मुझे वीणा सिखला दें तो आपको कोई तरद्दुद महसूस होगी ?'

'क़तई नहीं। यह तो मेरे लिये सौभाग्य की बात होगी बशर्ते यह मुमकिन हो सके तब है।' वह रुका 'लेकिन मुझे उम्मीद है कि बादशाह सलामत की बात को मेरे शाह टालेंगे नहीं।' रामराय का अन्तिम वाक्य पहले वाक्य पर इस प्रकार का आवरण था, जिसके नीचे से सभी वस्तुयें देखी जा सकती थीं।

उरूसी समझती हुई भी नासमझ-सी बोली 'क्या चाहने वाले के लिये दुनियाँ में कोई काम मुश्किल भी है ? चाहने वालों ने तो अल्लाह ताला तक को हासिल कर लिया है। यह तो बहुत छोटी-सी चीज है।' वह दूर तक पहुँच गयी थी।

'जी हाँ। जी हाँ। इसमें क्या शक़ है ? और शाहज़ादी साहिबा के लिये तो सिर्फ बादशाह सलामत से इशारा भर कर देना होगा—सब हो जायेगा। और अभी तो यों भी सुल्तानों का क़याम महीने भर से ज़्यादा ही रहेगा तब तक के लिये आपको किसी तरह की फिक्र करने की जरूरत नहीं है।' रामराय सम्भवतः उरूसी के भावों को समझ न सका था।

'हाँ, करीब करीब एक माह तो लग ही जायेगा और किसी वजह से अगर ये लोग ज़्यादा दिनों तक रुक गये तब तो और भी बेहतर है। इस बीच में भी बहुत कुछ सीख जाऊंगी। फिर बादशाह सलामत से बताने में बड़ा लुत्फ़ रहेगा। तो कल से आप मुझे सिखलाना शुरू करेंगे ?'

'जी हाँ।' रामराय की हिम्मत कुछ कुछ खुलने लगी थी। अब वह बीच बीच में उरूसी की तरफ देख लिया करता था—'एक महीने के अन्दर आपको काफी अन्दाज़ हो जायेगा।'

उरूसी मुसकराई 'चलिये, खुदा का शुक्र है, एक साल से एक माह तो हुआ और अगर कहीं उस्ताद की चाह बढ़ गई तब तो यक़ीन है मुझे सीखने में बहुत वक्त नहीं लगेगा। मैं गलत तो नहीं कह रही हूँ ?' उसने बड़े अनूठे ढंग से रामराय को देखा।

'क्या यह मुमकिन है कि शाहज़ादी साहिबा को सिखलाने वाले उस्ताद की चाह न बढ़ सके ? बड़ी तक़दीर वालों को ऐसे अवसर मिला करते हैं हुजूर।'

'और बड़ी तकदीर वालों को ऐसे उस्ताद भी तो मिला करते हैं रामराय साहब। आप यह क्यों भूले जा रहे हैं ?' उसने ताली बजाई।

दासी अन्दर आई।

उसे समीप बुलाकर उरूसी ने कुछ धीरे से कहा।

दासी चली गई और तत्काल चाँदी के थाल में कुछ पगोदे रखकर ले आई।

'इसे कबूल करें।' उरूसी ने थाली रामराय की ओर बढ़ा दी।

रामराय ने सलाम किया और पगोदे समेट कर रखता हुआ खड़ा हो गया।

शाहज़ादी दरवाजे तक छोड़ने आई। रामराय पुनः सलाम करता हुआ द्वार के बाहर हो गया। सीढ़ियों से उतरते ही खोजा जो उसे लिवा लाया था—साथ हो लिया।

रामराय के लिये शाहजादी उरूसी एक पहेली बन गई।

आठ

दूसरे दिन सवेरे विशभदेव का आना न हो सका। वह दोपहर में भोजन के समय आया। नीलाम्बई प्रतीक्षा में थी। भोजन लगा। दोनों ने भोजन किया और तत्काल विशभदेव जाने के लिए खड़ा हो गया। नीलाम्बई मौन थी। वह बाहर द्वार तक उसे छोड़ने आई। जब विशभदेव रथ पर बैठ गया तो नीलाम्बई ने पूछा 'संध्या समय राजकुमारी तिरु ने एक गोष्ठी का आयोजन कर रखा है, उसमें प्रभु पधार रहे हैं ?'

'प्रयत्न करूंगा। निमंत्रण मुझे भी दिया गया है इस समय एक आवश्यक कार्य से जा रहा हूँ।'

नीलाम्बई ने विशभदेव के अन्तिम वाक्य पर ध्यान नहीं दिया। उसने हाथ जोड़े। सारथि ने रास हिलाई। घोड़े हिनहिनाते हुये आगे निकल गए। नीलाम्बई लौटकर दिनचर्या में लग गई। वह सुख-दुख, भला-बुरा, हानि-लाभ, किसी पर कुछ सोचती नहीं। उसका विश्वास है—जो हो रहा है वह उत्तम है और जो भविष्य में होगा वह भी उत्तम होगा।

राजप्रासाद 'मलयकूट' के भीतरी भाग में सम्राट् द्वारा बनाया हुआ नृत्य मडंप आज विशेष प्रकार से सुगंधित किया जा रहा था। सुन्दर पत्थरों का बना हुआ यह गृह आकार में लम्बा अधिक और चौड़ा कम था। दीवार से लगभग एक हाथ का फासला देकर, थोड़ी-थोड़ी दूरी पर गोलाकार खम्भे चारों ओर सुशोभित थे। इन खम्भों की ऊँचाई आधी थी। सारे खम्भे सोने के मुलम्मे से जगमगा रहे थे जिनपर विभिन्न रंगों से नाना प्रकार के जीव-जन्तुओं की आकृतियां बनाकर चित्रकारी का प्रशंसनीय प्रदर्शन किया गया था। खम्भों के ऊपरी सिरों

पर चौकोर पत्थर के पीठकों पर कहीं सूंड उठाकर चिघाड़ते हुए हाथी तो किसी पर आगे वाले पैरों को उठाकर हिनहिनाते हुए घोड़ों की विशाल मूर्तियां निर्मित थीं। साथ ही यह भी विशेषता थी कि ये मूर्तियां अन्दर से खोखली थीं। जिनके भीतर स्थान के अनुसार अन्य मूर्तियां बनाई गई थीं। इन मूर्तियों को बनाने में शिल्पी ने अपनी सीमा का उल्लंघन कर दिया था।

प्रत्येक दो खम्भों के बीच सुन्दर चौकोर पीठक पर लगभग दो हाथ लम्बी एक नाचने वाली की प्रतिमा खड़ी थी जो नृत्य के किसी एक भाव को दर्शाते हुए दिखलाई गई थी और इस प्रकार एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी और तीसरी के बाद चौथी प्रतिमाओं द्वारा पूरे भारत नाट्य शास्त्र को मूर्तिमान कर दिया गया था। इन खम्भों की पीछे वाली दीवाल भी सुनहले मुलम्मे से रंगी हुई थी। जिस पर लाल और नीले रंगों से पत्तियों को रंगकर लताओं और कुंजों का आकर्षण उत्पन्न किया गया था।

इस मंडप के बायीं ओर अन्तिम छोर पर एक कक्ष था जहाँ नर्तकियां अपने को अलंकृत करतीं तथा प्रदर्शन के उपरान्त विश्राम किया करती थीं। मंडप के दूसरे छोर पर, दीवार के समीप, मध्य में सम्राट् के बैठने के लिए एक सोने का सिंहासन था। सिंहासन के ऊपर की छत, पीछे की दीवार तथा नीचे लगभग चार हाथ चौकोर फर्श सोने के पत्तरों से मढ़ी हुई थी। सिंहासन के पीछे एक ऊँची चौकोर वेदी पर एक बारह वर्षीय लड़की की सोने की प्रतिमा खड़ी थी जिसके हाथों की मुद्रा नृत्य की समाप्ति का भाव व्यक्त कर रही थी।

यदि यह 'नृत्य मंडप' बालिकाओं को नृत्य शिक्षा देने के अभिप्राय से ही बना था पर समय समय पर विशेष प्रकार के कार्यक्रम जिसमें नृत्य, वाद्य, गीत, कविता इत्यादि सभी कुछ सम्मिलित हुआ करते थे—विशिष्ट व्यक्तियों अथवा राज्य परिवार के लोगों द्वारा यहाँ आयोजन होते रहते थे और यही कारण था कि आज सिंहासन के दोनों ओर मखमली

कालीनें बिछा दी गई थीं। आज की संगीत गोष्ठी राजकुमारी तिरु द्वारा आयोजित थी जिसमें गिने-चुने व्यक्ति ही निमंत्रित थे।

अर्धांगिनी कही जाने वाली सम्राट् की बारह स्त्रियों के अतिरिक्त अप्पा जी (प्रधानमंत्री सालुवतिम्मसी शब्द से सम्बोधित होते थे)। राजकवि पेदण्ण, प्रसिद्ध संगीताचार्य वन्दम् लक्ष्मीनारायण, राजनर्तकी नीलाम्बई, विशभदेव, प्रधान मंत्री के अनुज तथा हम्पी के नगरपाल गोविन्दराजा, मंत्र गूढ़ का प्रधान तथा सम्राट् का अत्यन्त विश्वासपात्र व्यक्ति बोम्मलत कले, वयोवृद्ध प्रसिद्ध वीणावादक तथा सम्राट् के वीणागुरु श्रीकृष्ण के आ जाने के थोड़ी ही देर बाद सम्राट् के आगमन की सूचना मिली। यथा स्थान सब खड़े हो गए। सम्राट् आया और उसके आसन ग्रहण करने पर सब बैठ गए।

नीलाम्बई ने उठकर सम्राट को पान दिए।

'देवी !' सम्राट् ने मुँह में पान रखते हुए कहा 'आज कई मास बाद तुम्हारा नृत्य देखने का अवसर मिल रहा है। यदि मैं कोई नवीनता ढूढंना चाहूँ तो तुम्हें अनुचित तो नहीं लगेगा ?'

'यह तो मेरे सौभाग्य की द्योतक होगी राजक्कल तम्बिरन।' वह नतमस्तक खड़ी थी।

'आरम्भ किससे हो रहा है ?'

'कविता पितामह से। राजकुमारी ने ऐसा ही बताया है।'

'किन्तु तिरु है ...... ?' तब तक शृङ्गार कक्ष से वह निकलती हुई दिखलाई पड़ी। नीलाम्बई शृङ्गार कक्ष को चली गई।

तिरुमलाम्बा ने राजकवि से कविता पढ़ने के लिए आग्रह किया और आँख बचाकर विशभदेव को देखती हुई सामने आकर बैठ गई। विशभदेव का हृदय खिल उठा।

राजकवि पेदण्ण ने बीच में आकर आसन ग्रहण किया और कविता पाठ करने लगे। पेदण्ण पर सम्राट् का अत्याधिक स्नेह था। यहाँ तक कि वे युद्ध में भी सम्राट् के साथ-साथ जाया करते थे।

कविता की तन्मयता में अनायास सम्राट् की दृष्टि बायें पार्श्व में बैठी हुई रानियों की ओर गई जहाँ अन्नपूर्णा भी बैठी हुई दिखलाई पड़ी। उसे आश्चर्य हुआ। सूरज पूरब से पश्चिम कैसे उग आया? वह सोचने लगा।

कविता पाठ के उपरान्त छोटी-छोटी बच्चियों द्वारा एक लोक नृत्य प्रस्तुत हुआ तदुपरान्त तिरु वीणा लेकर बैठी। विशभदेव से नेत्र मिले। रोम-रोम पुलकित हो उठे। स्वरों को मिलाने के उपरान्त उसने राग कल्याण की ध्वनि भरी। धीरे-धीरे उसकी उँगुलियां वातावरण में स्वर की टीस उत्पन्न करने लगीं। जब उसने राग समाप्त किया तो सभी ने मुक्त कंठ से उसकी प्रशंसा की परन्तु सम्राट् ने असंतोष व्यक्त किया, 'आचार्य' उसका सम्बोधन श्रीकृष्ण को था 'अभी वह मिठास नहीं है जो होनी चाहिये।' यद्यपि वह मन ही मन अपनी पुत्री की प्रगति पर प्रसन्न था।

'आजायेगी राजक्कल तम्बिरन। थोड़े अभ्यास की आवश्यकता है। मैं प्रयत्नशील हूँ।' श्रीकृष्ण और कहते ही क्या?

'मैं राजकुमारी जी से' विशभदेव बोला 'पुनः कोई दूसरा राग बजाने का अनुरोध करूँगा। आशा है पूर्ति की जायेगी।' वह तिरु को आँखों में उतार रहा था।

राजकुमारी ने दूसरा राग आरम्भ किया। इस बार उसने अधिक तन्मयता से बजाया। सोने में सुहागा मिल गया। बैठी हुई मंडली को संगीत का वास्तविक आनन्द मिला; पर विशभदेव को आनन्द के साथ किसी का प्यार भी मिल गया था।

वीणा वादन के उपरान्त इन्द्रलोक से उतरती हुई नीलाम्बई सभा मंडप में आई। उसने सम्राट् को नमस्कार किया और धीरे से बोली 'राजक्कल तम्बिरन को इस नृत्य में केवल हाथों द्वारा विभिन्न भावों को दिखलाने का प्रयत्न करूंगी। यह नया प्रयास है। सम्भव है प्रभु को कहीं-कहीं त्रुटियाँ दिखलाई पड़ें।' वह कमर पर विशेष प्रकार से लोच

लेती हुई मुड़ी और विशभदेव को बड़े प्यार भरे नेत्रों से देखा।

मण्डलेश्वर पुत्र क्षण भर के लिए दुविधा में पड़ गया। तुलना की भावना उठ खड़ी हुई—एक ओर राजकुमारी शिरु थी और दूसरी ओर नीलाम्बई। वास्तव में इस समय नीलाम्बई का रूप चकाचौंध उत्पन्न कर रहा था।

प्रथम नीलाम्बई ने दोनों हाथों को सिर के ऊपर जोड़ते हुए अंजली की। उसके उपरान्त उसने बाँयें हाथ को सामने करके दाहिने हाथ से बाँयें हाथ के अँगूठे को पकड़ा। दोनों हथेलियाँ मिल गयीं। बांयें हाथ के बीच की उँगली और दाहिने हाथ का अंगूठा एक दूसरे से सटे हुए बिल्कुल सीध में हो गए किन्तु उँगली और अँगूठे की ऊँचाई नीचाई में थोड़ा अन्तर था। नीलाम्बई मुंह के समीप हाथों को सटाती हुई बोली 'शंख।' और वह चारों ओर घूम गई। उसने दूसरा भाव प्रस्तुत किया। अपनी बाँयी हथेली को सामने फैलाते हुए उस पर उसने दाहिनी हथेली रख दी। उंगुलियाँ सब सटी और तनी हुई थीं। बाँयें हाथ की कलाई बाँयी ओर और दाहिने हाथ की कलाई दाहिनी ओर कुछ झुकी हुई थी जो आकार को गोलाकार बनाने में उपयुक्त सिद्ध हो रही थीं। उसने सम्राट् की ओर दिखाते हुए बड़ी शीघ्रता से उसे घुमाया। चक्र घूम गया।

'सुन्दर नर्तकी। अत्यन्त सुन्दर।' सम्राट् के मुँह से निकल पड़ा।

नीलाम्बई ने हाथ जोड़े तत्पश्चात् उसने गद्य और पद्य के भावों को भी प्रदर्शित किया और इस प्रकार भगवान विष्णु का संकेत करते हुए वह अन्य प्रकार के भावों का प्रदर्शन करने लगी। कभी उसने हथेलियों को जोड़कर 'नाग बंध' बनाया तो कभी मयूर और गरुड़ की आकृतियाँ उपस्थित कीं। उसने 'उत्संग', 'स्वस्तिक', 'कटक वर्धन', 'कपोत' और 'कीलक' आदि भावों को दिखलाते हुए अन्त में 'बाराह' और 'मत्स्य' के रूपों को उँगुलियों द्वारा नचाकर इस प्रकार प्रस्तुत किया मानो सचमुच वे जल में तैरने लगे हों।

नीलाम्बई की बड़ी प्रशंसा हुई। राजवकल तम्बिरन ने गले से एक हार निकाल कर उसे पुरस्कार के रूप में भेंट किया और उसकी पीठ ठोकी। राजनर्तकी ने नतमस्तक होकर प्रणाम किया और पीछे हटती हुई शृङ्गार कक्ष को चली गई।

वन्दभ लक्ष्मीनारायण के संगीत के उपरान्त तिरु ने सम्राट से वीणा बजाने को कहा। सब ने एक स्वर से समर्थन किया। सम्राट् मुस्कराया 'पर आप यह भी सोचें कि मैं बजाकर सुनाऊँगा क्या ? ये सब चीजें तो नित्य के अभ्यास की होती हैं न ?'

'सो तो ठीक है', अप्पा जी बोला 'किन्तु लोगों की इच्छाओं की पूर्ति आवश्यक है।'

महामंत्री की बात को सम्राट् टालता नहीं था। वह बीच में पड़ी कालीन पर आकर बैठा। तिरु ने वीणा लाकर रखा। तारों को मिलाने के उपरान्त आरोह अवरोह लेते हुए उसने राग खम्माच कान्हड़ा आरम्भ किया। चाहे अभ्यास जितना छूट गया हो पुराना हाथ पुराना ही रहेगा। सम्राट् ने सब को भाव विभोर कर दिया। प्रथम समाप्त होने पर पुनः दूसरे के लिए आग्रह हुआ। उसने एक और राग बजाकर समाप्त किया। जब वह सिंहासन पर आकर बैठा तो उसने अन्नपूर्णा की ओर देखा। वीणा बजाते समय भी उसने दो-एक बार देखा था किन्तु उस समय अन्नपूर्णा सिर झुकाये कालीन पर उँगुलियों से रेखायें बना रही थी।

सम्राट् के उपरान्त श्रीकृष्ण का वीणा वादन हुआ और अन्त में सम्राट् की इच्छानुसार नीलाम्बई ने कत्थक नृत्य दिखलाकर आज के कार्यक्रम का अन्त किया।

यद्यपि विशभदेव चलते समय राजकुमारी से कुछ कहना चाहता था परन्तु उपयुक्त अवसर न मिलने के कारण केवल नमस्कार करके ही उसने विदा माँग ली।

बाहर नीलाम्बई ने टोका 'रथ प्रभु की प्रतीक्षा में खड़ा है।'

किन्हीं विचारों में खोया विशभदेव ठिठका। पीछे मुसकराती हुई राजनर्तकी खड़ी थी। 'प्रभु को भोजन भी मेरे यहाँ करना है।'

विशभदेव, राजनर्तकी के रथ पर जाकर बैठ गया।

× × × ×

सम्राट् कृष्णदेव राय की बारह रानियों में तीन रानियाँ प्रमुख थीं जिन में तिरुमलाम्बा की माँ तिरुमलदेवी पटरानी थी तथा चिन्तादेवी और अन्नपूर्णादेवी दूसरी और तीसरी श्रेणी में आती थीं। अन्नपूर्णा, उड़ीसा के अधिपति रुद्रप्रताप गजपति की पुत्री थी। आज से दो वर्ष पूर्व कृष्णदेव राय ने उड़ीसा पर आक्रमण करके उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया था। गजपति को कृष्णदेव राय की सत्ता स्वीकार करनी पड़ी थी और उसने अपनी पुत्री का विवाह सम्राट् के साथ कर दिया था। शासक-शासित के स्थान पर श्वशुर और जामाता का सम्बन्ध स्थापित हो गया था। अन्नपूर्णा वधू बनकर हम्पी आई थी। पर एक नई नवेली युवती में प्रीतम से मिलने की जितनी उमंगे, कामनायें और तड़पन होनी चाहिए थीं उतनी अन्नपूर्णा में न थी। इतना ही नहीं उसने प्रथम भेंट में पति से बात तक नहीं की थी। सम्राट् को आश्चर्य हुआ था और वह लौट आया था। स्त्री की रुचि में सर्वस्व है और अरुचि में सत्यानाश।

कृष्णदेव राय ने अपनी नवविवाहिता पत्नी से पुनः मिलने का प्रयत्न नहीं किया था। उसने दूसरे ही दिन अन्नपूर्णा के मनोभाव की जानकारी करली थी। सम्राट् को दुख हुआ साथ ही रोष भी; परन्तु उसने अपने रोष को पी लेना ही उचित समझा था। सम्राट् को बताया गया था कि अन्नपूर्णा को यह विश्वास है कि उसकी उत्पत्ति क्षत्रिय वंश में नहीं हुई है। उसकी नसल में फर्क़ है। सम्राट् ने अपनी शक्ति के द्वारा उससे विवाह किया है जिसे वह बिल्कुल नापसंद करती है। वह क्षत्राणी है और एक क्षत्राणी अक्षत्रिय व्यक्ति के साथ शारीरिक या मानसिक सम्बन्ध स्थापित करने को तैयार नहीं।

यह घटना दो वर्ष पूर्व की है। उसके बाद न तो कृष्णदेव अन्नपूर्णा से मिलने गया और न अन्नपूर्णा ने कभी पति से मिलने की इच्छा प्रगट की फिर भी सम्राट् ने अन्नपूर्णा की प्रतिष्ठा में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आने दिया था। उसे वे सारी सुविधायें प्राप्त थीं जो दूसरी रानियों को दी गई थीं। यद्यपि उसकी नासमझी उसके जीवन को नष्ट कर रही थी पर स्त्रीहठ, बालहठ और राजहठ के लिए अभी तक कोई उपाय नहीं निकल सका है। अन्नपूर्णा अपने स्थान पर अडिग रही परन्तु आज की गोष्ठी में उसका सम्मिलित होना जानकारों के लिए बड़े आश्चर्य की बात थी। स्वयं सम्राट् को आश्चर्य हुआ और साथ ही उस के मन में एक ऐसी भावना उठी थी जिसके कारण वह भोजनोपरान्त अन्नपूर्णा के शयन-कक्ष की ओर चल पड़ा।

अन्नपूर्णा अभी आकर पलंग पर लेटी ही थी कि दौड़ती हुई दासी ने सम्राट् के आगमन की सूचना दी। उसने अचम्भे से दासी को देखा और उठ कर बैठ गई। सम्राट् ने कक्ष में प्रवेश किया। वह खड़ी हो गई। सम्राट् बोला, 'मेरे आने से किसी प्रकार की असुविधा तो नहीं हुई ?' वह पर्यंक पर बैठ गया।

'असुविधा तो नहीं किन्तु अश्चर्य अवश्य हुआ।' वह पर्यंक पर न बैठ कर सामने त्रिपद पर बैठ गई 'राजवकल तम्बिरन ने कैसे कष्ट किया ? कोई मेरे लिए सेवा ?'

'रानी, इस आश्चर्य के मूल में तुम्हीं कारण कही जा सकती हो मैं नहीं। क्या मेरी तरफ से कभी इस तरह का प्रयास हुआ है ?'

'सम्भव है आप सही कहते हों पर मैं इसे नहीं मानती।'

'तो यह भी दोष मेरा ही रहा ?'

'नींव डालने वाले राजवकल तम्बिरन हैं अन्नपूर्णा नहीं। शक्ति के मद में मनुष्य को अपना विवेक नहीं खो देना चाहिये। शक्ति से शक्ति पराजित होती है किसी का हृदय नहीं।'

'पर मैंने इस तरह का कोई प्रयास किया हो तब न ?'

'हो सकता है पर राजक्कल तम्बिरन ही मेरे जीवन को नष्ट करने वाले हैं। उस समय मेरे पिता जी पराजित और विवश थे। आप को स्वयं सोचना था कि क्या एक क्षत्राणी कभी अक्षत्रिय व्यक्ति के साथ रहना पसन्द कर सकेगी ?' अन्नपूर्णा बोलने में बड़ी कटु थी।

सम्राट् को जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो फिर भी वह शान्त रहा 'मैं अक्षत्रिय हूँ या क्षत्रिय इसे अब प्रमाणित करने की मैं बिल्कुल आवश्यकता नहीं समझता। तुम्हारी धारणा जैसी बन गई है, ठीक है। रहा प्रश्न तुम्हारे जीवन नष्ट होने का उसके लिये यदि मैं यह पूछूँ कि क्या दो व्यक्तियों के हृदयों का मिलन अथवा मैत्री सम्बन्ध केवल जातीयता और पारिवारिक स्तर को दृष्टि में रखकर ही किया जाता है ? तुमने संस्कृत साहित्य का विशद् अध्ययन किया है। क्या इस तरह की कोई चीज़ अभी तक तुम्हें देखने को मिली है ? दो व्यक्तियों का सम्बन्ध, विशेषकर वैवाहिक सम्बन्ध तो स्त्री पुरुष के गुण और रूप को ध्यान में रखकर ही करना न्यायसंगत और सुखद होता है न रानी ?'

'यह राजक्कल तम्बिरन अपनी और उस शास्त्र की बातें कह रहे हैं जो जनसाधारण और व्यवहार की नहीं समझी जाती हैं।'

सम्राट् ने तर्क के रूप को बदलना चाहा 'बात यहाँ राजा-रानी की हो रही है जन साधारण की नहीं। दोनों की दुनियाँ में पृथ्वी आकाश का अन्तर है। जैसा समाज हो वैसी ही बातचीत भी होनी चाहिए।' वह मुसकराया।

'पर मैं इस प्रकार के सिद्धान्त से सहमत नहीं हूँ। मेरा अटल विश्वास है क्षत्रिय पुत्र क्षत्रिय की भाँति मरता है और अक्षत्रिय संतानें कायरों के समान। मैं अपनी कोख से कायर पुत्रों को नहीं जन्म देना चाहती। सम्भवतः राजक्कल तम्बिरन को मेरे परिवार के विषय में ज्ञान होगा ?'

'भली भाँति।' सम्राट् समझ गया कि अन्नपूर्णा अपनी हठ पर

अडिग है, 'अच्छा,' वह खड़ा होता हुआ दो पग चलकर रुक गया, 'मेरे इस समय आने का अभिप्राय तुम और कुछ न समझना। मैंने तुम्हें गोष्ठी में देखकर सोचा था कि शायद तुम्हें वास्तविकता का ज्ञान हो गया है। पर दुख है कि तुम्हारी नासमझी ने अब हठ का रूप धारण कर लिया है। खैर, तुम्हें जो उचित लगे वही करो। किसी की स्वतन्त्रता अपहरण करने का मैं समर्थक नहीं।' उसके पैर उठ गये।

सम्राट् को द्वार के समीप पहुँचकर रुकना पड़ा। अन्नपूर्णा ने पूछा 'मुझे पिता के पास जाने की अनुमति मिल सकती है?' वह समीप आगई।

'हाँ। पर पुनः लौटकर यहाँ आना न हो सकेगा।'

'क्यों?'

'शास्त्र ऐसा ही कहता है। जहाँ तुम्हारे अधिकार का मैं ध्यान रखता हूँ वहाँ तुम्हें भी, मेरे अधिकारों का ध्यान रखना होगा। सहृदयता की स्थापना विकार रहित निश्छल मन की नींव पर ही की जाती है। राजा को दूसरों के हित के साथ-साथ अपने हित का भी ध्यान रखना आवश्यक है।' वह चला गया।

अन्नपूर्णा सम्राट् के अन्तिम वाक्य पर बड़ी रात गये तक सोचती विचारती रही।

नौ

दूसरे दिन रामराय आया तथा तीसरे दिन भी और इस प्रकार एक-एक करके एक सप्ताह समाप्त हो गया। उरूसी ने अभी तक सीखना आरम्भ नहीं किया था। सम्भवतः कभी करेगी भी नहीं, उसके मनोभावों से रामराय को ऐसा ही आभास मिल रहा था। उसे यह भी समझने की आवश्यकता नहीं रह गई थी कि शाहज़ादी जो कुछ कर रही है दूसरों से छिपाकर कर रही है जिसका परिणाम केवल शाहज़ादी के लिये नहीं वरन् रामराय के हित में एक दिन बड़ा घातक सिद्ध होगा। वह रात भर सोचता था, निष्कर्ष निकालता था परन्तु जब कार्यरूप में परिणित करने का अवसर आता तब वह शलभ के समान दीपक की ओर बढ़ चलता था, जहाँ उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी थी। वह क्या करे ? उसकी युवावस्था को वश में करने का कौन-सा साधन था ? जवानी और प्रेम दोनों ही अंधे कहे गये हैं।

उरूसी रामराय के प्रति आकर्षित थी और इतनी आकर्षित थी कि न उसे भविष्य का ध्यान था न अपने समाज परिवार का। वह यह भी जानती थी कि उसकी यह चोरी बहुत दिनों तक दूसरों को भुलावे में नहीं रख सकती लेकिन वह ऐसा करने के लिये विवश थी और कर रही थी। यों वह एक हफ्ते के भीतर रामराय से काफी खुल चुकी थी पर रामराय की प्रगति बहुत संतोषप्रद नहीं थी। अभी उसके विवेक पर पूर्ण रूप से पर्दा नहीं पड़ा था।

नित्य की भाँति संध्या समय रामराय आया। प्रतीक्षा में बैठी उरूसी खिल उठी। रामराय सलाम करता हुआ बैठ गया। उरूसी ने

उसकी ओर वीणा खिसकाई, 'इसे मिलाइये। आज से सीखना शुरू करूँगी।'

'मैं खुद कई दिनों से कहना चाहता था लेकिन कोई संकेत न मिलने पर चुप रह जाता था। मेरे ख्याल से शाह भी सब के साथ कल-परसों तक शिकार से लौट आयेंगे ?' रामराय वीणा खींचकर स्वरों को मिलाने लगा।

'हाँ ; परसों शाम तक उम्मीद है। कल अम्मी ख़ानम के पास ख़बर आई थी।'

रामराय ने वीणा मिला कर उसकी तरफ खिसकाया और स्वयं भी खिसक कर समीप बैठ गया। सुवासित सौन्दर्य की मादकता उसके रोम-रोम को शिथिल बनाने लगी। वह उरूसी के अंग-अंग को निहारने लगा। वह गर्दन झुका कर तारों को टुनटुनाने लगी थी। सम्भवतः उसे रामराय के आतुर नेत्रों का अनुमान हो गया था। वह काफी समय तक टुनटुनाती रही।

रामराय ने आरम्भ करने की विधि बताई।

उरूसी ने बजाने का प्रयत्न किया।

'ऐसे नहीं। इस प्रकार से।' वह और समीप खिसक आया। दोनों के बीच में अब केवल वीणा रह गई थी।

सिर पर दुपट्टे को संभालती हुई शाहज़ादी ने रामराय को देखा और बताई हुई विधि के अनुसार पुनः उँगुलियाँ चलाने लगी। कुछ त्रुटियाँ हुईं। शिक्षक ने संशोधन किया। बताने और बजाने में एक दूसरे की उँगुलियाँ छू गई। शरीर में रोमाँच हो आया। दोनों एक दूसरे की आँखों में आँखें डालकर हृदय तक पहुँच गये; परन्तु रामराय के अन्तर का भय उसे आगे नहीं बढ़ने दे रहा था। वह डरता था—सम्भव है शाहज़ादी को उसने गलत समझा हो।

उरूसी रामराय के मनोभाव को समझ रही थी। वह और आगे बढ़ी। उसने हाथ रोकते हुये पूछा 'एक बात बताइये। आप रहने वाले

खास गोलकुंडा के हैं या किसी और जगह के हैं।'

'विजयनगर का।'

'विजयनगर का!'

'जी हाँ। विजयनगर का।'

'ताज्जुब है। विजयनगर छोड़ कर आपने सुल्तान की फौज में नौकरी करना पसन्द की? आप कब से सुल्तान के पास हैं?'

'करीब आठ-दस वर्षों से।'

'और इसके पेशतर?' उसकी दृष्टि रामराय को निहार रही थी।

'साधुओं के गिरोह में था।' वह मुसकराया।

'साधुओं के गिरोह में!' वह खिलखिला उठी 'क्यों? दुनियाँ इतनी बुरी तो नहीं है?'

'बात असल यह थी कि जब मैं सात आठ साल का था तभी एक दिन घर से रूठ कर भाग निकला और बदक़िस्मती से साधुओं के चक्कर में पड़ने के कारण माँ-बाप तो छूट ही गये वर्षों तक दुनियाँ भी छूटी रही लेकिन जैसे ही इसे समझने की अक्ल आई मैं फौरन इसमें आगया। अब इसे समझ रहा हूँ। देखिये समझने में कामयाब साबित होता हूँ या नहीं। मौक़ा तो मिला हुआ है।' उसने अन्तिम वाक्य उसी प्रसंग में कहा था जिस प्रसंग की ओर उरूसी का संकेत था।

'मौक़ा मिलता नहीं', वह मुसकराई 'उसे हासिल करने के लिये कोशिश करनी पड़ती है और जब कोशिश होगी तो हर चीज़ हासिल हो सकती है।' उसने वक्षस्थल से खिसके दुपट्टे को ठीक किया 'अभी आपने शादी नहीं की है?'

'जी नहीं।'

'तो कर डालिये। बिना शादी किये यह समझ में आयेगी भी नहीं, बुजुर्गों का ऐसा ही कहना है। मेरी क़ौम में तो आप शादी करेंगे नहीं वरना मेरी निगाह में एक अच्छी लड़की थी।' शाहज़ादी खुलती जा रही थी।

'क़ौम का कोई सवाल नहीं है शाहजादी साहिबा ! मैं हिन्दू और मुसलमान में फ़र्क़ नहीं मानता लेकिन हाँ, शादी वही अच्छी मानता हूँ जहाँ दोनों को एक दूसरे के दिलों को समझ कर किसी नतीजे पर पहुँचने का मौका मिल सका हो।' उसके ओष्ठों पर मुसकान की रेखा फैल कर विलीन हो गई।

'खैर क़ायल तो मैं भी इसी तरह की शादियों की हूँ बशर्ते ऐसा मौक़ा हर एक को मिल सके तो। मेरे यहाँ ऐसी चीज़ बिल्कुल नामुमकिन है।'

'मुमकिन और नामुमकिन तो इन्सान के अख्तियार की चीज है। रहा सवाल मौक़े का, उसके लिये आपने पहले ही कह रखा है कि जिसे हासिल करना होता है खुदबखुद नहीं होता।'

उरूसी हंस पड़ी 'मेरा औज़ार मेरे ही ऊपर ?'

'यह तो होगा ही। मेरे लिये सबसे आसान यही है। फ़ायदा उठाने से क्यों चूका जाय ?'

'लेकिन फ़ायदा में जोखिम भी होता है शायद इस का अन्दाज़ आप को नहीं है ?'

'अन्दाज़ है लेकिन अभी तक इसका अनुभव नहीं कर सका हूँ या यह कह लीजिये कि अभी तक इस तरह का कोई फ़ायदा नहीं नज़र आया था जिसके लिये मैं ज़ोखिम उठाने को तैयार होता।'

शाहजादी का अन्तर गुदगुदा उठा। वह तारों पर उँगुली हिलाती हुई बोली 'मर्दों के पास चालाकी ज़्यादा है।'

'लेकिन ज़बान की सच्चाई भी तो है। जो कहते हैं उसे मरते दम तक निभाते हैं।'

'तो क्या औरतें निभाना नहीं जानती ?'

'जानती हैं पर मर्दों की तरह नहीं।'

'चलिये। मैं इसे हरगिज नहीं मान सकती। कुर्बानी में औरतें हमेशा मर्दों से आगे रही हैं। आप अपनी ही कौम में देखे, औरतें हँसती हुई

अपने शौहर की लाशों के साथ जिन्दा जल जाती हैं मगर आप इस तरह की एक भी मिसाल नहीं रख सकते जहाँ शौहर ने अपनी बीबी के ग़म में अपनी हस्ती को मिटा लिया हो। बताइये है कोई मिसाल ?' दोनों अधिक से अधिक खुल जाने के प्रयत्न में थे।

कलाकार को अपनी हार स्वीकार करनी पड़ी। वह मुसकराता हुआ टकटकी बाँधकर उरूसी को देखने लगा। उरूसी ने भी अपने नेत्र उसी के नेत्रों में डाल दिये; परन्तु स्त्री की लज्जा ने उसे अधिक समय तक इस आनन्द के उपभोग का अवसर नहीं दिया। उसके नेत्र झुक गये। रामराय अब अपने को रोकने में असमर्थ था। उसने अनायास हाथ बढ़ाकर उरूसी के हाथ को पकड़ लिया। वह पुनः उसे देखती हुई गर्दन झुका कर अपने में कुछ सिमट गई। उसकी हथेली रामराय की हथेली में ज्यों की त्यों दबी रही। उसने हटाने का प्रयत्न नहीं किया।

'मैं इस योग्य नहीं था जिस योग्य,' रोमाँचित रामराय भर्राई हुई आवाज में कह रहा था 'मुझे बताया गया है। अगर मैं इस मुहब्बत को जिन्दगी भर धरोहर के रूप में रखने का वायदा करूँ तो क्या यक़ीन किया जा सकेगा ? दिल की हक़ीक़त बतलाने का और कोई ज़रिया नहीं है वरना अब तक वह भी सामने होता।' कलाकार का संसार साकार हो गया था।

'आप का मज़हब मुझे कबूल नहीं करेगा। मेरे साथ आप की भी जिन्दगी बरबाद हो जायेगी।' उसने धीरे से अपना हाथ खींच लिया।

'मज़हब एक दायरे में बंधकर चलता है शाहज़ादी और दिल दायरे के बाहर। इसकी कोई सीमा नहीं होती और जिसकी कोई सीमा नहीं होती वह महान समझा जाता है। महान हमेशा पवित्र और जिन्दगी को सकून और नई रोशनी देने वाला होता है। इन्सान पहले जिन्दगी में सकून ढूंढता है उसके बाद मज़हब। मुझे सकून की फिक्र है मज़हब की नहीं।'

उरूसी ने झुकी दृष्टि से देखा। वास्तव में जो कुछ वह कह रहा था हृदय से कह रहा था। वहाँ किसी प्रकार की स्वार्थपरता नहीं दिखलाई पड़ रही थी। 'आज आप के जाने में देर हो गई।' उरूसी ने बात के सिलसिले को बदल दिया 'वक्त शायद ज़्यादा हो गया है।'

रामराय को अनिच्छा सहित उठना पड़ा। उरूसी द्वार तक छोड़ने आई। रामराय के पैर वहाँ आकर रुक गये। पुरुष का जब बाँध टूटता है तो वह सँभाले नहीं सँभलता। उसके लिये प्रतीक्षा की स्थिति असहनीय हो जाती है। वह निर्णय चाहता है और तत्काल चाहता है। उसने पूछा 'अब तो मेरी सकून मुझे मिल जायेगी ?'

'मुझे क्या मालूम ?' वह कनखियों से देखकर मुसकरा उठी।

रामराय के हाथ फैल गये और उसने उरूसी को खींचकर भुजाओं में आवद्ध कर लिया।

दस

विशभदेव ने संसार के जिस रूप को सन्मुख देखा है उसी को समझने का प्रयत्न भी किया है। वह प्रत्यक्ष को सत्य मानता है और अप्रत्यक्ष को असत्य। जो बना है वह बिगड़ेगा और उसके उपरान्त न किसी को कुछ जानकारी है और न जानने की आवश्यकता है। सृष्टि की उत्पत्ति और विनाश समय की धुरी पर नाचते हुए चक्र के समान है। यह स्वयं बनती है और स्वयं बिगड़ती है। ईश्वर की कल्पना अस्वाभाविक और भ्रमपूर्ण है। मेरे को पुनः जीवन देते हुए अभी तक नहीं

देखा गया है। प्रकृति सुखों की निधि है। वह दुखों का विनाश करके जीवन को आनन्दमय बनाने का सम्पूर्ण साधन जुटाती है। पुरुषार्थियों के लिए स्वर्ग है और भाग्य का बहाना ढूँढने वालों को आलसियों के लिए नरक। सब कुछ यहीं है। इस लोक के अतिरिक्त अन्य कोई लोक नहीं। परलोक मिथ्या है—मदारियों की देन। उपासना करनी हो तो स्वयं शरीर की करो। उसे नीरोगी और शक्तिशाली बनाओ ताकि संसार के समस्त सुखों का अधिक से अधिक उपयोग किया जा सके। मृत्यु ही मुक्ति है।

ज़िन्दगी के विषय में भी विशभदेव का बड़ा साफ और तर्कयुक्त दृष्टिकोण है, जब शरीर के रोम-रोम में सुख प्राप्ति की मनोवृत्ति निहित है, जो प्राकृतिक है—तो फिर कष्टदायक कार्यों को करने से लाभ ? जीवन का एक मात्र उद्देश्य है—हँसते-हँसते इसका अन्त कर देना। जब जन्म के पूर्व का कोई ज्ञान नहीं तो मरण के पश्चात की क्या चिन्ता ? जीवन नाश्वान और क्षणिक है। उपभोग इसकी आकांक्षा है। त्याग नपुंसकों द्वारा फैलाया हुआ जाल है—अकर्मण्यता का पोषक। अकर्मण्यता अवास्तविक है और कर्म वास्तविक है। पहला अप्रत्यक्ष की दुहाई देता है और दूसरा प्रत्यक्ष की। इन्द्रियों से प्रत्यक्ष की कामना है परोक्ष की नहीं और यही जीवन का लक्ष्य है। आदर्श, भावुकों की थोथी बकवास है। स्वार्थ प्रधान है परमार्थ गौण। प्रथम सत्य है। शेष कल्पित और मृत्यु के उपरान्त की दुनियाँ का सृजन करता है जो व्यवहारिक दृष्टि से प्रयोजन हीन है। प्रयोजन हीन अयोग्य और असत्य है। भोग्य, सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण है।

यह है संसार और जीवन के विषय में विशभदेव की परिभाषा जिसको उसने तर्क की कसौटी पर कस कर बिल्कुल खरा सिद्ध कर रक्खा था। उसका जीवन पूर्णतः अपने सिद्धान्त के अनुरुप था और यही कारण था कि नास्तिक होते हुए भी वह विद्वानों के लिए प्रिय था। यद्यपि अपने विचारों में वह सदैव स्थिर और अडिग रहा है परन्तु इधर

कुछ दिनों से उसकी मनःस्थिति डगमगाने लगी थी। उसके सामने एक विचित्र समस्या आ खड़ी हुई थी। पहले वह नीलाम्बई के प्रति आकर्षित हुआ। प्रत्युत्तर में नीलाम्बई का भी आकर्षण मिला जो अभी तक और किसी को नहीं प्राप्त हो सका था। विशभदेव आगे बढ़ा। यह स्वाभाविक था। परन्तु नीलाम्बई ने असमर्थता प्रकट की और आदर्श की महानता को सिद्ध करने का प्रयत्न किया जिसे वह तथ्यहीन समझता था। विचारों में भिन्नता आई। तार्किक ने समझाने का प्रयास किया क्योंकि वह नर्तकी के प्रति आकर्षित हो चुका था। वह अपने प्रयास में असफल साबित हुआ। नर्तकी अपने विचारों पर अडिग रही। विशभदेव का आकर्षण और बढ़ गया। हृदय की गतिविधि अनोखी है।

इसी बीच उसकी भेंट राजकुमारी तिरुमलाम्बा से हुई। वहाँ सोना के साथ सुगन्ध भी था। इच्छायें मन से कुछ कहने लगीं। चाह बढ़ी। नेत्रों द्वारा उसने अपने को व्यक्त किया। तिरु को अच्छा लगा। वह भी विशभदेव के प्रति आकर्षित हो उठी। दोनों एक-दूसरे के समीप आने का मार्ग ढूंढने लगे परन्तु गोष्ठी के दूसरे दिन से विशभदेव के मस्तिष्क में एक नई समस्या ने पुनः जन्म लिया। तिरु से विवाह हो जाने पर क्या वह नीलाम्बई के आकर्षण के प्रति उदासीन बन सकता है? और यदि नीलाम्बई के प्रति वह किसी कारणवश बन भी जाए तो क्या जीवन में अन्य आने वाली रूप गुण सम्पन्न रमणियों के प्रति वह इस प्रकार की उदासीनता उत्पन्न करने में समर्थ हो सकेगा? सम्भवतः नहीं। वह संसार में समस्त प्राप्त सुखों के उपभोग का समर्थक है और जो अप्राप्य हैं उन्हें प्राप्त करने का पक्षपाती। तब प्रश्न उठा कि यदि ऐसे ही विचारों की स्वतंत्रता उसकी विवाहिता पत्नी तिरु माँगने लगे तो क्या वह देने को तैयार हो सकेगा? विशभदेव की अन्तरात्मा ने नाही कर दिया। उसने भी हाँ में हाँ मिलाई परन्तु बुद्धि इसे समर्थन न दे सकी। तर्क की कसौटी पर यह चीज न्यायसंगत नहीं उतर रही थी।

मस्तिष्क ने तर्क रखा—जब विशभदेव की इन्द्रियों को सब छूट है तो तिरु की इन्द्रियों को क्यों नहीं छूट दी जाएगी ? दोनों के अधिकारों में अन्तर बरतने का कारण ? जब उपभोग जीवन का लक्ष्य है तब दूसरे को इससे वंचित रखने का क्या अधिकार ? शक्ति के बल पर दूसरों के अधिकारों का अपहरण करना अन्याय नहीं तो और क्या है ? विशभदेव उलझन में पड़ गया। उसे प्रथम बार अपने में कुछ कमी महसूस हुई।

कई दिन बीत गये विशभदेव को इस प्रश्न पर सोचते-विचारते; परन्तु जो वह निष्कर्ष निकालना चाह रहा था नहीं निकल पा रहा था। निकाल सकता था यदि 'वह जबर्दस्त का ढेंगा सिर पर'—वाली मिसाल का अनुकरण करता। प्रश्न की जटिलता बढ़ गई। उसकी स्थिति उस साँप जैसी हो गई थी जिसने धोखे में छछूंदर पकड़ लिया हो। निगलने में मौत थी और छोड़ने में अंधे होने का भय। अधिकारों की छूट दी नहीं जा सकती थी और सिद्धान्तों का गला घोंटकर जीवन बिताना असम्भव था। उसने हम्पी को ही छोड़ देना उचित समझा। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।

निश्चय कर लेने के उपरान्त भी अभी तक विशभदेव ने हम्पी नहीं छोड़ी थी। आज वह पुनः राजप्रासाद मलयकूट के पीछे वाले उद्यान में एक कुँज के भीतर लेटा हुआ समस्याओं के निराकरण में तल्लीन था। प्रकृति उसे नई सूझ-बूझ देने में सदैव सहयोगिनी रही है। अभी बहुत देर नहीं हुई थी कि रमणियों की खिलखिलाहट की ध्वनि उसके कानों में पड़ी। उसने सिर उठाकर देखा—सम्भ्रान्त घर की महिलायें सपरिवार उद्यान विहार का आनन्द ले रही थीं। उसे आज के दिन का स्मरण हो आया। वह उठकर बिल्कुल सन्नाटे में पीछे की ओर एक श्वेत पत्थर की बनी चौकी पर जाकर बैठ गया। आने वालों की संख्या धीरे-धीरे अभी बढ़ रही थी।

जब बनने को होता है तो परिस्थितियां भी अनुकूल पड़ने लगती

हैं। न घटने वाली घटना भी घट जाती है। संयोग की बात थी कि आज तिरु भी टहलने निकल पड़ी और उसने भी एकान्त हेतु उधर ही जाना उचित समझा जिधर विशभदेव बैठा हुआ था। राजकुमारी की दृष्टि अचानक विशभदेव पर जा पड़ी। वह झिझकी और शीघ्रता से मुड़ना ही चाहती थी कि विचारों में उलझे हुए विशभदेव की नज़र ऊपर को उठी। तिरु हाथ जोड़ती हुई खड़ी हो गई। विशभदेव उठ कर खड़ा हुआ और प्रत्युत्तर में हाथ जोड़ लिए 'आइए।' वह आग्रह के स्वर में बोला।

तिरु संकुचाती हुई आकर बैठ गई।

'आज सम्भवत: उठते समय किसी भले व्यक्ति का मुँह दिखलाई पड़ गया था।' विशभदेव की खुशी का उस समय क्या कहना था ?

'क्यों ?' वह अनजान सी बोली

'आप के साथ बैठकर बातें करने का सुअवसर जो प्राप्त हुआ; अन्यथा ऐसी शुभ घड़ी कब मिलती है ?'

'विद्वानों की यही विशेषता है। जो मुझे कहना चाहिए था उसे आपने कह दिया। सामर्थ्यवान अपनी सामर्थ्य का उपयोग करने में चूकता नहीं। है न ऐसी बात ?' तिरु में बड़ा भोलापन था।

'उस दिन की गोष्ठी बड़ी सफल रही। राजनर्तकी नीलाम्बई का नृत्य और राजकुमारी तिरुमलाम्बा की वीणा की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। मैं आपसे सच कहता हूँ उस दिन मुझे अनुभव हुआ कि संगीत में जो आकर्षण और तन्मयता है वह किसी भी ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन में नहीं।'

'तिरुमलाम्बा की वीणा के सम्बन्ध में तो गलत है अन्य के विषय में मैं कुछ कह नहीं सकती। पर इतना विश्वास है कि यदि ऐसे ही उदार प्रशंसको का सम्पर्क बना रहा तो शीघ्र ही इस योग्य बनने में सफल हो सकूँगी।'

'परन्तु इसकी भी छूट अपने को कहाँ है वरना जीवन भर प्रशंसा करते

रहने पर भी मुँह न थकता ।'

तिरु के हृदय के तारों को जैसे किसी ने झनझना दिया हो किन्तु उसने भावों को अपने मुखमंडल पर व्यक्त नहीं होने दिया । वह सुनी अनसुनी-सी बोली 'उस दिन राजनर्तकी ने भावों का बड़ा सुन्दर प्रदर्शन किया था । अनोखा प्रयास है ।' उसने बात बदल दी ।

'निस्सन्देह उनकी लग्न, नृत्य जगत को बहुत सी वस्तुयें दे जायेगी । कला के प्रति उनका त्याग सराहनीय है । संसार में रहकर संसार से विरक्त रहना साधारण बात नहीं । पता नहीं उनसे आप की बात-चीत कभी दर्शन शास्त्र पर हुई है या नहीं पर मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि ज्ञान के क्षेत्र में भी उनकी सूझ-बूझ बड़ी पैनी है । तर्क के बल पर वह असत्य को भी सत्य सिद्ध करने की क्षमता रखती है ।' विशभदेव भी उसी प्रकार की बातें करने लगा ।

राजकुमारी को आश्चर्य हुआ, 'आज आप से एक नई जानकारी हुई । मुझे तो उन्होंने लेशमात्र भी आभास नहीं होने दिया कि उन्हें ज्ञान के सम्बन्ध में भी इतनी रुचि है । समय से नृत्य सिखलाना और उसके उपरान्त जितनी देर साथ रहना नृत्य के विषय में ही बातें करना तदुपरान्त कुछ समय तक माता जी के पास बैठकर वापस लौट जाना । ऐसा उनके नित्य का नियम है । मैं कल से उन्हें खो दूँगी । देखती हूँ अपने को छिपाकर रखने की मनोवृत्ति उनका अब तक साथ देती है ? वह तनिक रुकी 'क्या उनकी भी विचारधारा आप से मिलती जुलती है ?'

'क्यों ? मेरी विचारधारा से आपको घृणा है ?'

'हाँ ।' वह होठों में मुसकराई ।

'तर्क के बल पर या हठधर्मी द्वारा ?'

'दोनों ही समझ लीजिये ।'

'तब तो मुझ से भी घृणा होना स्वाभाविक है ?' विशभदेव ने जाल में फंसा लिया ।

तिरु चक्कर में पड़ गई। हाँ कह नहीं सकती थी और नाही करने में लज्जा की दीवार थी और उत्तर हाँ-ना के अतिरिक्त दूसरा हो नहीं सकता था। उसे विवश हो जाना पड़ा। फिर भी उसने तोड़-मोड़ कर उत्तर दिया 'जिस दिन मानव जाति में विचारों के आधार पर घृणा फैल जायेगी उस दिन संसार का अस्तित्व कहाँ रह पायेगा? यवनों द्वारा आये दिन के युद्ध इसी नासमझी के तो द्योतक हैं? मैं इसे हेय समझती हूँ।'

विशभदेव को तिरु मानो प्राप्त हो गई 'तो मैं समझ लूँ कि राजकुमारी जी को मुझसे घृणा नहीं है?' उँगुली पकड़ने के बाद कलाई इसी तरह पकड़ी जाती है।

तिरु ने उसकी ओर देखा और अचानक खड़ी हो गई 'अब मैं चल रही हूँ।' मन्द-मन्द मुसकान की आभा उसके मुख मंडल पर फैल गई थी।

'इतनी जल ········· ।'

'वीणा सीखना है।'

वह हाथ जोड़ती हुई मुड़ने को हुई कि पुनः विशभदेव ने पूछा अब दर्शनों का······ ·····।'

तिरु ऊपर की तरफ उँगुली से संकेत करती हुई शीघ्रता से मुड़ गई।

ग्यारह

उरूसी और रामराय की रात कल्पनाओं में कटी-सुखद कल्पनाओं। सवेरा हुआ। संध्या की प्रतीक्षा होने लगी। दिन कटना पहाड़ हो गया। किसी काम में तबीयत नहीं लग रही थी। दिन की एक-एक घड़ी एक प्रहर जैसी बीतने लगी। बड़ी प्रतीक्षा के उपरान्त संध्या आई लेकिन खोजा लिवाने आये तब तो। आज उसके आने में भी विलम्ब मालूम पड़ रहा था। यद्यपि नित्य की भाँति वह निश्चित समय पर ही लिवाने आया था। देर में आने के लिये रामराय ने उसे झिड़की बताई और साथ हो लिया।

रामराय ने पर्दा हटाते हुये कक्ष में प्रवेश किया। प्रतीक्षा में बैठी उरूसी ने आहट पाकर सामने को देखा। आगन्तुक वही था जिसकी इन्तज़ारी थी। उसने लज्जावश गर्दन झुका ली। रामराय गावतकिया खींचकर उसके पार्श्व में बैठ गया। वह बोला 'बड़ी मुश्किल से दिन कटा है। यह दुनियाँ अच्छी समझने को मिली ? न रात को नींद न दिन में चैन। अब जिन्दगी का क्या होगा ?'

वह चुप रही पर उसका आह्लादित मन धीरे से कह उठा 'यही हालत तो मेरी भी है।'

रामराय ने फिर छेड़ा 'सोचा था इस समय चलकर रात के लिये कोई तरकीब पूछ लूँगा लेकिन यहाँ तो ऐसा जान पड़ रहा है कि लोगों ने बोलने तक की क़सम खा रक्खी है। मियाँ जी रोज़ा रखने चले और गले पड़ गई नमाज़।'

उरूसी को हंसी आ गई 'मियाँ जी को रोज़ा रखने के लिये कहा किसने था ? ग़लती खुद किया जाय और कुसूरवार दूसरे को बनना पड़े ?'

'शुक्र है मेरी आरज़ू सुनी तो गई।' उसने ठोढ़ी पकड़ कर ऊपर को उठाया 'मैंने तुम्हें पाकर जीवन में क्या हासिल कर लिया है बता नहीं सकता। मुझे जो नहीं मिलना चाहिये था वह मिल गया। अब मुझे और किसी चीज़ की इस दुनियां में ख्वाहिश नहीं है। तुम्हारी मुहब्बत मेरी ज़िन्दगी को हमेशा रोशनी देती रहेगी।'

'अम्मी ख़ानम को शायद आपके आने जाने की खबर मिल गई है लेकिन उन्हें यक़ीन नहीं हुआ है। ऐसा मुझे बताया गया है। आज रात मैं उनसे मिलूंगी। मुझे यकीन है कि अभी इस तरह की कोई बात उठने को नहीं। मैं ......।' उसकी निगाह नीचे को थी।

'लेकिन यह कब तक ? मेरा इस तरह के आने जाने को बहुत दिनों तक छिपा कर रक्खा नहीं जा सकता। किसी दिन भी यह भेद खुल सकता है।'

उरूसी चुप रही।

'क्या शिकार से कल सब लोग लौट रहे हैं ?'

'हाँ। शाम तक आजायेंगे।'

'फिर ?'

उरूसी इस बार भी चुप रही।

'मेरे लिये भी कल से वक्त की पाबन्दी हो जायेगी। कुतुबशाह को मेरी कब ज़रूरत पड़े कहना मुश्किल है और ऐसी सूरत में यहाँ मेरा आना हम दोनों के हक़ में भला साबित होगा या बुरा इसे आप अच्छी तरह समझती हैं।'

'आपके शाह को आपकी ज़रूरत रात ही में तो पड़ेगी जब सब लोगों के साथ वह महफिल में होंगे ? दिन में दोपहर के वक्त आप यहाँ आ सकते हैं। मैं इस तरह का इन्तज़ाम यहाँ कर लूंगी और अगर कोई सूरत निकल सकी तो बहुत मुमकिन है कि अब्बा जनाब से वीणा

सीखने की इजाज़त भी ले लूँगी ।'

'ग़ैर मुमकिन है और अगर मुमकिन भी होगया तो कब तक के लिये ? मुझे ज़्यादा-से-ज़्यादा एक महीने के भीतर चला जाना होगा ।'

'क्यों ? अगर मैं आपके शाह से कहलवा कर आपको रुकवा लूँ तो ?'

'लेकिन इससे लाभ ? सवाल ज्यों-का-त्यों बना रहा । हल कहाँ निकला ।' रामराय के चेहरे पर कुछ उदासी की आभा झलकने लगी थी, 'हम लोग चोरी से कब तक मिलते रहेंगे ? एक-न-एक दिन सुल्तान को इसका इल्म होकर ही रहेगा ।'

उरूसी कुछ सोचने लगी 'तब ?' सम्भवत: अभी वह दूसरे प्रकार के साधनों के उपयोग के पक्ष में नहीं थी ।

'इस के लिये अब एक ही रास्ता है और वह है यहाँ से भाग निकलना ।'

'सब कुछ छोड़ कर ?'

'हाँ ।'

'कहाँ के लिये ?'

'जहाँ आप रहेंगी ।'

'कब ?'

'आज भी चला जा सकता है ।'

'नहीं । मेरा जाना नहीं हो सकेगा । जल्दबाज़ी का काम अच्छा नहीं होता । इतना उतावलापन भी किस काम का ।' वह समझाने लगी ।

भावुक रामराय का मन बैठ गया । मुँह उतर आया । वह किंकर्तव्यविमूढ़-सा उरूसी को देखने लगा ।

उरूसी ने आँख मिलाई 'मेरी बात आपको बुरी लग गई ?'

रामराय की दृष्टि झुक गई । वह मौन रहा ।

'इस उतावलेपन को बहुत दिनों तक क़ायम रखने की ज़रूरत

पड़ेगी न ? ज़िन्दगी बहुत बड़ी है। हालांकि मैंने दुनियाँ को आप से ज़्यादा नहीं देखा है लेकिन इतना ज़रूर कह सकती हूँ कि मुहब्बत की ज़िन्दगी तभी तक दूसरे को मुहब्बत की जंज़ीरों में बाँधे रह सकती है जब तक उसमें उतवलापन है मुहब्बत करके निभाना बहुत मुश्किल नहीं, मुश्किल है उसे मिसाल की शक्ल में दूसरों के सामने छोड़ जाना।' उरूसी पढ़ी-लिखी है।

रामराय के मन ने उरूसी के कथन को मान्यता दी। उसे प्रसन्नता हुई 'मुझे आपकी बातों से इन्कार नहीं लेकिन मेरे उतावलेपन के कारणों को भी तो आप समझने की कोशिश करें। मैं वक्त की इन्तज़ारी में आपको खोना नहीं चाहता। सुल्तान को इसकी खबर हुई नहीं कि आप सदा के लिये मुझ से छीन ली जायेंगी और मुझे इसका भी अन्दाज़ है कि सुल्तान के आते ही हम लोगों की चोरी फौरन से पेशतर पकड़ ली जायेगी।'

वह हँस पड़ी 'मुहब्बत का मज़ा तो इसी में है। ज़रा मेरी तरफ़ देखिये।'

रामराय ने अनमने भाव से गर्दन उठाई।

वह उसकी आँखों में आंखें डाल कर क्षणभर तक देखती रही— 'क्या अब भी आप से मुझे कोई जुदा कर सकता है ?'

पुरुष ने उसे खींच कर अपने अंकों में भर लिया। उरूसी सिमट कर उसकी हो गई। ओष्ठों की व्याकुलता बढ़ गई।

कुछ समय उपरान्त युवती बोली 'कल शाम को आपका आना हो न सकेगा ?'

'उँहूँ।'

'तो दोपहर में ....।'

'नहीं। इसमें खतरा है। मुमकिन है मेरे लौटने में देर हो जाय। आपके नज़दीक बैठने पर वक्त का ख़्याल रखना मुश्किल है।' उसने पुनः गर्दन झुका कर गुलाब सदृश्य कपोलों को चूम लिया।

'नावक्त हो जायेगा।' वह धीरे से अलग हो गई।

रामराय चलने के लिये खड़ा हुआ।

'कल दोपहर में खोजा जायेगा।' उरूसी ने दरवाज़े के समीप पहुँच कर कह दिया।

बारह

दूसरे दिन दोपहर को खोजा आकर बतला गया कि सुलतानों के लौटने के कार्यक्रम में एक दिन का अन्तर पड़ गया है। वे लोग संध्या को न लौट कर दूसरे दिन संध्या को लौटेंगे। मिलन की उत्सुकता में प्रसन्नता बिखर पड़ी। प्रियतमा के मिलने की उत्सुकता की प्रतीक्षा में जो आनन्द है वह सम्भवतः संसार के अन्य किसी समागम में नहीं। प्रकाश जलने पर पुनः खोजा आया। प्रतीक्षक तैयार था। साथ हो लिया।

उरूसी ने मुसकराते हुये झुक कर सलाम किया और खड़ी होकर उसे देखने लगी।

रामराय गावतकियों के सहारे बैठ गया 'आज चाँद की चमक बढ़ गई है। निगाह नहीं टिकती। बात क्या है?' उसने अंगड़ाई ली।

'मैंने कल आप से क्या कहा था? अम्मी ख़ानम ने मंजूरी दे दी है। कल अब्बा जनाब के आने पर बात पक्की हो जायेगी।' उरूसी ने झूठ कहा था।

'अच्छा, जरा इधर करीब तो आइये।'

'उँहूँ।'

'क्यों ?'

'बातचीत दूर से अच्छी होती है।'

'तो क्या खड़े-खड़े गुफतगू होगी ?'

'नहीं, बैठी जाती हूँ।' वह वहीं बैठ गई।

'अगर कोई बात जोर से कहने वाली न हो तो ? बड़े-बूढ़ों का कहना है कि दीवारों के भी कान होते हैं। खास तरह की बातें करने के लिये बड़ी होशियारी वरतने की ज़रूरत होती है।'

'लेकिन मैं खास तरह की बातें सुनना कब चाहती हूँ ? मुझे इसकी ज़रूरत नहीं। अगर आम कुछ हो तो बताइये।' वह ओठों के भीतर मुसकराई।

'तो रहने दीजिये। जब आपको गरज नहीं तो मुझे क्यों होने लगी ? काज़ी जी क्यों दुबले, शहर के अन्देशे से। अगर मुझ से कोई एक हाथ दूर हटे तो मैं उससे दो हाथ दूर हटने को तैयार रहता हूँ। सौ बार जिसे चाव हो मेरे पास सुनने आवे वरना अपने को क्या मतलब ?' रांमराय ने गंभीरता बिगड़ने नहीं दी थी।

'तो यहाँ भी अपने को कोई जरूरत नहीं। अपना भी उसूल इसी तरह का है।' वह भी गंभीर बनकर बोली।

'लाइये वीणा।' वह सीधा बैठ गया। 'जिसके लिये मैं मुकर्रर किया गया हूँ उसे अन्जाम देकर चलूँ। बेकार समय बरबाद करने से क्या फायदा ?'

उरूसी समझती हुई भी अन्जान-सी वीणा लेकर आई। रामराय को अवसर मिल गया। उसने पकड़ लिया और फिर दोनों एक दूसरे के आलिंगन में कुछ क्षणों के लिये खो गये।

युवक ने पूछा 'अम्मीखानम ने क्या मंजूरी दी है ?'

'उनकी तरफ से सीखने की इजाज़त है बशर्ते अब्बा जनाब को कोई एतराज़ न हो।' वह अलग हट गई।

रामराय चुप होगया। कुछ सोचने लगा।

'क्या सोचने लगे ? उरूसी इस अनायास भाव परिवर्तन का कारण न समझ सकी।

'कुछ नहीं।'

'फिर भी।'

'कोई खास बात नहीं।' रामराय ने वास्तविकता को छिपा लेना चाहा।

उरूसी ने पुनः कोई प्रश्न नहीं किया। दोनों चुप रहे। कक्ष में मधुरता के स्थान पर खिन्नता फैल गई।

उरूसी ने निस्तब्धता भंग की 'आप निकल चलने की तैयारी कीजिये। मौक़ा मिला तो कल वरना परसों जरूर निकल चलेंगे। इन्तज़ाम तो सब हो ही जायेगा ?' उसने रामराय के मन की बात कर दी।

पुरुष ने तनिक अचम्भे से देखा।

'आपको यक़ीन नहीं हो रहा होगा ?'

रामराय को यक़ीन हो गया। साथ ही सुखद जीवन का एक मनोरम चित्र बिजली की भाँति मस्तिष्क में कौंध गया। आनन्द रोम-रोम में फैल गया।

बाहर आहट का संकेत दिया गया।

'कौन ?'

दासी अन्दर आई 'खानम हुज़ूर ने याद फर्माया है।' उसने बताया।

'अभी ?'

'जी।'

'चलो आ रही हूँ।'

दासी चली गई।

आप को दोपहर तक ख़बर कराऊँगी फिर उसी के मुताबिक आप जैसा ठीक समझें इन्तज़ाम करें।'

'आप महल से······।'

'उसे मैं कर लूँगी। आप बाहर की ही फिक्र रक्खें।'

'ठीक है।' वह खड़ा हुआ।

उरूसी ने वीणा थमा दिया।

'इसे मैं भूला ही जा रहा था।' वह कक्ष के बाहर हुआ।

× × ×

दूसरे दिन दोपहर तक शाहज़ादी की कोई सूचना नहीं आई। दोपहर के उपरान्त तीसरे पहर का भी अन्त हुआ। रामराय की अधीरता बढ़ी। उधर शिकार से भी सब लोग लौट आये थे। उलझन और बढ़ गई थी। वह रावटी के भीतर बैठा हुआ—अब आता होगा, अब आता होगा, सोचते-सोचते संध्या हो गई। खोजा कोई संदेश लेकर नहीं आया।

रात बीत गई। प्रेमी अब सूचना न आने के कारणों का अनुमान लगाने लगा। मन में संदेह के नाना रूप बनने लगे। चिन्ता बढ़ गई। क्या करे क्या न करे? इस समस्या का उसके पास कोई समाधान नहीं था। कारण, वह साधन हीन था। उरूसी से उसकी मुलाकात कहाँ सम्भव थी।

दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर उसने महल के आस-पास का चक्कर लगाया; परन्तु इससे लाभ क्या था? दुखी मन लौटना पड़ा। तीसरे दिन का प्रथम प्रहर भी समाप्त हो गया। रामराय की आशा निराशा में बदलने लगी।

दोपहर में आदिलशाह किसी ख़ास काम से कुतुबशाह से मिलने आया और शीघ्र ही लौट गया—ऐसी सूचना रामराय के कानों में किसी के द्वारा पड़ी। उसका शरीर किसी आशंका-से काँप उठा। वह गंभीर चिन्ता में पड़ गया।

अभी इस सूचना को मिले बहुत समय नहीं हुआ था कि कुतुबशाह ने रामराय को बुलवा भेजा। रामराय ने अनुमान लगा लिया। वह भावुकता की दुनियाँ से निकलकर वास्तविकता के धरातल पर आया।

दुनियां समझ में आ गई। झोंपड़ी में रहकर जो केवल महलों का स्वप्न ही नहीं देखते वरन् उसे हासिल करने के लिये तत्पर भी हो उठते हैं उनकी ज़िन्दगी हथेली पर तो रहती ही है। रामराय ने धैर्य का सहारा पकड़ा और शान्तिपूर्वक कुतुबशाह से मिलने चल पड़ा।

शाह के सन्मुख रामराय पेश किया गया। उसे देखते ही वह दांत पीसता हुआ गरज पड़ा 'तेरी हरकत तेरे सिर को धड़ से अलग कर देने के काबिल है रामराय। तुझे अपनी औक़ात का बिल्कुल ख्याल नहीं रहा तेरे दिमाग में मैला भरा है मैला। शैतान! मेरा खून खौल रहा है लेकिन तेरी वफादारी और ख़िदमत का ख्याल करके मुझे कुछ सोचना पड़ जाता है। मैंने तेरी जान बख्श दी लेकिन जितनी जल्दी हो सके तू इस हुकूमत से भाग कर बाहर निकल जा। तुझ से मुझे कुछ सुनना नहीं है। जा।' सुल्तान ने वफादारी और सेवाओं का इतना ख्याल रखा यही क्या कम था? उसकी जान तो बच गई।

रामराय सलाम करता हुआ बाहर निकला।

संध्या हो रही थी। बीजापुर के बाहर निकलते-निकलते शाम खत्म हो गई। अंधेरे में उसे घोड़े की टाप सुनाई पड़ी। उसे कुछ शंका हुई। तब तक किसी की आवाज़ आई 'सरदार।'

आवाज़ रामराय के एक सैनिक नूरअली की थी। वह खड़ा हो गया।

नूरअली घोड़े से कुदकर नीचे आया और धीरे से बोला 'जितनी तेज़ी से सरदार भाग सकते हो भाग जाओ। सुनने में आया है कि आदिलशाह ने तुम्हें मारने के लिये हुक्म दे रक्खा है।' उसने घोड़े की लगाम उसे पकड़ा दी।

रामराय उसके गले से लिपट गया। उसकी आंखें डबडबा आई थीं।

'ख़ुदा हाफिज़ सरदार।' उसने रामराय को सीने से अलग किया।

रामराय कूद कर घोड़े पर जा बैठा 'खुदा हाफिज़।' उसने एड़ लगा दी।

तेरह

मुद्रा गृह के सामने वाली सड़क की दूसरी पट्टी पर नगरपाल गोविन्द राजा का भवन था। जहाँ सुरक्षा निमित्त बारह हज़ार सैनिक सदैव तैयार देखे जाते थे। टकसाल के पिछले भाग में 'पान-सुपारी' बाज़ार था। तीन सौ गज लम्बी और पन्द्रह गज चौड़ी सड़क के दोनों ओर श्वेत पत्थरों से निर्मित सुन्दर-सुन्दर एक मंजिली चिकनी दुकानें थीं। सड़क और दुकानों के बीच जो चौड़ी पटरी थी उस पर आमों के वृक्ष शीतलता के विचार से लगा दिए गये थे और इन्हीं वृक्षों के नीचे आराम का अधिक ध्यान रख कर विभिन्न आकार-प्रकार की कुर्सियां बना दी गई थीं जिन पर मोटे-मोटे गद्दे बिछे हुए थे। बाज़ार की सुन्दरता बढ़ाने के अभिप्राय से यत्र तत्र चीतों, हाथियों, घोड़ों की बड़ी-बड़ी आकृतियाँ बनाकर शिल्पी ने शिल्प कला का अनोखा परिचय दिया था।

'पान-सुपारी बाज़ार' जन साधारण का बाज़ार नहीं था। यहाँ केवल राजपरिवार तथा प्रमुख पदाधिकारियों के घर वाले ही आ सकते थे। दुकानें अधिकतर आभूषणों, कपड़ों, इत्र और तेल इत्यादि शृंगारिक वस्तुओं की ही थी। कुछ छोटी-मोटी दुकानें, मिठाइयों, फलों और मेवों की भी थीं। यहाँ का वातावरण बहुत शान्त और मन लुभावन था।

अधिकतर संध्या समय 'पान-सुपारी बाज़ार' की रौनक बढ़ जाया करती थी। यद्यपि दिन में विशेषतः स्त्रियाँ ही सामान खरीदती हुई दिखलाई पड़ती थीं किन्तु संध्या समय स्त्रियों के संग-संग पुरुष भी होते थे जो अपने वस्त्रों और आभूषणों द्वारा अपना वैभव प्रदर्शित करने में समर्थ हुआ करते थे। ऐसी ही स्थिति युवतियों की भी थी। वे भी जब संध्या को बाजार आतीं तो अपने रूप में चकाचौंध उत्पन्न कर देती थीं। सायंकाल यहाँ आने वाले व्यक्तियों में उन लोगों की भी संख्या अधिक हुआ करती थी जो टहलने के साथ-साथ मिलने-मिलाने के विचार से भी आ जाया करते थे। इस प्रकार पान-सुपारी बाज़ार ने बाज़ार के संग-संग उन आकर्षणों को भी अपने में समेट लिया था जिनके वशीभूत होकर संध्या समय एक बार चक्कर लगा लेना लोगों के लिए अनिवार्य-सा हो जाता था।

प्रत्येक रूप से सोचने और समझने के उपरान्त उस दिन विशभदेव ने निर्णय किया था कि वह हम्पी को सदा के लिए छोड़ देगा परन्तु अनायास तिरु से उद्यान में भेंट हो जाने पर उसका मन डगमगाने लगा। विचारों में परिवर्तन आया। मस्तिष्क पुनः कुछ सोचने पर विवश हुआ। अचानक नये-नये विचार उठने लगे—क्या यह आवश्यक है कि तिरु भी जीवन के उन्हीं विचारों से बँध कर चलेगी जैसा वह सोचता है ? क्या वह भी अपने अधिकारों के प्रति इतनी स्वच्छन्द चारिणी बन सकती है ? उसकी बुद्धि तर्क वितर्क करने लगी। सम्भावना 'हाँ' और 'ना' दोनों की थी। एक आशा की ज्योति झलकी। वह प्रसन्न हो उठा। अब उसे तिरु से पुनः मिलने की आवश्यकता महसूस हुई। वह तत्काल उस से मिलकर उसके मनोभावों को जान लेने के लिए उत्सुक हो उठा; परन्तु तत्काल की आशा कहाँ थी ? राजकुमारी से भेंट होने का कोई साधन नहीं था। किस उपाय से भेंट हो—यह एक समस्या थी ?

तिरु से मिलने के फेर में दो दिन बीत गये फिर भी उस से भेंट न हो सकी। तीसरे दिन वह नई योजना बना रहा था कि अनायास

दास ने एक पत्र लाकर दिया। पत्र उसके पिता का था और उसे शीघ्र मूलवापी बुलाया गया था। मन बैठ गया। उसने पत्रवाहक को बुलाकर पूछ। उससे उत्तर मिला—'नये वर्ष के अवसर पर श्री मण्डलेश्वर को हम्पी में आना होता है न प्रभू, इस कारण मूलवापी शीघ्र पहुँचना आप के लिए अनिवार्य है।'

विशभदेव ने गर्दन हिलाकर उसे जाने को अनुमति दे दी।

चित्त की खिन्नता ने विशभदेव को बाहर नहीं निकलने दिया। पूरा दिन बेकार गया। संध्या समय जब वह मन की खिन्नता दूर करने के विचार से बाहर निकला तो उसने दूसरे दिन मूलवापी चलने की तैयारी के हेतु भी आदेश दे दिया। उसे कल प्रस्थान कर देना था। रथ पर बैठते हुए उसने रास हिलाई। घोड़े चल पड़े। वह 'वधुनगर' के मार्ग पर था। आगे चौराहे पर उसने रथ को मोड़ा और 'पान-सुपारी' वाली सड़क पर आ गया। यह सड़क समीपता के विचार से 'वधुनगर' के लिए कुछ तिरछी पड़ती थी। पान-सुपारी बाज़ार आने पर रथ धीमा हुआ। घोड़े कुछ विशेष ढंग के साथ चलने लगे। रथ जब बाजार के मध्य में आया तो उसे चित्रपुष्पी एक दुकान से निकल कर दूसरी दुकान को जाती हुई दिखलाई पड़ी। उसने शीघ्रता से रास तानी। घोड़े फिस-लते हुए रुक गये। वह कूद कर नीचे आने वाला ही था कि सामने से क़ायस को आता देखकर उसे स्मरण हो आया। उसने रथ को आगे बढ़ाया। सवारियाँ बाज़ार के बाहरी भाग में खड़ी की जाती थीं।

विशभदेव के लौटने में वहुत विलम्ब नहीं हुआ। वह लम्बे-लम्बे कदम रखता उस दुकान के समीप पहुँचा ही था कि राजकुमारी तिरु से मुठ-भेड़ हो ही गई। उसका अनुमान सही निकला। चित्रपुष्पी सामान लिए राजकुमारी के पीछे-पीछे थी। विशभदेव ने हाथ जोड़े। तिरु संकुचाती-सी हाथ जोड़कर धीरे से बोली 'बहुत जल्दी में दिख रहे हैं ?'

'अब नहीं ? कुछ क्षण पहले था।' उसने प्यार भरी आंखों से उसकी आँखों में देखा 'अभी कुछ और खरीदारी करनी है ?'

'नहीं।' उसने पीछे मुड़कर देखा।

'चित्रपुष्पी सामान रखने चली गई है।' विशभदेव ने मुसकराकर बताया। उसकी मुस्कराहट में जो भाव छिपे थे उससे तिरु अपरिचित नहीं रह सकी।

दोनों धीरे-धीरे चलने लगे, 'अच्छे अवसर से भेंट हो गई; अन्यथा अब कहीं वर्षों बाद आप के दर्शन हो पाते। मैं कल जा रहा हूँ।'

'कल! कहाँ जा रहे हैं!!' तिरु को सुनकर जैसे कुछ दुख हुआ हो।

'मूलवापी। पिता जी ने बुला भेजा है।'

'किसी आवश्यक कार्यवश ?'

'नहीं। परन्तु······।'

'तो फिर इतनी शीघ्रता क्या है ? वैसे हम्पी से मन उचट गया हो तो बात दूसरी है। क्या मूलवापी की रमणीकता यहाँ से अधिक प्रिय है ?' उसने अपने पहले वाले वाक्य के भाव को छिपाना चाहा था जो जल्दी में मुंह से निकल गया था।

'यही तो आश्चर्य है राजकुमारी जी हम्पी। समस्त आकर्षणों और सुखों का आगार होने पर भी मेरे लिए ऐसी कठोर बन गई हैं कि जो मैं चाहता हूँ, वह मुझे नहीं मिलने देती और यदि प्रयत्नों के बल पर कभी उस तरह का कोई अवसर भी निकाल पाता हूँ तो वह इतनी क्षणिक होती है कि मुझे हाथ मल कर पछताने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रह जाता। उसी दिन को आप ले लें। महीनों बाद तो भेंट हुई थी। बहुत बहुत-सी बात करनी थीं। सोचा था एक-एक करके सब बताऊँगा किन्तु वहाँ तो न आते देर लगी न जाते। साहस बटोरकर पुनः भेंट करने की बात भी चलाई तो उन्होंने आकाश की ओर उँगुली दिखा दिया। अब आप ही सोचें, ऐसी स्थिति में मुझे मूलवापी में रहना उत्तम होगा या हम्पी में ?' उसने कनखियों से राजकुमारी को देखा।

'मूलवापी में। वहाँ कम से कम इस प्रकार का भुलावा तो न

होगा। आप के लिये वही स्थान उपयुक्त है, उसके अधरों पर हँसी फैल गई थी।

दोनों फाटक के समीप पहुँच चुके थे। विशभदेव ने पूछा 'कल आप के पास कोई समय अवकाश का है ?'

'क्यों ?'

'आप से कुछ बातें करनी हैं।'

'किन्तु कल तो आप मूलवापी जा रहे हैं ?'

'अब कल नहीं परसों जाऊँगा। आप से बातें करने के उपरान्त।'

तिरु ने कोई उत्तर नहीं दिया।

'तो मैं कल उद्यान में प्रतीक्षा करूँगा।' वह फाटक पर खड़ा हो गया।

सारथि ने रथ बढ़ा कर आगे किया। राजकुमारी बैठी। विशभदेव ने हाथ जोड़े। रथ चलने पर तिरु ने उस दिन की भाँति उँगली उठा कर ऊपर को संकेत किया। विशभदेव हँसने लगा और उस समय तक वहाँ खड़ा रहा जब तक उस का रथ आँखों से ओझल न हो गया।

आज का संकेत उस दिन के संकेत से भिन्न अर्थ रखता था।

× × ×

दूसरे दिन उद्यान में तिरुमलाम्बा से विशभदेव की भेंट हुई। राजकुमारी ने बैठते ही पूछा 'सुनाइये अपनी विशेष बातें।' दोनों उसी पत्थर वाली चौकी पर आमने सामने बैठे हुए थे।

विशभदेव ठट्ठामार कर हँस पड़ा 'यदि विशेष बात कह कर बुलाया न होता तो आपका आना सम्भव था ? आप तो यों भी ....।'

'ठीक।' तिरु ने बीच में टोका 'फिर दूध का जला मठ्ठा भी तो फूँक-फूँक कर पीना आरम्भ कर देगा। सम्भवतः इसका आपको ध्यान नहीं रहा ?' उसने तिरछी दृष्टि से देखा।

'भविष्य अंधकार के गर्त में है। उसकी क्या चिन्ता ? अपने को तो प्रत्यक्ष की लालसा रहती है और उसी में आनन्द है। सम्भवतः आप

भी इस से सहमत होंगी ?'

'नहीं मुझे प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों का ध्यान है। प्रथम मतंग है तो दूसरा उसके लिये अंकुश। प्रत्यक्ष में स्वच्छंदता का पुट अधिक है जो निर्माण के स्थान पर विनाश की ओर ले जाता है। परोक्ष का विचार न रखने पर पथ-भ्रष्ट होने की अधिक सम्भावना रहती है। मैं दोनों को एक जैसा महत्व देती हूँ।'

विशभदेव को जो ज्ञानकारी प्राप्त करनी थी उसे तिरु ने स्वयं कहना आरम्भ कर दिया था। उसने आगे उकसाया 'तो क्या पथ-भ्रष्ट होने के भय से लोग अपने अधिकारों की तिलांजलि दे दें ? जो प्रत्यक्ष है उसका उपयोग और उपभोग तो होना ही चाहिये।'

'मैं न तो आपकी भाँति अधिकार शब्द की विवेचना कर सकती हूँ और न प्रत्यक्ष के उपयोग तथा उपभोग पर तर्क कर सकती हूँ। मैं जितना समझती हूँ उसके अनुसार प्रत्यक्ष के स्थान पर परोक्ष का अधिक ध्यान होना चाहिए। परोक्ष में कर्तव्य की प्रधानता है और सम्भवतः इसी कर्तव्य की प्रधानता के बल पर स्त्रियों ने देवीत्व पद प्राप्त किया है। अधिकार उन्मुख स्त्रियाँ इस गौरव से वंचित रह जायेंगी।'

'तो आपके विचार से स्त्री जाति को कर्तव्यपरायण और अस्वच्छंद-चारिणी होनी चाहिये ?'

'बिल्कुल ! तभी समाज में सुख और शान्ति की स्थापना की जा सकेगी; अन्यथा परिवारों के समूह से बना हुआ समाज परिवारों में फैली अशान्ति और कलह से अपने को अछूता नहीं रख सकेगा जो मानवता के लिए घातक सिद्ध होगा।'

'सो तो ठीक है पर आपकी बात एक पक्षीय है। अधिकारों और कर्तव्यों का बटवारा स्त्रियों एवं पुरुषों में बराबर का होना चाहिए और आपके विचारानुकूल यदि ऐसा न भी हो तब भी एक सीमा तो होनी ही चाहिये। जैसे आप यही देख लें कि एक पुरुष जब कई स्त्रियों को पत्नी बनाकर रख सकता है तो क्या स्त्रियाँ यदि इस प्रकार का अधिकार माँगें

तो न्याय की कसौटी पर इसे अनुचित कहा जायेगा ? क्या पुरुषों ने अपनी शक्ति द्वारा स्त्रियों के अधिकारों का अपहरण नहीं किया है ? क्या वे ऐसा करने के अधिकारी हैं ?' विशभदेव ने जान बूझकर अपने चहरे की गम्भीरता बढ़ा ली थी।

'मेरे विचार से तो हैं और यदि नहीं भी हैं तो भी उनकी मनोवृत्ति को हम अपने अधिकारों को जताकर नहीं वरन् कर्तव्यपरायणता एवं त्याग के बल पर बदलने की बात सोच सकती हैं। यद्यपि यह रास्ता लम्बा अधिक है परन्तु कल्याणकारी और ईर्षा द्वेष रहित है। जैसे को तैसा वाला सिद्धान्त सम्भव है तत्काल के लिए मनोरंजक और सुखदायी प्रतीत हो परन्तु इसका अन्तिम परिणाम स्त्री समाज के लिए घातक सिद्ध होगा।'

'खैर, यह तो अनुमान की चीज़ है, क्या मालूम बाद में लाभ-दायक ही सिद्ध हो जाय ?' विशभदेव राजकुमारी के मन को पूर्ण रूप से टटोल लेना चाहता था।

'तभी तो मैंने कर्तव्यपरायणता और त्याग की बात की है। इस मार्ग पर संशय का कोई प्रश्न नहीं। मैं लोहे से लोहे को काटना नहीं चाहती वरन् अपने को मिटा कर आप की प्रवृत्तियों में सुधार चाहती हूँ और समझती हूँ इस प्रकार अधिकारों के साथ-साथ समाज में फैले हुए इन सारे दुर्गुणों को भी दूर कर सकती हूँ जिनसे मानव जाति को आज बड़ी क्षति पहुँच रही है। त्याग स्त्रियों की धरोहर है। इसे खो देने पर वे सौन्दर्य विहीन हो जायेंगी। ऐसी मेरी अपनी धारणा है।'

विशभदेव को जो कुछ जानकारी करनी थी वह हो गई। उसने विषय बदला 'अब तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मुझे भी अपने विचारों में परिवर्तन लाना होगा; अन्यथा बिना ऐक्य मत निभना कठिन हो जायेगा।' उसने संकेत में कुछ कह डाला था।

'अब मैं चलूंगी।' उसने भेद भरी दृष्टि से विशभदेव को देखते हुए उठने का भाव दिखलाया 'आप कल जा रहे हैं ?' वह खड़ी होने

को हुई।

'आप तो सचमुच जाने को तैयार हो गईं। अब तो आप से चार छः मास उपरान्त भेंट हो सकेगी। सम्भव है तब तक मेरा स्मरण रहे या न रहे। मेरे पास कोई इस तरह का साधन भी तो नही है।' विशभदेव अधिक समीप आने का मार्ग बता रहा था।

तिरु ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसके मुख-मण्डल पर विछोह के भाव अंकित हो आये थे। वह खड़ी हो गई 'आप भी उत्सव पर आईयेगा।' उसने गर्दन झुकाली। उसके नेत्रों के कोर सजल हो आये थे। उसने हाथ जोड़े और मुड़ गई।

विशभदेव बड़ी देर तक चौकी पर उसी प्रकार बैठा रहा। नाना प्रकार की कल्पनायें मस्तिष्क में बनने बिगड़ने लगी थीं।

चौदह

माध्वमत के उद्भट विद्वान और महान दार्शनिक व्यासराज का राजधानी में आगमन हुआ। उनके स्वागतार्थ, कवि, लेखक, नाटककार तथा वे सभी विचारक चाहे वे जैन मत के हों अथवा शैव और वैष्णव के; नगर के बाहर उपस्थित हो गए थे। व्यासराज के आगमन की सूचना लोगों को राजगुरू से प्राप्त हुई थी। विद्वान की विद्वत्ता का मूल्यांकन होता है उसके विचारों का नहीं। दार्शनिक के आने पर एकत्रित जन समूह ने जयघोषों तथा फूलमालाओं से आदर किया। व्यासराज ने सब से मिलकर कुशलक्षेम की जानकारी के तदुपरान्त रंगनाथ दीक्षित के

साथ वे उस स्थान पर आये जहाँ उनके ठहरने की व्यवस्था थी। उनकी कुटिया समीप थीं। कुछ महीनों तक उन्होंने अपना समय जन साधारण को देने का निश्चय कर रक्खा था। जनता, जनार्दन स्वरूप है। भक्त को भगवान यहीं मिला करते हैं।

महीनों व्यासराज नगर के उस समाज को अपनी अमृत वाणी से भगवान की लीलाओं का रसास्वादन कराते रहे जो ईमानदारी और मेहनत के बल पर जीवन निर्वाह करने का सच्चा प्रमाण दिया करता है। व्यासराज जितने बड़े विद्वान थे उतने ही बड़े गायक। उनका स्वर बहुत मीठा था। जिस समय वे कीर्तन करने बैठते जन समूह भाव विभोर होकर अपनी सुध बुध खो बैठता था। लोगों को ऐसा प्रतीत होने लगता मानो सचमुच शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करके भगवान विष्णु उनकी पलकों में आ बैठे हों। इस प्रकार जब नगर का कोना कोना उनकी वाणी से गुंजरित हो उठा तब वे सम्राट् के अतिथि बनकर नंगलपुर आये। सम्राट् वर्ष में छः मास यहीं रहता तो छः मास पुराने राजप्रासाद 'मलयकूट' में।

इस बीच तिरु कई बार व्यासराज के दर्शन कर आई थी।

अतिथि की जितनी बड़ी पदवी समझी गई है उसी बड़प्पन के अनुसार सम्राट् कृष्णदेव राय ने व्यासराज को सिंहासन पर बिठलाकर उन का स्वागत सत्कार किया और अनुरोध किया कि कम से कम अब वर्ष दो वर्ष वे अपने चरण रज से इस स्थान को पवित्र बनाये रक्खें। सम्राट् के अनुरोध को संन्यासी ने स्वीकार किया। फिर क्या था? नित्य विचार गोष्ठियाँ होने लगीं। दार्शनिक ने द्वैत-अद्वैत सिद्धान्त को विस्तारपूर्वक समझा कर अन्त में द्वैत की श्रेष्ठता बतलाई और भक्ति मार्ग द्वारा उस तक पहुँचने का रास्ता दिखलाया।

इन्हीं दिनों विजयनगर में युवक बल्लभ का भी आगमन हुआ जो उन दिनों विद्वत मंडली में विशेष चर्चा का पात्र बन रहा था। वैष्णव दर्शन में इसकी पैठ बड़ी अनोखी थी। यह अद्वैत मार्ग का घोर विरोधी

था। वह इसका खुल कर खंडन किया करता था। इस विरोध में इसे व्यासराज द्वारा लिखित प्रसिद्ध ग्रन्थ 'न्यायामृत' से बड़ी सहायता मिली थी। यही युवक आगे चलकर वल्लभाचार्य के नाम से विख्यात हुआ था जिसने शुद्ध द्वैत मूलक-पुष्टि मार्ग को जन्म देकर एक नये दर्शन की उत्पत्ति की थी।

एक दिन एकान्त में सम्राट् ने व्यासराज से कहा 'आचार्य से एक निवेदन था।'

दार्शनिक ने सम्राट् की तरफ देखकर जानने की इच्छा प्रगट की।

'मेरी अभिलाषा है कि एक दिन आचार्य की अध्यक्षता में द्वैत-अद्वैत के प्रश्न पर एक सभा आयोजित की जाय जिस में दोनों मतावलम्बियों को आमंत्रित करके उन्हें अवसर दिया जाय कि वे एक दूसरे के सिद्धान्तों का खंडन करके अपनी-अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करें। इसमें एक मेरा भी स्वार्थ है।'

आचार्य मुस्कराये 'मैं राजकुल तम्बिरन के मनोभाव को समझता हूँ। उत्तम है। आयोजन करें।'

'तो अगले सप्ताह के लिए घोषणा करवा दूँ?'

'हाँ।'

तदुपरान्त सम्राट् ने अपनी नवीन कृति जो' आमुक्तमलयाडा' के नाम से लिखा जा रहा था—मंगवाकर दिखलाया तथा जहाँ तहाँ से कुछ अंशों को भी पढ़ कर सुनाया। दार्शनिक ने पुस्तक की प्रशंसा की।

× × × ×

आलोकमय 'भुवन विजयम्' के विशाल सभा मंडप में सभा एकत्रित हुई। वयोवृद्ध संन्यासी व्यासराज अध्यक्ष के रूप में सिंहासन पर बैठे। सम्राट् उनके पार्श्व में नीचे बैठा। सामने दाहिनी ओर अद्वैत विद्वानों की मंडली बैठी तथा बाँयीं ओर द्वैत विचारकों की। सभा मण्डप नगर के विशिष्ट तथा साधारण नागरिकों से भर गया था। अध्यक्ष ने खड़े होकर कार्यवाही आरम्भ की--'हम्पी के नागरिकों, राज्यपदाधिकारियों, राजकुल

सम्विरन तथा देवियों ! हर्ष है कि आज हमारे बीच ऐसे विद्वान उपस्थित हैं जिनकी वाणी में स्वयं सरस्वती वास करती हैं। उनके मुखारविन्द से निकले हुए शब्दों का अनुकरण करके हम जीवन को धन्य कर सकते हैं यदि उन्हें अक्षरशः पालन करने का निर्णय करलें तो। अतः आप महानुभावों से नम्र निवेदन है कि शान्तिपूर्वक आप इनकी बातों को सुनें और जहाँ तक समझ सकते हों समझने का प्रयत्न करें। आप यह भली भाँति जानते हैं कि सृष्टि का पालक, अन्तर्यामी, घट-घट में वास करने वाला सबका स्वामी एक है। आप यह भी समझते हैं कि वह पवित्र अविनाशी तथा सम्पूर्ण दुखों का निवारण करने वाला है; किन्तु उसका रूप कैसा है, वह कहाँ रहता है, उसके समीप तक पहुँचने का कौन सा मार्ग कठिन है और कौन-सा सरल, वह साकार है अथवा निराकार, बोधगम्य है अथवा ज्ञान से परे आदि विषयों की जानकारी में विभिन्न विचारकों और विद्वानों के अलग-अलग मत रहे हैं और प्रत्येक ने अपने मतानुसार अपने मार्ग को उचित एवं लाभकारी सिद्ध करने का प्रयास किया है। आज भी आपके समक्ष द्वैत-अद्वैत सिद्धान्तों को अपने मतानुसार श्रेष्ठ सिद्ध करने के अभिप्राय से दोनों दलों के विचारक एकत्रित हुये हैं। आप दोनों को सुनें और फिर आप की बुद्धि जिस मार्ग को उपयुक्त और सरल समझे उस पर चल कर प्रभु की शरण में पहुँचने का प्रयत्न करें। अब मैं दोनों पक्षों के विद्वानों से चाहूँगा कि वे याज्ञवलक्य के कथनानुसार—'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्'* का अपने सिद्धान्तों के अनुसार तर्क की कसौटी पर कस कर हम सब के भ्रम का निराकरण करें। व्यासराज बैठ गये।

अद्वैत मत का उद्भट विद्वान गोपातिरुमलप्पा खड़ा हुआ। उसने एक बार चारों ओर दृष्टि दौड़ाई फिर ऊँचे और गम्भीर स्वर में बोला—'प्रसन्नता की बात है कि आज के युग के महान दार्शनिक आदरणीय

*अर्थात—जो सब किसी का जानने वाला है उसे हम कैसे जान सकते हैं।

व्यासराज की अध्यक्षता में हम दोनों मतानुयायियों को अपने-अपने सिद्धान्तों के अनुसार यह सिद्ध करना है कि ब्रह्म को पाने में अद्वैत मार्ग सरल है अथवा द्वैत। इसे आप भलीभांति जानते हैं कि समस्त दर्शनों का विकास स्थूल से आरम्भ होकर सूक्ष्म की ओर बढ़ने में है और ब्रह्मांड में सबसे स्थूल और प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ने वाली वस्तु है जगत्। जगत् के कार्यकलाप पर दृष्टि डालते ही तत्काल निर्णय निकल आता है कि ये नितान्त दुखों से परिपूर्ण है जो सत्यभूत पदार्थ है। इतना ही नहीं इस दुख का कारण द्रष्टा तथा दृश्य का संयोग भी सत्य है और यह भी सत्य है कि इसके निरोध के लिए किसी मार्ग की पूर्ण रूप से व्याख्या भी होनी चाहिए जिससे प्राणीमात्र सुगमतापूर्वक इससे छुटकारा पाकर मोक्ष को प्राप्त कर सकें।'

क्षण भर रुक कर तिरुमलप्पा ने आगे कहा 'पूर्व इसके कि मैं किसी मार्ग की व्याख्या करूँ पहले यह समझ लेना उचित होगा कि यह जगत् जो हमारे समक्ष है सत्य है अथवा असत्य क्योंकि प्रत्यक्ष को जाने बिना परोक्ष के विषय में चर्चा करना बिल्कुल व्यर्थ होगा। प्रतिक्षण-परिणामी, सतत् चंचल एवं सदैव परिवर्तित होते रहना ही जगत का स्वभाव है। यह क्षणभर के लिए भी प्रवृत्ति शून्य नहीं होता। इसके कण कण में नवीनता का उदबोधन है। आज बना कल मिटा। पुनः बना पुनः मिटा—यही इसके नित्य का कार्य है और जितना भी जो कुछ है प्रत्यक्ष और कारण सहित है। अतः प्रत्येक रूप से देखने और अनुभव करने के उपरान्त यदि हम जगत् को सत्य कह दें तो अनुचित न होगा······।'

'अनुचित होगा तिरुमलप्पा जी।' वल्लभ ने खड़े होकर आपत्ति की।

'क्यों?'

'आचार्य शंकर ने सत्य शब्द की जो परिभाषा दी है उसके अनुसार यह गलत है। उनका कहना है—"यद रूपेण यन्तिश्चितं तद् रूपं न व्यभिचरित तत् सत्यम्।" फिर आप का जगत् सत्य कहाँ सिद्ध हुआ?

अर्थात—जिस रूप से जो पदार्थ निश्चित होता है। यदि वह रूप सन्तत,

'किन्तु बल्लभ जी, स्वादिष्ट भोजन से तृप्त होने वाला व्यक्ति यदि अपनी तृप्ति और भोजन की वास्तविकता को स्वीकार न करे तो इस हठधर्मी के लिये कौन उपाय होगा?' उसके अधरों पर एक अस्पष्ट मुसकान की रेखा फैल कर विलीन हो गई 'फिर भी यदि आप इससे सहमत नहीं हैं तो क्या जगत् आपके विचार से असत्य है?'

'नहीं। मैं इसे असत्य भी नहीं मानता।' बल्लभ जी मन ही मन प्रसन्न हो रहा था।

'फिर?'

'न मैं इसे सत्य मानता हूँ न असत्य। न इसकी उत्पत्ति मानता हूँ और न विनाश। अनुभव योग्य होने पर इसका आविर्भाव होता है और अनुभव योग्य न होने पर तिरोभाव। यह आविर्भाव और तिरोभाव की धुरी पर घूमता रहता है।'

'भुवन विजयम्' में सन्नाटा खिंच आया था। विषय की गूढ़ता के साथ-साथ लोगों की तन्मयता भी बढ़ने लगी थी।

गोपा तिरुमल्प्पा ने बल्लभ को उलझाना चाहा 'और जब जगत् का आविर्भाव होगा तभी इसके निर्माणकर्ता की अनुभूति होगी जो आपके मतानुसार केवल वही इसका निमित्त मात्र है?'

'जी हाँ।'

'तब तो आपका ईश्वर पक्षपात के दोष से लांछित हो गया। जगत में कोई जीव सुखी है तो कोई नितान्त दुखी। किसी को जगत् के समस्त साधन उपलब्ध हैं तो कोई असहाय, साधनहीन जीवन को घसीटता हुआ काल के गाल में जाने के लिये आतुर हो उठा है। ऐसी स्थिति में भव बन्धन से छुटकारा पाने के लिये मार्ग कौन-सा होगा?' विद्वान ने तनिक गर्व का अनुभव किया।

'तिरुमल्प्पा जी का प्रश्न बड़ा रोचक है परन्तु आपने यह नहीं सोचा कि आभूषणों में परिवर्तित होने वाला स्वर्ण क्या अपने में किसी प्रकार

सम्भाव से विद्यमान रहे तो उसे सत्य कहते हैं।

का विकार उत्पन्न होने देता है ? वह स्वर्ण है और सदैव स्वर्ण बना रहता है। इसी प्रकार जगत् रूप में परिणित होने वाला ईश्वर भी अपने में किसी प्रकार का विकार नहीं आने देता। वह सम्पूर्ण दोषों से परे है। वह न तो किसी को दुःख देता है और न सुख। जगत् केवल ईश्वरेच्छा के विलास हेतु ब्रह्म स्वरूप है और जिस प्रकार कभी ब्रह्म का विनाश नहीं होता उसी प्रकार यह भी अविनाशी है। ब्रह्म और जीव के समान यह नित्य है।' द्वैतवादी ने अद्वैतवादी को घेर लिया।

'परन्तु ब्रह्म तो सजातीय-विजातीय एवं स्वगत भेद से शून्य है। वह निर्विशेष और निर्गुण है बल्लभ जी।'

'असम्भव। सगुण जगत् में निर्गुण की कल्पना कैसी ? जगत् के समस्त पदार्थ गुण विशिष्ट हैं महाशय। इसका एक-एक कण किसी अभिप्राय और गुण विशेष से ओतप्रोत है। फिर ऐसी दशा में इसके रचयिता को निर्विशेष और निर्गुण कहना क्या तर्क युक्त और विश्वास योग्य हो सकेगा ?' और यदि हो भी तो क्या आप बता सकेंगे कि इस निर्विशेष निर्लक्षण ब्रह्म से सविशेष—सलक्षण जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई ? एक ब्रह्म से नानात्मक जगत् की सृष्टि का अनुमान लगाना क्या न्याय संगत है ?'

'पर मैं ब्रह्म को एक कब कहता हूँ ? उसकी बीज शक्ति माया भी तो है। माया सहित होकर वह जगत् की उत्पत्ति करता है केवल इस अभिप्राय से कि मनुष्यमात्र नित्य और अनित्य की जानकारी सुगमतापूर्वक कर सके। लोग समझ सकें कि माया सहित और माया रहित ब्रह्म में अन्तर है। यदि एक ओर उन्हें जगत् की समस्त वस्तुयें क्षणभंगुर तथा कष्टों से ओतप्रोत दिखलाई पड़ें तो दूसरी ओर उन्हें निर्विकार, निर्विशेष आनन्दकन्द सच्चिदानन्द का भी आभास मिले। माया ब्रह्म के आश्रित रहने पर भी ब्रह्म उससे कितना अलगाव रखता है—यही उसकी विशेषता है। प्रभु ने दूध और पानी को अलग-अलग कर दिया है।'

'निस्संदेह आपका यह मार्ग ब्रह्म का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप समझने के लिये बड़ा सुगम है किन्तु माया क्या है इसे समझे बिना जगत् को अस्थिर कहकर 'माया रहित' और 'माया सहित' के सिद्धान्त पर किस प्रकार विश्वास किया जा सकेगा ? इसमें तो भ्रम उत्पन्न हो सकता है ?'

तिरुमल्पा चकराया परन्तु उसने विवेचना की 'माया ब्रह्म में आश्रित होने वाली महासुप्तिरूपिणी है जिसमें अपने रूप को न जानने वाले संसारी जीव शयन किया करते हैं। यह न तो सत् है न असत्। यह दोनों से विलक्षण है और इसी कारण इसे अनिर्वचनीय कहा गया है। जो पदार्थ सद्रूप से अथवा असद्रूप से वर्णित नहीं किया जा सके उसकी शास्त्री संज्ञा अनिर्वचनीय होती है। माया, अग्नि की अपृथग्भूता दाहिका शक्ति के अनुरूप ही ब्रह्म की अपृथग्भूता शक्ति है।'

वल्लभ मुसकराया 'महाशय ने जटिलता बढ़ा दी। अब तो गम्य भी अगम्य बन गया। ब्रह्म की जानकारी सर्व साधारण के लिये न रहकर केवल ज्ञानियों के लिये रह गई। मार्ग की दुरूहता अधिक हो गई प्रथम माया को अवास्तविक समझा जाय तत्पश्चात् जगत् को मिथ्या समझने का प्रयास किया जाय और जब जगत् के मिथ्यातत्व का पूर्ण-रूपेण ज्ञान हो जाय तब ब्रह्म की ओर लौ लगा कर मोक्ष की उपलब्धि में अग्रसर होते हुये उसमें अपने को विलीन कर लेने का प्रयत्न किया जाय। यही हुआ न ब्रह्म तक पहुँचने का मार्ग ?'

'हाँ ! यही है।'

'तो क्या यह मार्ग उस तक पहुँचने के लिये सुगम है ? यह तो केवल कुछ व्यक्तियों के लिये बन कर रह गया। जन साधारण, जिसमें शूद्रों, कृषकों और व्यापारियों जैसे अज्ञानी, परिश्रमी एवं बहुधंधी व्यक्तियों की संख्या अधिक है, उनके लिये क्या होगा ? क्या वे अपने समस्त उदर सम्बन्धी कार्यों को छोड़ कर ब्रह्म को समझने में समर्थ हो सकेंगे ? क्या यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अस्वाभाविक नहीं है ? और

यदि आप हठधर्मी वश इसे स्वीकार न करें तो क्या उस दशा में विश्व की प्रगति रुक नहीं जायेगी जो नितान्त असम्भव है क्योंकि आपके ही कथनानुसार जगत् प्रतिक्षण—परिणामी, सतत् चंचल एवं परिवर्तित होने वाला पदार्थ है।' वल्लभ ने अकाट्य तर्क रख दिया। अध्यक्ष मन-ही-मन प्रसन्न हुये।

गोपा तिरुमल्प्पा ने इधर-उधर देखा और तनिक ऊँचे स्वर में बोला—'तो आप ही कोई दूसरा मार्ग बतायें जो मेरे मार्ग से अधिक सुगम, प्रामाणिक और बोधगम्य हो ?'

'अवश्य ! सुनिये। हमारा और आपका जगत् हमारे आपके सामने है ? जगत् ब्रह्म रूप है, इसे भी हमने स्वीकार कर लिया है ?'

अद्वैतवादी ने गर्दन हिलाई। लोगों की उत्सुकता बढ़ गई थी। वल्लभ ने सब की ओर देखते हुए आगे कहा, 'जिस प्रकार लपेटा हुआ कपड़ा फैलाने पर भी वही कपड़ा रहता है, उसी प्रकार आविर्भाव दशा में जगत् तथा तिरोभाव रूप में ब्रह्म एक ही है—भिन्न नहीं। अब रहा प्रश्न उसके आविर्भाव दशा का ? आप पूछ सकते हैं कि इस रूप में उसके आने का प्रयोजन ? तो इसका सीधा उत्तर है जगत् के निर्माण के साथ-साथ अपनी लीलाओं का दिग्दर्शन कराना। लीलायें सांसारिक हैं जो मिथ्या एवं त्याज्य हैं। संसार अनित्य है और जगत् नित्य परन्तु दोनों प्रत्यक्ष और बोधगम्य हैं। सरलतापूर्वक दोनों रूपों को समझा जा सकता है। यहाँ ब्रह्म निराकार भी है और साकार भी। ज्ञानी के लिये निराकार और अज्ञानी के लिये साकार। दोनों ही सुगमतापूर्वक उस प्रभु को पहचान कर उस तक पहुँचने में समर्थ हो सकते हैं। अतः मैं कह सकता हूँ कि मेरा वाला मार्ग आप वाले मार्ग से अधिक सुविधा-जनक, प्रामाणिक और बोधगम्य है।'

'भुवन विजयम्' में बैठे हुये व्यक्तियों के बीच फुसफुसाहट होने लगी। बहुतों के मुँह से तो यह साफ सुनाई पड़ा—'वल्लभ जी वाला मार्ग सरल है। वह सही कह रहे हैं।' तब तक सामने से किसी ने आग्रह

किया 'उत्तम होता यदि बल्लभ जी इसे विस्तार सहित बताने का कष्ट करते। मार्ग तो सरल है इसमें सन्देह नहीं किन्तु इस पर चलना किस प्रकार होगा इसकी भी जानकारी हो जानी चाहिये।'

द्वैतवादी विजयी हुआ इसे अब सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं रही। बल्लभ का अन्तर लहरा उठा। वह गद्गद् हृदय से उस व्यक्ति की जिज्ञासा के निवारणार्थ मुसकराता हुआ बोला 'लीलाधाम भगवान् की प्राप्ति का सुगम उपाय केवल भक्ति है। भक्ति के द्वारा परब्रह्म सच्चिदानन्द की उपलब्धि हो सकती है परन्तु यहाँ आपको यह भी समझ लेना होगा कि भक्ति के दो प्रकार हैं—मर्यादा भक्ति और पुष्टि भक्ति। मर्यादा भक्ति, भगवान के चरणारविन्द की भक्ति है और पुष्टि भक्ति उनके मुखारविन्द की। प्रथम में फल की आकांक्षा है और दूसरा फल रहित। एक यदि ज्ञान और श्रवणादि साधनों द्वारा मुक्ति का ध्येय रखती है तो दूसरी सर्वात्मना आत्मसमर्पण तथा विप्रयोग रसात्मिक प्रीती की सहायता से आनन्दधाम भगवान के साक्षात् अधरामृत के पान का ही मुख्य फल मानती है। मर्यादा भक्ति, पुष्टि भक्ति से सहज और सर्व साधारण के लिये है। संसार में रहते हुये जगत् के रूप को पहिचान कर मुक्ति प्राप्त करना—यही इस की विशेषता है। पुष्टि भक्ति, आवागमन से छुटकारा दिलाने वाली है जो ज्ञानियों और ऋषि संन्यासियों के लिये है। दोनों मार्ग उपलब्ध हैं जिस पर आप चल सकें चलिये। मिलेगा वह दोनों को।' वह रुका 'मैं समझता हूँ मेरी बात आप सब को स्पष्ट होगई होगी?' उसने उस व्यक्ति की ओर देखा।

'हाँ आचार्य।' उसने उत्तर दिया।

बल्लभ ने व्यासराज को देखते हुये आसन ग्रहण किया।

सभा मंडप हर्ष ध्वनि से गूँज उठा विशेषकर वैष्णव सम्प्रदाय वाले तो फूले नहीं समा रहे थे। हाथ हिलाकर वातावरण में शान्ति लाने का संकेत करते हुये व्यासराज खड़े हुये। मंडप में स्तब्धता आई। वह बोले—'बल्लभ जी ने द्वैतमार्ग का जिस स्पष्टता और सूक्ष्मता से वर्णन

किया है वह सराहनीय है। निस्संदेह, भगवान का साकार रूप सहज में बोधगम्य तथा मन को फबने वाला है। इस रूप में लौ लगाने की एकाग्रता अधिक है। यह सरल भी है। उसे सब समझ सकते हैं और वह सबके हेतु सदैव नंगे पैर खड़ा तैयार भी मिलता है। वह भेद रहित है। उत्पत्ति, स्थिति, संहार, नियमन, ज्ञान, आवरण, बन्ध और मोक्ष का वही एकमात्र कर्ता है। वह सर्वज्ञ तथा परमुख्या वृति से समस्तपद वाच्य है परन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं हुआ कि आप अद्वैत मार्ग को हेय की दृष्टि से देखें। भगवान का साक्षात्कार इस मार्ग पर भी चल कर किया जा सकता है। कठिनाई केवल इतनी अवश्य है कि यह मार्ग तनिक दुरूह और जटिल है। प्रत्येक इसे शीघ्रतापूर्वक ग्रहण करके अपने मन को स्थिर नहीं कर सकता; फिर भी जिन व्यक्तियों को यह मार्ग अपनाने में सुविधा प्रतीत होती हो वे इसे अपनायें और जो उस मार्ग पर चलना चाहते हों वे उस पर चलें। चलना आपका कर्तव्य है—इसे सदैव ध्यान में रखना होगा। यही मेरा अन्तिम अनुरोध है। आशा है आप मेरी बातों पर ध्यान देंगे।' वह रुके 'मैं तिरुमल्प्पा जी और वल्लभजी के ज्ञान की सराहना करता हूँ और आशीर्वाद देता हूँ कि वे अपने कर्म पथ पर नित्य अग्रसर होते रहें।' व्यासराज बैठ गये।

सभा समाप्त हुई

पन्द्रह

हम्पी में सामाजिक और धार्मिक त्यौहारों के अतिरिक्त अन्य दूसरे प्रकार के उत्सव इतनी अधिक संख्या में मनाये जाते थे कि नगर के किसी न किसी भाग में नित्य कोई कार्यक्रम अवश्य होता हुआ दिखलाई पड़ जाता था। कविगोष्ठी, नृत्य, संगीतज्ञों की बैठक, नाटकों का प्रदर्शन इत्यादि आयोजन बड़े मनोरम और तड़क-भड़क के साथ किये जाते थे। पाक्षिक मेले बारहों मास भिन्न भिन्न स्थानों पर लगा ही करते थे। धार्मिक उत्सवों में रामनवमी, मकरसक्रान्ति, गोकुलाष्टमी, शिवरात्री, रथ-यात्रा आदि बड़े धूमधाम से मनाये जाते थे। रथ-यात्रा के अवसर पर भगवान की मूर्ति रथ में रखकर सारे नगर में घुमाई जाती थी। 'कमल मन्दिर' जिसमें भगवान की मूर्ति चलती थी—पत्थरों का कलात्मक ढंग से बना हुआ एक छोटा-सा मन्दिर था जिस की शोभा अद्वितीय थी। यह मन्दिर 'रथ' के नाम से जाना जाता था और इसमें प्रस्तर के पहिये लगे हुये थे। रथ को चार हाथी खींचा करते थे। हाथियों के आगे सैंकड़ों नर्तकी नृत्य करती हुई चलती थी। इस पर्व की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वृद्ध स्त्री और पुरुष अथवा वे व्यक्ति जिन्हें मोक्ष की उपलब्धि करनी होती थी, रथ के पहिये के नीचे दबकर अपनी जीवनलीला समाप्त कर लिया करते थे। उन्हें विश्वास था कि भगवान के रथ के नीचे दबकर मरने वाला व्यक्ति मुक्ति को प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रति वर्ष सैंकड़ों स्त्री-पुरुष सवारी के नीचे दबा करते थे।

इनके अतिरिक्त दीवाली, होली, महानवमी तथा नये वर्ष के आगमन पर उसका प्रथम दिवस विशेष उल्लास के साथ मनाया जाता था। दीवाली के अवसर पर रात-दिन दीपक जलाये जाते थे। रात में दीपकों से जगमगाता हुआ विशाल नगर भगवान इन्द्र के मन में ईर्षा उत्पन्न कर देता था। लोग अपनी आर्थिक-स्थिति के अनुसार दान भी देते थे। होली केसर के रंग से खेली जाती थी और स्वयं सम्राट् इसमें सक्रिय भाग लेता था। महानवमी राष्ट्रीय उत्सव था जो नौ दिनों तक मनाया जाता था। इस अवसर पर हम्पी की छटा देखने योग्य होती थी।

भादों का मास समाप्त होने को आया। हम्पी में नवीन वर्ष के स्वागत की तैयारी होने लगी। नगर सजने लगा। स्थान-स्थान पर तोरणों और वन्दनवारों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। दूकानों की छटा बढ़ी। असंख्य झंडियों और पताकाओं ने प्रकृति में नवीनता का सृजन किया। नगर का कोना कोना खिलखिला उठा। विजयनगर के प्रबन्ध में विशेष सतर्कता आ गई थी। कायस विभाग की जिम्मेदारियाँ बढ़ गईं।। स्वयं नगरपाल घोड़े पर आरूढ़ भिन्न-भिन्न स्थानों का निरीक्षण करता फिर रहा था। यह स्वाभाविक था। मण्डलेश्वरों तथा साम्राज्य के विभिन्न भागों के अन्य पदाधिकारी एवं नागरिकों के उमड़ते हुए जन-समूह की जमघट जो बढ़ने लगी थी। हम्पी के कोलाहल में मनोरंजकता आ गई थी।

एक एक करके पाँचों मण्डलेश्वर अपनी फौज फाटा सहित आये। शिविर लग गये। मूलवापी के मण्डलेश्वर का शिविर नंगलपुर के समीप था। पिता के साथ पुत्र विशभदेव भी आया हुआ था। मण्डलेश्वर अपनी-अपनी तैयारियाँ करने लगे। यह उत्सव नागरिकों के लिए दूसरा रूप रखता था तथा सरदार-सामन्तों और मण्डलेश्वरों के लिए दूसरा।

भादों समाप्त हुआ। कुआर चढ़ा। पहले दिन, रात में आतिशबाजियाँ छूटीं और इस प्रकार छूटीं कि सम्पूर्ण नभमण्डल आलोकित हो उठा। इसके उपरान्त बड़ी रात गए तक हम्पी वाले नाना प्रकार

के आमोद-प्रमोद में अपने को उलझाये रहे। दूसरे दिन, दिन में लगभग एक प्रहर उपरान्त महा-मँजीर, दुन्दुभी, भेरी, शंख और घन्ट आदि विविध बाजाओं के नेतृत्व में हाथियों का जलूस निकला। हाथियों की सजावट तथा उन पर पड़े हुये मखमली झोलों के ऊपर बहुमूल्य हौदे किसी के वैभव का परिचय देने में भलीभाँति समर्थ हो रहे थे। यह जलूस कई भागों में अलग-अलग बँटा हुआ था। प्रत्येक जलूस के आगे आगे एक अत्यन्त सुसज्जित हाथी चल रहा था। इस हाथी के लटकते हुए झोल के दोनों तरफ स्वामी का नाम अंकित था। प्रत्येक जलूस के अन्त में एक रथ था जिसपर गर्व से बैठा हुआ हाथियों का स्वामी सम्राट् के प्रति अपनी सच्ची वफादारी का परिचय दे रहा था। आगे प्रथम पाँच जलूस पाँचों मण्डलेश्वरों के थे तदुपरान्त अन्य सरदार-सामन्तों के चल रहे थे। हज़ारों वाद्यों तथा हाथियों के गले में लटकते हुये घन्टों से निकले हुये शब्दों के सहित झूमता हुआ उन गजों का विशाल जलूस समुद्र में तूफान का दृश्य उपस्थित कर रहा था। वायु-मंडल कम्पायमान हो उठा था।

विभिन्न मार्गों से होता हुआ जलूस राजमार्ग पर आया और तब राजप्रासाद की ओर बढ़ चला। 'मलयकूट' के सामने एक विशेष प्रकार के बने हुये मण्डप से सम्राट् ने जलूस देखा और उस उपहार को स्वीकार किया। आज के दिन सम्राट् को हाथियों का उपहार भेंट किया जाता था।

तीसरे दिन दोपहर के उपरान्त प्रजा ने अपने राजा को श्रद्धानुकूल नज़र भेंट की जिसका श्रीगणेश मण्डलेश्वरों द्वारा हुआ। यह कार्य-क्रम रात तक चलता रहा तत्पश्चात सम्राट् ने नागरिकों द्वारा आयो-जित प्रीति भोज में सम्मिलित होकर नव वर्ष के आगमन के उपलक्ष पर होने वाले उत्सव को समाप्त किया। इस वर्ष नज़र में आई हुई धन-राशि लगभग पन्द्रह लाख बाराह थी।

उत्सव को भी समाप्त हुये दो दिन हो गये परन्तु अभी तक विशभ-

देव की भेंट राजकुमारी से न हो सकी थी। यद्यपि विशभदेव ने चित्र-पुष्पी से उद्यान में मिलने की सूचना भिजवा दी थी और वह नित्य उस की प्रतीक्षा भी उद्यान में करता रहा परन्तु उसकी भेंट उससे न हो सकी। राजकुमारी आज भी उद्यान में नहीं आई। बैठे-बैठे संध्या हो गई। वह दुखी मन उठा। अन्तर में एक विचित्र प्रकार की व्यथा थी। वह बार-बार सोचता पर राजकुमारी का उद्यान में न आने का कारण नहीं समझ पाता। वह उससे मिलना नहीं चाहती हो—ऐसी भी कोई वजह नहीं थी। तब, न आने की सूचना तो कम-से-कम उसे दे देना चाहिये था किन्तु उसने यह भी नहीं किया फिर वह निष्कर्ष निकालने में असमर्थ हो गया। उसकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। रहस्य समझ में नहीं आ रहा था। वह सोचते सोचते बाहर आया। रथ पर बैठते ही उसके घोड़े चल पड़े। वह फिर भी रास पकड़े विचारों की दुनियाँ में चक्कर लगाता रहा। अनायास नीलाम्बई स्मरण हो आई। उसके हाथों ने रास तानते हुये रथ को रोका। घोड़े मुड़े। वह 'वधुनगर' की ओर मुड़ चला।

नीलाम्बई उस समय श्रृंङ्गार कक्ष में थी जब उसे विशभदेव के आगमन की सूचना मिली उसने शीघ्रता की और कुछ ही क्षणों में रूप के सम्पूर्ण आकर्षणों को लेकर निकली। उसने विशभदेव को नमस्कार किया और मुसकराती हुई समीप बैठ गई, 'अहोभाग्य,' वह बोली 'प्रभु ने दर्शन तो दिये अब तो यह भी पता नहीं लग पाता कि कब आगमन हुआ और कब प्रस्थान ? उचित है। लगना भी नहीं चाहिये; अन्यथा पीर-पराई का अनुभव होते ही जीवन का स्वच्छन्द वातावरण नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा।' उसकी दृष्टि क्षण भर के लिए विशभदेव के चेहरे पर रुकी। उसे कुछ भास हुआ। उसने ध्यानपूर्वक देखा—मुखमंडल पर फैली हुई उदासी छिपी न रह सकी। 'प्रभु अस्वस्थ तो नहीं हैं ?'

विशभदेव चौंका 'नहीं तो' उसने हंसने का झूठा प्रयास किया। 'तुम तो अच्छी तरह हो ?'

'पूर्ण रूप से। प्रभु का आगमन किस दिन हुआ था ?'

'उत्सव के चार दिन पूर्व। परसों लौटने की तैयारी है।'

'परसो ! इतनी जल्दी ?'

'विवशता है। वातावरण की स्वच्छन्दता के नष्ट होने का भय है न ?' वह अपनी उदासी को छिपाना चाह रहा था।

दासी सुरा-पात्र रखकर चली गई। नीलाम्बई ने पात्र में उड़ेल कर उसे थमाया। 'समझ गई', वह मुस्कराई 'मालूम पड़ रहा है भय ने अपना घर देख लिया है। भगवान करे यह भय दिन दूना रात चौगुना बढ़ता ही जाय। अन्त का परिणाम बड़ा फलदायक होगा।'

पात्र को रिक्त करता हुआ मण्डलेश्वर पुत्र नीलाम्बई के मुखमंडल को निहारने लगा। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

'तो सिद्ध हुआ कि मेरी बात में सत्यता है।' उसने पुनः चुहुल की। विशभदेव अपने गावतकिया को खींचकर तनिक सट आया 'आज इसी की जानकारी करने आया हूँ। सम्भवतः सत्य और असत्य की परिभाषा को मैं अभी तक समझ नहीं सका हूँ। आज मैं तुम से अपनी वास्तविकता कह रहा हूँ नीलाम्बई ! इसे हँसी में न टालना। मैं जानना चाहता हूँ कि 'स्त्री' है क्या ? क्या यह बोधगम्य है अथवा नहीं और यदि है तो मैं इसे समझने में समर्थ हो सकूंगा या नहीं।' उसने पात्र आगे बढ़ा दिया।

नर्तकी खिलखिला पड़ी 'मालूम पड़ रहा है प्रभु जगत् का अध्ययन छोड़कर अब संसार को समझने का प्रयास करने लगे हैं। मेरी धारणा गलत तो नहीं ?' स्त्रियों में पुरुष को समझने की अधिक क्षमता है। यह देव उन्हें प्रकृति से प्राप्त है।'

'नहीं। तुम्हारी धारणा सही है।

'फिर भी संसार समझ में नहीं आ रहा है ?' उसने पात्र में सुरा भरा।

'यदि आया होता तो इतने समीप बैठने पर भी अन्तर बना रहता? सच कहता हूँ नीलाम्बई, स्त्री मेरे लिए पहेली बन गई है। उसका कौन-सा रूप वास्तविक है और कौन अवास्तविक—इसे जानने की आज बड़ी

उत्कंठा है और मैं समझता हूँ तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा इसे बता भी नहीं सकता। मैं दो तीन दिनों से इस समस्या के पीछे बहुत चिन्तित हूँ।'

नीलाम्बई के हृदय में जैसे किसी ने काँटा चुभो दिया हो। एकबारगी उसके मस्तिष्क में बहुत-सी बातें आकर अन्तर्ध्यान हो गईं। विशभदेव के वाक्यों में छिपी हुई गम्भीरता तथा स्त्री जाति को समझने की यह उत्कंठा किसी नवीन घटना की द्योतक थी; परन्तु नीलाम्बई समझ कर भी नासमझ बनी रही। उसके भावों में कोई परिवर्तन नहीं आने पाया। वह मन्द-मन्द मुस्कान बिखेरती हुई बोली 'प्रभु, मेरी बुद्धि के अनुसार स्त्री का कोई वास्तविक रूप है ही नहीं।'

विशभदेव ने आश्चर्य से देखा।

'मेरे अनुमान में अभी तक यही आया है।'

'किन्तु प्रकृति में क्या यह सम्भव है?'

'है प्रभू! रचयिता समस्त शक्तियों से समर्थ जो ठहरा। वह सभी कुछ कर सकता है। यह मैं अपने मत की बात कह रही हूँ आप की नहीं।'

विशभदेव ने पात्र को मुंह से लगाकर घूँट दो घूंट गले के नीचे उतारा और क्षण भर तक सोचने के उपरान्त बोला 'अच्छा, यदि तुम्हारी बात मान ली जाए तब भी एक शंका का समाधान होना शेष रह ही जाता है। यदि स्त्री का कोई रूप नहीं हो तो उसे समझने का साधन?'

'न समझने की चेष्टा, कारण, वह पुरुष को समझने में इतनी सक्रिय है कि उसके संसर्ग में आते ही वह अपने को पूर्ण रूप से उसे समर्पित कर देती है और समर्पण व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का दपर्ण हैं। वहाँ कुछ छिपा नहीं रह सकता।'

'परन्तु इस समर्पण में अपवाद भी तो हो सकते हैं उनके लिए क्या करोगी?' विशभदेव ने अपनी समस्या पूछ ली।

'अपवाद वहीं सम्भव है जहाँ पुरुष उसे समझने में प्रयत्नशील हो जाता है और तभी वह पहेली बनकर जीवन भर भरमाया करती है। ऐसा

वह जान बूझ कर नहीं करती वरन् यह उसकी स्वभावगत वस्तु है।' नीलाम्बई के कथन में गूढ़ता थी।

विशभदेव ने कुछ कहा नहीं लेट कर सोचने लगा। थोड़े समय बाद जब उसने करवट ली तो नीलाम्बई को उसी प्रकार चुपचाप अपने समीप बैठे हुए देखा। उसे अपनी अशिष्टता पर खेद हुआ। वह उठकर बैठ गया, 'मैंने ·····।'

'लीजिए,' नीलाम्बई ने उसकी ओर शराब बढ़ा दी, 'इसमें आपका दोष नहीं', वह हँस रही थी, 'सोचने वालों की दुनियाँ ऐसी ही हो जाया करती है।'

'किन्तु इसके पीछे कोई कारण है न नीलाम्बई और इस कारण का मैं समझता हूँ तुम्हारे द्वारा निदान भी हो सकता है यदि तुम करना चाहो तो।'

'असम्भव है प्रभु। उस मार्ग के सारे द्वार मेरे लिए बन्द हो चुके हैं। अब तो दूसरे जीवन में ही इस प्रकार की कोई कल्पना की जा सकती है।'

विशभदेव पुनः सोचने लगा।

नीलाम्बई ने धीरे से पूछा 'भोजन लगवाऊँ।'

'हाँ।'

स्वामिनी ने ताली बजाकर दासी को आदेश दिया।

भोजनोपरान्त विशभदेव ने जाने की अनुमति माँगी। नीलाम्बई उसे बाहर रथ तक छोड़ने आई। घोड़े जब चलने को हुए तो वह बोली 'अब आने का विचार कब तक है?'

'होली तक यदि कोई अड़चन न पड़ी तो। इस बार सूचना भिजवा दूँगा।' उसने उसके कपोलों को थपथपा दिया।

नीलाम्बई पीछे हट गई। घोड़े आगे बढ़ गये।

सोलह

दूसरे दिन बहुत समय तक सोचते रहने के उपरान्त भी विशभदेव अपने को न रोक सका और अन्त में उद्यान के लिए चल पड़ा। शायद आज उससे भेंट हो ही जाय। यद्यपि नीलाम्बई के कथनों में बड़ी प्रामाणिकता थी परन्तु हृदय सम्बन्धित समस्याओं पर किसी का ज़ोर चले तब तो। वहाँ तो सब को हार माननी पड़ती है। मार्ग में पुनः दो-एक बार उसके मस्तिष्क ने उसे रोकना चाहा; किन्तु रथ के घोड़े धीमे पड़ कर भी अन्त तक उसी मार्ग पर चलते रहे। उद्यान आ गया।

मध्यान्ह का समय हो आया था। विशभदेव एक पेड़ के सहारे लेटा प्रतीक्षा कर रहा था। कभी-कभी उसे अपने ऊपर झुंझलाहट भी आती और वह उठकर चलने को तैयार होता पर यह सोच कर कि सम्भवतः वह आ रही हो, वह क्षणभर के विचार से रुक जाता और इस प्रकार क्षण क्षण करते-करते उसकी कई घड़ियाँ बीत गईं। क्या करे, वह भी विवश था। उसने अब तक के जीवन में केवल दो युवतियों को चाहा था जिन में एक केवल मानसिक मिलन की दुहाई देकर अलग हो गई थी और दूसरी उसे आगे बढ़ा कर अनायास स्वयं ऐसी रुक गई कि वह कुछ समझ न सका। उस के हृदय में पीर थी—नीलाम्बई की अप्राप्ति की और तिरुमलाम्बा के अकारण सम्बन्ध विच्छेद की। सूचना देने पर भी न आने का कारण सम्बन्ध विच्छेद के अतिरिक्त और क्या हो सकता था।

घड़ी दो घड़ी और बीती। अचानक खिलखिलाहट की आवाज़

कानों में पड़ी। विशभदेव ने गर्दन मोड़कर देखा। आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। उसने ध्यान से देखा—चित्रपुष्पी के साथ राजकुमारी ही थी। शरीर का रोम-रोम खिल उठा। अंगों की चैतन्यता बढ़ गई। रोमांच से भरी हुई एक विशेष प्रकार की सिहरन पूरे बदन में फैल गई। मन व्याकुल हो उठा पर साथ ही पुरुष का छिपा हुआ अहं भी जागा। राजकुमारी से उठकर मैं मिलने नहीं जाऊँगा—उसने संकल्प किया और कुछ अधिक निश्चिन्तता पूर्वक लेट गया यद्यपि कान राजकुमारी के पद चापों का अनुमान लगाने में सतर्क थे।

तिरु नहर के उस ओर थी। अभी उसने विशभदेव को देखा नहीं था। वह बीच वाले पुल से इस तरफ आई। कुछ आगे बढ़ने पर चित्रपुष्पी को विशभदेव दिखलाई पड़ गया। चित्रपुष्पी धीरे से बोली 'मिल गये। बड़ी ढुंढाई के उपरान्त मिले हैं। भगवान तुम्हें कोटि-कोटि धन्यवाद। राज ·····।'

तिरु ने भी उस लेटे हुये व्यक्ति को देख लिया था और यह समझते हुए कि वह विशभदेव ही होगा वह अनभिज्ञ सी डाँट कर बोली 'कौन मिल गया जो लगी ईश्वर को धन्यवाद देने ?'

'वही।' वह होठों में मुसकान छिपाये हुए थी।

'वही कौन ? बताएगी या पहेली पढ़ेगी ?'

'सामने लेटे हुए तो हैं,' उसने उँगुली से संकेत किया मण्डलेश्वर पुत्र श्री विशभदेव जी।'

तिरु ने उसके कान पकड़े 'क्यों री, मण्डलेश्वर पुत्र की तुझे बड़ी चिन्ता रहती है। जब सुना तब उन्हीं का नाम रटा करती है। मुझे ····· ।'

चित्रपुष्पी जान बूझ कर बड़ी ज़ोरों से चिल्लाई और कान छुड़ाती उधर को ही भागी जिधर विशभदेव था।

विशभदेव समझ कर भी ना समझ बना लेटा रहा। उसने सुनी अनसुनी कर दी थी। तिरुमलाम्बा के पैर आगे बढ़ने में सकुचाने लगे।

यदि विशभदेव ने देख लिया होता तब सम्भवतः वह इतनी लज्जा का अनुभव न करती। उसे यह भी आभास मिल गया कि विशभदेव रुष्ट है। वह धीरे-धीरे आगे बढ़ी। ज्यों-ज्यों समीपता बढ़ती गई मन का कुतूहल भी बढ़ता गया। विशभदेव उसी प्रकार लेटा रहा। वृक्ष के पास आकर वह ठिठकी। विशभदेव को आहट मिली फिर भी उसने गर्दन नहीं मोड़ी। वह सामने देखता रहा। राजकुमारी ने विवश होकर कहा 'नमस्कार।'

विशभदेव ने आँखें ऊपर उठाई 'आप! नमस्कार।' वह उठ कर बैठ गया। 'चित्रपुष्पी इधर से दौड़ती हुई दिखलाई तो पड़ी थी पर यह कहाँ अनुमान था कि आप भी उसके साथ हैं ?'

राजकुमारी बैठ गई 'आप नाराज़ हैं ?'

'मैं! यह किसने कह दिया आप से? मेरे नाराज़ होने का कारण ?' वह गम्भीर बन गया था 'नाराज़ तो वे लोग होते हैं जिन्हें मनाने वाले हुआ करते हैं। मैं किस बिरते पर नाराज़ होने की सोचूँगा ? खैर छोड़िए इन बातों को। आप अच्छी तरह हैं ?'

तिरु ने कनखियों से देख कर सिर झटकाया 'यदि मनाने वालों की जानकारी हो जाय तो सम्भवतः आप भी नाराज़ हो सकते हैं, क्यों ? हो सकते हैं न ?'

विशभदेव चुप रहा।

'आप जा कब रहे हैं ?'

'कल।'

'बिल्कुल निश्चित कर लिया ?'

'हाँ।'

'और यदि मैं रोकना चाहूँ तो ?'

'इसके लिए मैं क्षमा चाहूँगा। रुकना सम्भव न हो सकेगा।'

'पर मेरा कार्य ऐसा है कि कल आप को रुकना ही पड़ेगा।' युवती मना रही थी।

'असम्भव है। मेरा रथ सूर्योदय के पूर्व हम्पी से प्रस्थान कर चुका होगा। विवशता है अन्यथा ऐसी धृष्टता कभी नहीं करता।'

'और यदि रथ निकलने के पूर्व मैं आप के रथ के सामने खड़ी मिलूं तो क्या आप मेरे ऊपर से रथ निकाल ले जायेंगे ?'

विशभदेव चक्कर में पड़ गया। उत्तर ढूँढे नहीं मिल रहा था।

तिरु हँसने लगी 'बोलिये। उत्तर क्यों नहीं देते ? बस समाप्त हो गई सारी धौंस। अच्छा नमस्कार। अब जा रही हूँ। कल वहीं मिलूंगी।' उसने उठने का आडम्बर किया।

अपने को झुका कर दूसरे को झुका लेना सबसे सहज है। राजकुमारी के समर्पण ने विशभदेव के क्रोध को पानी-पानी कर दिया था। उस के चेहरे की भाव भंगिमा बदली। उसने रोका 'तिरु'। वह टकटकी लगा कर देखने लगा। उसके नेत्र कुछ व्यक्त कर रहे थे।

'कहिये।' वह रुक गई 'अकारण किसी पर क्रोध कर लेना यही बुद्धिमानों का काम है ? मेरे न आने का पहले प्रयोजन तो पूछ लेना चाहिए था ?' वह दूसरी तरफ देख रही थी।

अचानक विशभदेव के मुँह से निकल पड़ा 'मुझ से विवाह करोगी तिरु ?' मन की क्षण भंगुरता विचित्र है। न असंतुष्ट होते देर है न संतुष्ट होते।

इसके पूर्व कि तिरु विशभदेव को कोई उत्तर देती, सामने से चित्र-पुष्पी आती हुई दिखलाई पड़ गई। प्रश्न ज्यों का त्यों रह गया।

चित्रपुष्पी ने आकर बताया 'राजनर्तकी प्रतीक्षा में बैठी हुई हैं।'

'आज बड़ी जल्दी आगई। मुझे बुलाया है ?'

'हाँ।'

राजकुमारी ने विशभदेव की ओर देखा। यह संकेत उठने का था। दोनों खड़े हुए। साथ चलते हुए विशभदेव ने बताया 'कल मुझे पिता जी के साथ मूलवापी जाना पड़ेगा। अब होली के पहले भेंट होने की आशा नहीं। मेरे प्रश्न का उत्तर क्या रहा ?'

'कल रुक नहीं सकते ?'

'ऊँहूँ । पिता जी ने पूरी तैयारी करली है ।'

थोड़ी दूर तक दोनों मौन चलते रहे । आगे जहाँ विशभदेव को मुड़ना था वहाँ पहुँच कर वह रुक गया । तिरु मुसकराई 'प्रश्न का उत्तर होली के अवसर पर दूँगी । अभी नहीं । जाइये । नमस्कार ।' उसने गर्दन झुकाली ।

विशभदेव हाथ जोड़ कर मुड़ गया ।

सत्तरह

औरत जब अपने पर उतर आती है तो उसके लिये संसार का कोई कार्य दुःसाध्य नहीं रह जाता । वह अबला न रहकर सबला बन जाती है और ऐसी सबला बनती है कि असम्भव को सम्भव करना उसके बाँयें हाथ का खेल हो जाता है । इतना ही नहीं वह अपनी इच्छा पूर्ति के हेतु बड़ा विकराल रूप धारण कर लेती है । उसे उचित अनुचित का बिल्कुल ध्यान नही रह जाता । वह देश, समाज, पड़ोस, परिवार और अन्त में स्वयं तक को भूल कर सब कुछ करने को कटिबद्ध हो जाती है । उसके सामने एक ही उद्देश्य होता है और वही उद्देश्य उसकी मंजिल बन जाती है । उड़िया नरेश रुद्रप्रताप गजपति की पुत्री तथा सम्राट् कृष्ण-देव राय की पत्नी अन्नपूर्णा भी इधर कुछ महीनों से अपने एक उद्देश्य की पूर्ति में संलग्न हो उठी थी । उसका भी रूप वही था । उसे उचित अनुचित का कोई विचार नहीं रह गया था । केवल अपनी योजना को

सफल बनाना था और यही एक मात्र दृष्टिकोण उसके सामने अवशेष रह गया था। उसकी योजना भी बड़ी भयंकर थी। सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। वह अपने पति के वध का षड़यन्त्र कर रही थी। और इस षड़यन्त्र में सहयोग मिल रहा था वयोवृद्ध प्रधान मन्त्री सालुव तिम्म का।

सालुव तिम्म अर्थात् अप्पा जी की ईमानदारी और वफादारी पर सन्देह नहीं किया जा सकता था। उसने साम्राज्य को दृढ़ बनाने में जिस पुरुषार्थ एवं त्याग का परिचय दिया था निस्संदेह वह स्वर्णाक्षरों में लिखकर स्मरण करने योग्य था। यह अप्पा जी को ही श्रेय था कि उसने कृष्णदेव राय को विजयनगर के सिंहासन पर बिठलाकर उसे सम्राट् बना दिया; अन्यथा वह चाहता तो स्वयं अवसर से लाभ उठा सकता था। उस समय सम्पूर्ण सत्ता एक प्रकार से उसी के हाथ में थी परन्तु वह अपने सत पथ से डिगा नहीं और यही कारण था कि आज दिन भी सम्राट् प्रत्येक कार्य उसी के आज्ञानुसार किया करता था। यद्यपि वह अब प्रत्येक रूप से शक्तिशाली और पराक्रमी बन चुका था फिर भी उसने अपनी शक्ति का प्रधान मन्त्री को कभी अनुभव नहीं होने दिया। उसने सदैव अप्पा जी की सलाह को ही प्रधानता दी थी। इतना सब कुछ होने पर भी किस कारण वश वृद्ध मन्त्री को जीवन के अन्तिम चरण में इस प्रकार के कुकर्म करने की सूझी— कहना कठिन है। जिस पौधे को ले कर उसने वृक्ष बनाया था आज उसी को काटने में तल्लीन है—एक महान आश्चर्य था। प्रकृति में स्वभाव की विचित्रता आज दिन भी पहेली बनी हुई है।

बैठकें होती रहीं। कार्य को कार्यान्वित करने के सारे मसाले इकट्ठे किये जा रहे थे। साथ-साथ सतर्कता भी खूब बरती जा रही थी। काम बहुत कठिन और दो टूक वाला था। सफलता मिलने पर पूरा साम्राज्य था और असफलता पर जीवन का अन्त। दोनों तराजू बराबर थे।

अन्नपूर्णा अपने फैसले पर दृढ़ थी। परिणामस्वरूप अप्पा जी को

भी दृढ़ बनना पड़ा था। अन्नपूर्णा को अप्पा जी पर भरोसा था पर वह कुछ उसे और पक्का बना देना चाहती थी। उसकी कुशाग्र बुद्धि किसी नये उपाय को ढूंढने में संलग्न थी जिसमें वृद्ध बिल्कुल जकड़ कर उसके हाथों की कठपुतली बन जाय। उसे सन्देह था कि जब तक इस प्रकार के किसी उपाय का सृजन नहीं किया जायेगा; तिम्म किसी भी समय इस षड़यन्त्र का भंडाफोड़ कर सकता है। यद्यपि यह तो निश्चित था कि बिना किसी बड़े स्वार्थ के अप्पा जी अपनी अर्जित कीर्ति पर इस प्रकार लात मार कर ऐसा कार्य करने को तत्पर न होता; परन्तु वह स्वार्थ कौन-सा है—अभी तक अन्नपूर्णा भली भाँति नहीं समझ सकी थी। यद्यपि उसे कुछ आभास अवश्य मिल चुका था लेकिन वह वृद्ध के मुंह से कहलाकर पुनः अपनी ओर से ऐसे विश्वास भरे शब्दों में आश्वासन देना चाहती थी कि वह पत्थर की भांति गड़ कर अडिग बन जाय।

हज़ाराराम का प्रसिद्ध मन्दिर जिसे स्वयं कृष्णदेव ने बनवाया था, राजप्र साद के परकोटे के भीतर था। राजपरिवार के स्त्री-पुरुष मुख्यतः इसी मन्दिर में अर्चना हेतु आया करते थे। देवालय एक बड़े क्षेत्रफल में बना हुआ था और वहां एकान्त में बातें करने की हर तरह की सुविधायें थीं यदि किसी को सुविधाओं की खोज हो तो। आज संध्या समय पूजा के बहाने आई हुई अन्नपूर्णा से अप्पा जी ने भेंट की और तब दोनों गुप्त स्थान पर पहुँच गये। अन्नपूर्णा ने पूछा 'मैंने सुना है राजक्कल तम्बिरन किसी से युद्ध की तैयारी कर रहे हैं?'

'अभी तो नहीं किन्तु निकट भविष्य में इस प्रकार की सम्भावना पाई जा सकती है।'

'तब तो अपने कार्य में शीघ्रता की आवश्यकता है; अन्यथा वर्ष दो वर्ष के लिये मामला टल जायेगा और वैसे भी जब काम में हाथ लग गया है तो उसे पूरा कर देना ही उत्तम होगा।'

'उचित है। मैं भी इसी……।'

अन्नपूर्णा ने रोका 'पर एक और प्रश्न मेरे मस्तिष्क में इधर कई दिनों से चक्कर लगा रहा है। इस में तो अब तनिक भी सन्देह नहीं कि आप के सहयोग से अपना उठाया हुआ संकल्प अवश्यमेव पूर्ण होगा पर सोचना यह है कि उस की पूर्ति के बाद साम्राज्य का उत्तराधिकारी किसे घोषित किया जाय क्योंकि सूचना फैलते ही प्रत्येक अपनी-अपनी गोट बैठाने की चेष्टा करने लगेंगे।'

'इसमें सोचना क्या है ? आज विजयनगर के आधीन उड़िया नरेश हैं और तब उड़िया नरेश के आधीन विजयनगर होगा। इससे सुन्दर और क्या हो सकता है ? विजयनगर की मर्यादा भी नष्ट नहीं होने पायेगी और अपना हित भी सिद्ध हो जायेगा।' वृद्ध ने अपने तजुर्बे के हाथ दिखलाये।

'ना। मैं इससे सहमत नहीं।' अन्नपूर्णा कम सयानी नहीं थी, मुझे सम्राट् से घृणा है साम्राज्य से नहीं। मैं अब विजयनगर की हूँ और विजयनगर पर मेरे पिता का आधिपत्य हो, इसे मैं किसी भी दशा में सहन नहीं कर सकती। विजयनगर पर विजयनगर वालों का ही अधिकार रहेगा। क्या आपके जीवन भर की कमाई यों ही चली जायेगी ? आप ने अपने रुधिर से सींच-सींच कर इसे पल्लवित किया है न ? ना, मैं इससे बिल्कुल सहमत नहीं हूँ।' अन्नपूर्णा मकड़ी की भाँति जाला बना रही थी।

'सो तो ठीक है देवी, परन्तु मैंने कभी स्वार्थवश कोई कार्य नहीं किया है। निस्वार्थ भावना से सदैव अपने कर्तव्य पालन में लगा रहा हूँ और आज दिन भी गोविन्द से यही प्रार्थना करता हूँ कि जीवन के अन्तिम क्षणों तक ऐसी ही बुद्धि बनाये रक्खें जिससे हँसता हुआ प्राण पखेरू उसके चरणों में जा सके। मेरी समझ से गजपति नरेश के अतिरिक्त दूसरा व्यक्ति इस साम्राज्य के लिये उपयुक्त नहीं हो सकेगा। उनके व्यक्तित्व के आगे वैरियों को भी बैर ठानने में कुछ सोचना पड़ेगा।' अप्पा जी ने पुनः अपनी बात की पुष्टि की।

'किन्तु अप्पा जी यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि वे वैर ठानेंगे ही नहीं। सम्भावना ठानने की भी तो हो सकती है। ऐसी दशा में वह कार्य ही क्यों किया जाय जिसमें शंका के लिए कोई स्थान हो ? फिर, ऐसा नहीं करने से और भी कई लाभ हैं—मेरी प्रतिष्ठा बनेगी, आपका मस्तक उन्नत रहेगा और साम्राज्य के लिए किसी प्रकार की छीना झपटी भी नहीं हो पायेगी।'

वृद्ध गर्दन झुकाकर क्षण भर सोचता रहा 'लेकिन मेरी दृष्टि में इस प्रकार का कोई दूसरा योग्य व्यक्ति दिखलाई भी तो नहीं पड़ रहा है जिसे सिंहासन पर बिठला कर देवी की मनोकामना की पूर्ति की जा सके ?' उसने अपने चेहरे पर गंभीरता बढ़ा ली थी।

'है।' अन्नपूर्णा ने भी गम्भीरता के साथ कहा 'अप्पा जी के पुत्र तिम्मप्पा सिंहासन के लिए उपयुक्त व्यक्ति हैं। वे सर्वगुण सम्पन्न हैं। साथ ही उन्हें पिता का संरक्षण भी प्राप्त होगा। जिसकी ईमानदारी, त्याग और उपकारों से साम्राज्य का मस्तक आज दिन भी झुका हुआ है। शासन के संचालन में चार चाँद लग जायेंगे अप्पा जी। उत्तरोत्तर उन्नति होती जायेगी। सोने में सुगन्ध आ जायेगी।'

महामंत्री भीतर ही भीतर प्रसन्न हुआ परन्तु उसने उसे दबाये रक्खा 'देवी के विचार एक पक्षीय हैं। ऐसा हो तो सकता है किन्तु किसी ने स्वार्थ में आकर मेरे विरुद्ध झंडा खड़ा कर दिया तब। मेरी तो धुल जायेगी। जो कभी नहीं सुना उसे सुनना पड़ेगा।'

'यह संसार है अप्पा जी। यहाँ हर तरह के लोग हैं। कहने वालों ने तो माता सीता तक को कह डाला है। सब की बुद्धि एक जैसी नहीं होती। जहाँ दस अच्छे हैं, वहाँ दो चार बुरे भी होंगे। आप इसके लिए चिन्ता न करें। रहा प्रश्न विरोध का, उस पर सोचना बेकार है। आपके विरुद्ध आया हुआ वैरी रणक्षेत्र में कितनी देर तक टिक सकता है—इसका मुझे अनुमान है। अब तिम्मप्पा ही सिंहासन के उत्तराधिकारी होंगे, यह निश्चत है। इसे मैंने तय कर लिया है।' अन्न-

पूर्णा ने नींव दृढ़ कर दी।

जगत् के समस्त कार्य द्वेष और स्वार्थ दो वस्तुओं को अ धार मान-कर हुआ करते हैं। कण-कण में इन्हीं की भावना व्याप्त है। सृष्टि की गतिशीलता इन्हीं पर निर्भर करती है। इनकी अनुपस्थिति में जगत् अस्तित्वहीन हो सकता है। अप्पा जी के स्वार्थ की अन्नपूर्णा द्वारा पुष्टि हुई यह वृद्ध के लिए बड़ी प्रसन्नता की बात थी किन्तु अब भी उसने अपनी गम्भीरता वैसी ही बनाये रक्खी थी। वह अपने मस्तक पर हाथ फेरता हुआ आँखें बन्द करके बोला 'देवी जैसा उचित समझें। मैंने तो जीवन भर केवल आज्ञाओं का पालन किया है। यदि देवी की ऐसी इच्छा है तो यही होगा। मैं……।'

किसी की आहट का अनुमान पाकर अन्नपूर्णा ने मुंह पर उँगुली रख कर चुप रहने का संकेत किया। कुछ समय तक दोनों मौन अनुमान लगाते रहे तदुपरान्त अप्पा जी धीरे से उठकर बाहर आया। इधर-उधर देखा और पुनः लौट कर बताया 'भ्रम था।'

'काम में अब शीघ्रता करने की आवश्यकता है,' अन्नपूर्णा बोली 'आपने जिस खोजा को अपने पक्ष में मिलाने के लिए कहा था, उसका क्या हुआ ?'

'वह अपने पक्ष में आ चुका है। यह काम उसी रात को होगा जिस दिन पहरे पर उसकी नियुक्ति होगी।'

'यह बड़ा सुन्दर रहा। किसी को सन्देह भी नहीं हो पायेगा।'

'परन्तु अभी एक और कठिनाई है।'

'क्या ?'

राजक्कल तम्बिरन का अत्यन्त विश्वासपात्र खोजा शंकरम उनके शयन कक्ष में प्रवेश करते ही ड्योढ़ी पर आकर खड़ा हो जाता है और सारी रात उसी प्रकार खड़ा रहता है। वहाँ से वह एक क्षण के लिए भी नही हटता।'

'बिल्कुल नहीं हटता ?' अन्नपूर्णा ने आश्चर्य व्यक्त किया।

'बिल्कुल नहीं और इसलिये उसके संग-संग दूसरे पहरेदार को भी उसी की भाँति सतर्कता बरतनी पड़ती है।'

'फिर ...।'

'प्रयत्न कर रहा हूँ। कोई न कोई रास्ता तो निकालना ही होगा। काम .....।'

बाहर फिर किसी की आहट मिली। इस बार अप्पा जी ने भी सुना था। उसने धीरे से कहा 'अब चलिए। परसो मैं दोपहर में आपसे मिलूँगा। तब और बातें होंगी। अब बैठना उचित नहीं।'

अन्नपूर्णा चुपके से बाहर निकली।

अठारह

आदिलशाह द्वारा तैनात सैनिक अपने कार्य में असफल रहे। घोड़े ने रामराय की जान बचा ली। वह हवा की भाँति उड़ता हुआ सब की आंखों में धूल झोंक कर निकल गया। रात भर रामराय चला। दिन भर चला। थोड़ा विश्राम किया, फिर चला। मुदगल आया। सरहद समीप आ गई थी। ढाढ़स में वृद्धि हुई। बड़ी कठिनाइयों के उपरान्त कृष्णा-तुंगभद्रा के दुआब वाला भाग आया। तदुपरान्त वह तुंगभद्रा पार करता हुआ विजयनगर की सीमा में आगया। जान में जान आई। प्राण बच गये—मानो सारे संसार की निधि प्राप्त हो गई।

कई दिन बीत गये तुंगभुद्रा के किनारे रहते हुये। मस्तिष्क कुछ निश्चित नहीं कर पा रहा था। किधर जाय, कहाँ जाय, क्या करे आदि

प्रश्नों ने उसे बड़ा उलझाये रक्खा। कभी-कभी उरूसी की याद भी उसे बड़ी व्यथा पहुँचाती थी परन्तु यह स्मरण आते ही कि उस संसार से अब कोई वास्ता नहीं, उसे संतोष होता और तब वह अपने विचारों को दूसरी समस्याओं में लगाने का प्रयत्न करने लगता। एक दिन उसने सोचा—क्यों न पिता के पास चला जाय ? वहाँ चलने से सारी उलझनें दूर हो सकती हैं। बहुत सम्भव है वह अपनी विशेषताओं द्वारा सम्राट् को भी प्रभावित करलें और तब यह भी सम्भव है कि आदिलशाह के विरुद्ध उसे भड़का कर बीजापुर पर आक्रमण करा दिया जाय और फिर यह भी असम्भव नहीं कि उसकी प्रेयसी उरूसी न प्राप्त हो जाय। उसका मन आह्लादित हो उठा। युद्ध की कल्पना का सृजन हुआ। घंघोर युद्ध के उपरान्त आदिलशाह पराजित हुआ। संधि की शर्तें तय हुईं। उसने सम्राट् से अपनी बात बताई। सम्राट् मुसकराया और उसकी उरूसी उसे प्राप्त हो गई। इस प्रकार बड़ी देर तक वह सुखद कल्पनाओं में विचरण करता रहा। उसने पिता के पास चलने का निश्चय कर लिया।

रात में अनायास उसके मन में एक दूसरा भाव उठा क्या पिता के पास इस दयनीय स्थिति में जाना उचित होगा ? यदि वह मुझे पहिचान न सके तो ; अथवा पहिचान कर भी किसी कारणवश उन्होंने पहिचानना न चाहा तो ? रामराय की विचारधारा बदली। मन ही मन पक्ष और विपक्ष में तर्क होने लगा। नाना प्रकार की बातें मस्तिष्क में आईं। अहं भाव जागा। पुरुषत्व में दृढ़ता आई और अन्त में दिल दिमाग दोनों ने नहीं जाने का निर्णय दे दिया। इरादा बदल गया। वह पिता के पास नहीं जायेगा। तब उसके हृदय में ग्लानि उत्पन्न हुई। जगत् का एक-एक प्राणी घृणित, कपटी और स्वार्थों से भरा हुआ दिखलाई पड़ा। संसार मिथ्या तथा दुःखदायी प्रतीत हुआ। मन, सार से असार की ओर बढ़ा। वैराग्य का रूप सामने आया। निराशा बलवती हुई। क्षुब्ध मन छटपटा उठा और अन्त में संसार त्याग देने का संकल्प किया।

मास, दो मास और चार मास बीत गये। रामराय वैरागी बनकर घूमने लगा था। सिर और दाढ़ी के बाल बढ़ गये थे। लम्बे बदन पर लम्बे से पीले लबादे के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। कन्धे में वीणा लटक रही थी जो किसी गाँव के नायक ने उसकी वीणा वादन से प्रसन्न होकर उपहार स्वरूप भेंट किया था। रामराय गाँवों-जंगलों में विचरता भगवत भजन करने लगा था। वह किसी स्थान पर चार-छः दिनों से अधिक नहीं रुकता। सम्पर्क से घनिष्ठता बढ़ती है और घनिष्ठता से मोह। मोह, मायावी है—ठगिया। इस से अपने को बचा कर ही भव बन्धन से छुटकारा पाया जा सकता है। यही था रामराय का थोड़े में समझा हुआ अपना दर्शन और उसी दर्शन के अनुकूल वह अपने जीवन के मार्ग पर अग्रसर होते रहने का प्रयास कर रहा था।

कुछ समय उपरान्त रामराय ने तीर्थों का पर्यटन आरम्भ किया और वर्ष दो वर्ष तक देश के समस्त तीर्थों पर अपनी श्रद्धांजलि चढ़ा कर पुनः विजयनगर को लौट पड़ा। उसने विजयनगर के आसपास ही अपनी कुटिया बनाने को सोच रखा था। यद्यपि उसके बाहरी आडम्बरों ने उसे पूर्ण रूप से संन्यासी का रूप दे रखा था; परन्तु अभी अन्तर में विराग की सच्ची अनुभूति भली भाँति घर नहीं कर पाई थी। मन की चंचलता वैसी ही थी। नियंत्रण में दृढ़ता नहीं आई थी। मन किसी भी समय दूसरे पथ का अनुगामी बन सकता था। यद्यपि अपने में स्थिरता लाने की वह बड़ी कोशिशें करता लेकिन सफलता उसके हाथ की वस्तु तो थी नहीं। वह जितना कर सकता था, कर रहा था। धीरे-धीरे ही तो लौ लगती है। अभ्यास, जो प्रत्येक साधना का मूलमन्त्र है उसे वह कर रहा था।

हम्पी पहुँच कर रामराय रुक गया। उसने सोचा—विभिन्न देवालयों में देवताओं के दर्शनोपरान्त तब आगे बढ़ना उचित होगा। वह नगर को भी देखने के लिये कुछ-कुछ उत्सुक था। उसने विजयनगर की बड़ी प्रशंसा सुन रक्खी थी। प्रभु की सृष्टि में देखना मना नहीं है,

लिप्त होना मना है—बुद्धि ने तर्क रक्खा था। वह पाँच-पाँच, सात-सात दिनों तक प्रत्येक परकोटे में रुक-रुक कर अपने पूजन-भजन के साथ नगर की विशालता एवं वैभव का अवलोकन करने लगा। आकर्षक व्यक्तित्व होने के कारण उसका मान-सम्मान भी हर स्थान पर किया जाता था। मन्दिरों में जब वीणा बजाकर वह भगवान की आराधना करने लगता तो भक्तजनों की बैठी हुई मंडली भाव विभोर हो उठती। उसकी बड़ी प्रशंसा होती।

इन्हीं दिनों उसे बताया गया कि भगवान कृष्ण की जन्म तिथि का महान् पर्व विट्ठल स्वामी के मन्दिर में मनाया जाने वाला है जहाँ स्वयं सम्राट् उपस्थित रह कर प्रत्येक कार्य में भाग लेंगे। ऐसे अवसर पर वहाँ पहुँचने से वह भगवत भजन के सहित राजक्कल तम्बिरन के निकट-तम सम्पर्क के सुअवसर का भी आनन्द ले सकता था। रामराय को यह सूचना प्रिय लगी।

उन्नीस

नंगलपुर के समीप ही लगभग पौन कोस लम्बे और सौ गज चौड़े क्षेत्रफल में विट्ठल स्वामी का विशाल मन्दिर बना हुआ था। मन्दिर का मुख्य प्रवेश द्वार बहुत ही भव्य था। उसकी भव्यता उसके ऊपर बने हुए विशाल गुम्मट के कारण अधिक बढ़ गई थी। गुम्मट के चारों ओर नाना प्रकार के पशुओं तथा मनुष्यों की आकृतियाँ बनी हुई थी जो गुम्मट की ऊँचाई के साथ-साथ सूक्ष्म होती हुई बिल्कुल सूक्ष्म हो गई थी। द्वार

के दोनों ओर सूँड उठाकर चिंघाड़ते हुए प्रस्तर के दो हाथी बनाये गये थे जिनका आकार वास्तविक हाथियों जैसा था। सामने अनार का एक सघन वृक्ष था। वृक्ष से हट कर एक सड़क दाहिनी तथा बायीं ओर को जाती थी और एक सामने से आकर उसी में मिल जाती थी। सामने वाली सड़क दूर तक लम्बी थी जिसके दोनों ओर छज्जेदार सुन्दर भवन बने हुये थे। ये भवन आने वाले तीर्थ यात्रियों के लिये थे। उसी सड़क पर कुछ और आगे अधिक सुन्दर एवं सुविधाजनक भवनों का निर्माण किया गया था। ये भवन, सामन्त-सरदारों, विशिष्ट नागरिकों और ऊँचे पदाधिकारियों के हेतु थे। अन्त में जहाँ सड़क समाप्त होती थी वहाँ सम्राट् ने स्वयं के रहने के लिये एक भवन बनवाया था। कृष्ण जन्म उत्सव या अन्य उत्सवों पर सम्राट् सपरिवार इसी भवन में आकर ठहरता और एक-एक कार्यक्रम में सम्मिलित होता था।

मन्दिर के द्वार से अन्दर प्रवेश करते हैं। कुछ ऊँची पीठ देकर चौंतीस गज लम्बे और बीस गज चौड़े दायरे का एक मंडप बना हुआ था जो 'महामंडप' के नाम से जाना जाता था। महामंडप चौकोर स्तम्भों पर आधारित था। स्तम्भ एक पत्थर से तैयार किये गये थे। जो विभिन्न अलंकरणों से विभूषित थे। कहीं राक्षसों पर बैठी हुई मनुष्य की आकृतियाँ थीं तो कहीं आखेट का दृश्य था; कहीं भगवान की निकलती हुई सवारी का चित्र प्रस्तुत किया गया था तो कहीं देवी-देवताओं की मूर्तियाँ थीं। इस तरह प्रत्येक स्तम्भ को बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित करके उनमें जीवन फूंक दिया था। इनकी बनावट, खुदाई और मूर्तियों की रचना ऐसी थी कि महामंडप अपने वास्तविक आकार से अधिक विशाल और भव्य दिखलाई पड़ता था। खम्भों में स्थान-स्थान पर ताख बने थे जिनमें चाँदी के दीयट दीप सहित चमक रहे थे। मंडप की छत ताँबे की चादरों से मढ़ी हुई थी जिस पर सोने का पानी चढ़ा कर स्वर्णिम बना दिया गया था। अलंकरण वहाँ भी था। छत के आधारस्वरूप मंडप के मध्य में चार स्तम्भ थे। यह स्तम्भ भी ताम्रपत्र जड़ित थे और इन पर भी सोने का

पानी चढ़ा हुआ था। विशेष उत्सवों पर ही महामंडप उपयोग में लाया जाता था। भगवान विट्ठल की मूर्ति सिंहासन सहित यहाँ लाकर रख दी जाती थी और इस प्रकार लोग अधिक संख्या में दर्शन से लाभ उठा लेते थे।

महामंडप से आगे बढ़ने पर एक दूसरा द्वार मिलता था। यह द्वार मुख्य द्वार की भाँति विशाल तो नहीं था; परन्तु शिल्पी की अद्वितीयता का परिचायक अवश्य था। इस द्वार से प्रवेश करते ही दूसरा मंडप आ जाता था। इसे 'अर्ध मंडप' या 'सभा भवन' कह कर पुकारते थे। अर्ध मंडप में जनता एकत्रित हो कर पूजा में सम्मिलित होती थी। यह मंडप भी सुन्दरता तथा अन्य अलंकरणों में महामंडप की भाँति था। यह बरामदायुक्त था और स्तम्भों की बनावट महामंडप के स्तम्भों से भिन्न थी। बड़े-बड़े गजों और अश्वों पर आरूढ़ सैनिकों की आकृतियाँ इस प्रकार से प्रदर्शित की गई थीं कि वहाँ स्तम्भों का अस्तित्व ही मिट गया था। दीयटों की जगमगाहट यहाँ अधिक थी जिन की संख्या तीन हज़ार थी।

अर्ध मण्डप के सामने गर्भ गृह था जिसमें बाल कृष्ण के रूप में ब्रह्मांड के स्वामी विराजमान थे। रजत पत्तरों से मढ़ा हुआ यह कक्ष देखने वालों की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर देता था। गृह के चारों कोनों में चाँदी की लटकती जंजीरों में दीयट झूल रहे थे जिन में अहोरात घी के दीपक जला करते थे। यहाँ भी छत और दीवारों की शोभा अनोखी थी—भगवान की अर्चना को जाता हुआ स्त्रियों का समूह, पूजा में बैठे हुए भक्तों की भाव मुद्राये इत्यादि सजीवता को प्रमाणित करने में सफल हो रही थीं। गर्भ गृह में पुजारी के अतिरिक्त दूसरे को जाने की अनुमति नहीं थी। गर्भ गृह के पिछली तरफ 'अम्मान मण्डप' और 'कल्याण मण्डप' थे।

विट्ठल स्वामी का मन्दिर सम्राट् कृष्णदेव राय द्वारा निर्मित हुआ था जो अपनी विशालता और सुन्दरता में अनोखा था। इस देवालय को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आया करते थे। मन्दिर की दीवार,

स्तम्भ, मेहराब, दीवार की कंगनी ग्रादि छोटी से बड़ी वहाँ जितनी भी चीज़ें थी, सब ग्रलंकृत ग्रौर शिल्प कला की ग्रद्भुत उदाहरणों की परिचायक थीं। देखने वालों की ग्राँखें ऊब कर भी ग्रघा नहीं पाती थीं। मालूम पड़ता था जैसे ग्रब-तब में वे ग्राकृतियाँ बोलने वाली हैं। बाल-कृष्ण की मूर्ति भी बड़ी नयनाभिराम थी। भगवान की यह मूर्ति सम्राट् उदयगिरि के मन्दिर से ले ग्राया था जब वह उड़ीसा नरेश प्रतापरुद्र गजपति को युद्ध में खदेड़ता हुग्रा वहाँ जा पहुँचा था।

विट्ठल मन्दिर में कृष्ण जन्म उत्सव की तैयारी प्रारम्भ हो गई थी। ग्रप्पा जी की देख रेख में सजावट हो रही थी। इस समय वह नगर से यहीं ग्राकर रहने लगा था। साथ में ग्रन्य विभागों के भी प्रमुख ग्रधिकारी थे। जन्म तिथि से चार दिन पूर्व सम्राट् भी ग्रपने परिवार सहित ग्रा गया। ग्रर्ध मण्डप में ग्रायोजन होने ग्रारम्भ हुये। नित्य संध्या को तीन हज़ार दीपकों के प्रकाश में गायन, वादन ग्रौर नृत्य के कार्यक्रम प्रदर्शित किये जाते जिनमें बाहर के कलाकार भी सम्मिलित रहते थे। संन्यासी रामराय भी ग्रा चुका था ग्रौर नित्य संध्या समय पीछे एक कोने में बैठ कर संगीत के स्वर्गिक सुख का ग्रानन्द लिया करता था। कभी-कभी उसकी भी इच्छा ग्रपनी वीणा सुनाने की होती परन्तु संकोच वश कहना चाह कर भी कह नहीं पाता था।

कल जन्म दिन था। ग्राज संध्या का पहला कार्यक्रम राजकुमारी तिरुमलाम्बा का नृत्य था। सम्राट् के ग्रागमन के उपरान्त राजकुमारी ने भगवान के समक्ष नृत्य प्रस्तुत किया। नृत्य समाप्ति पर उसकी बड़ी सराहना हुई। राजकुमारी के उपरान्त राजनर्तकी नीलाम्बई ने नृत्य दिखलाये। इसके बाद संगीताचार्य वन्दम लक्ष्मीनारायण का गायन हुग्रा तदुपरान्त सम्राट् की इच्छानुसार पुनः तिरुमलाम्बा का नृत्य ग्रौर वीणा वादन दोनों हुये। फिर वीणा के गुरू श्रीकृष्ण ने वीणा बजाया जिसके स्वरों की मादकता फैल कर मण्डप में छा गई। रामराय ग्राज ग्रपने को न रोक सका। राग समाप्त होते ही वह ग्रनायास उठकर

खड़ा हो गया 'राजक्कल तम्बिरन की आज्ञा हो तो मैं भी वीणा पर कुछ सुनाऊँ।'

सबने सिर घुमा कर देखा—'संन्यासी वेश में सुन्दर सा युवक अवलोकनीय था। सम्राट् ने उत्तर दिया 'अवश्य गोविन्द के सम्मुख हिचकिटाहट कैसी ? आइये।' सम्राट् उसके व्यक्तित्व से प्रभावित था।

रामराय ने मध्य में आकर वीणा संभाली। तारों को मिलाया और तब आरोह-अवरोह लेता हुआ आलाप भरने लगा। बैठी हुई मण्डली ने एक दूसरे का मुँह देखकर विषमय प्रगट किया। उन्हें आश्चर्य था। आलाप के उपरान्त राग आरम्भ हुआ। धीरे-धीरे उंगुलियों की गतिशीलता में प्रगति हुई जो सुनने वालों को आनन्द में डुबोने के साथ-साथ अचम्भे को बढ़ाती चली जा रही थी। सम्राट् की एकाग्रता बढ़ गई। वादक ने और निपुणता दिखलाई। लोग झूमने लगे। अर्धमण्डप वाद्यमय हो उठा। आनन्द की पराकाष्ठा इतनी बढ़ी कि प्रत्येक की आत्मा परमात्मामय हो उठी। लगभग एक घन्टा उपरान्त वादक ने सम पर वीणा रोक ली। प्रशंसा के लिए लोगों के पास शब्द नहीं थे।

सम्राट् उसकी वीणा पर इतना मुग्ध हुआ कि वह अपने को रोक न सका। उसने उठकर वादक की पीठ थपथपाई 'बहुत सुन्दर। इतनी छोटी उम्र में ऐसी निपुणता। वाह ! तुम्हारी जितनी प्रशंसा की जाय बस थोड़ी है। और सुनाओ।' वह आकर अपने स्थान पर बैठ गया।

पार्श्व में बैठी हुई तिरु ने धीरे से पिता से कहा 'इस के बाद भी।'

सम्राट् ने सिर हिलाया।

कई राग रामराय ने बजाये फिर भी लोगों की इच्छायें तृप्त होने का नाम नहीं ले रही थीं। अन्त में सम्राट् ने बन्द किया। सभा भंग हुई। आरती के उपरान्त सब ने प्रसाद ग्रहण किये। दूसरे दिन सवेरे रामराय से मिलने को कह कर सम्राट् चला गया। उसके जाने के बहुत समय बाद तक कला प्रेमियों की जमघट रामराय के चारों ओर जुड़ी रही।

दूसरे दिन रामराम संन्यासी ने सम्राट् से भेंट की। सम्राट् ने उसे अपने समीप बिठलाया। 'युवक,' वह बोला 'यह तुम्हें भली भाँति विदित हो गया होगा कि तुम्हारे वीणा वादन से मैं बहुत प्रभावित हूँ। निश्चित रूप से तुम अपनी कला में अद्वितीय हो किन्तु तुमने यह मार्ग त्याग कर संन्यास वाला मार्ग क्यों और किस अभिप्राय से अपनाया है मैं समझ नहीं सका ? तुम रहने वाले कहाँ के हो ?'

'श्रीरंगपट्टन का।'

'तुम्हारे माता-पिता जीवित हैं ?'

'जी नहीं। मैं संसार में अकेला हूँ।' रामराय ने छिपाया।

'तुमने संन्यास कब से ग्रहण किया ?'

'चार पांच वर्षों से।'

'इसके पूर्व क्या करते थे ?'

'एक साधारण सैनिक था।'

'सैनिक से संन्यासी बनने का कारण ?'

रामराय चक्कर में पड़ गया। इतनी शीघ्रता में उसे कोई बहाना भी बनाते न बना। उसे उत्तर देने में विलम्ब हुआ।

कृष्णदेव राय ऐसे विद्वान और अनुभवी व्यक्ति को सारांश निकालने के लिए इतना पर्याप्त था। उसने पुनः पूछा 'इस जीवन से तुम्हें संतोष है युवक ?'

'नहीं राजक्कल तम्बिरन।' रामराय ने सही बात बता दी, 'किन्तु उस जीवन की भी तो ऐसी ही स्थिति थी।

'तो तुमने विवशता में उस जीवन को छोड़ा है; अन्यथा इस जीवन से उस जीवन में तुम्हारे लिए अधिक आकर्षण और संतोष था।' सम्राट् ने नाड़ी पकड़ ली।

रामराय नाही करने में असमर्थ हुआ।

सम्राट् मुसकराया। उसने उसकी पीठ पर हाथ फेरा—'कर्म पथ से विमुख होने वाले व्यक्तियों को संसार में कहीं भी संतोष नहीं प्राप्त

होता संन्यासी। तुम अभी युवक हो। तुम्हारे अन्दर जो ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा है उसका समुचित उपयोग करो। मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी यदि तुम यहाँ रह कर अपनी कला को अधिक निखार सको। समाज और मानवता को सुखी बनाकर स्वयं सुखी होना—मनुष्य का परम कर्तव्य है। कर्तव्यों का विभाजन आयु के अनुसार हुआ है। समझे।' सम्राट् को जनता द्वारा 'अभिनव भोज' की उपाधि इसी बुनियाद पर तो मिली थी।

रामराय चुप रहा।

'तुम्हारा नाम ?' सम्राट् ने पूछा।

'रामराय।'

'तो मैं समझता हूँ मेरा प्रस्ताव तुम्हें अरुचिकर न होगा ?'

'अरुचिकर तो नहीं है फिर भी मैं राजक्कल तम्बिरन से चार-छै दिन का अवसर चाहूँगा।'

'अवश्य।' सम्राट् ने उसे जाने की अनुमति दे दी।

बीस

उस दिन अप्पाजी ने अन्नपूर्णा से भेंट की थी और कुछ समय तक वार्तालाप के उपरान्त यह निश्चय हुआ कि कृष्ण जन्म उत्सव के बाद जब राजक्कल तम्बिरन पुराने राजप्रासाद में आ जायं तब कार्य को कार्यान्वित किया जाय। उसने यह भी बताया कि बिना शंकरम की हत्या कराये कार्य की सिद्धि असम्भव है।

अन्नपूर्णा ने समर्थन किया 'यह विचार तो मेरे मस्तिष्क में भी आया था पर प्रश्न है उसकी हत्या का। उसकी हत्या होते ही सब के

दूसरे दिन रामराम संन्यासी ने सम्राट् से भेंट की। सम्राट् ने उसे अपने समीप बिठलाया। 'युवक,' वह बोला 'यह तुम्हें भली भाँति विदित हो गया होगा कि तुम्हारे वीणा वादन से मैं बहुत प्रभावित हूँ। निश्चित रूप से तुम अपनी कला में अद्वितीय हो किन्तु तुमने यह मार्ग त्याग कर संन्यास वाला मार्ग क्यों और किस अभिप्राय से अपनाया है मैं समझ नहीं सका ? तुम रहने वाले कहाँ के हो ?'

'श्रीरंगपट्टन का।'

'तुम्हारे माता-पिता जीवित हैं ?'

'जी नहीं। मैं संसार में अकेला हूँ।' रामराय ने छिपाया।

'तुमने संन्यास कब से ग्रहण किया ?'

'चार पांच वर्षों से।'

'इसके पूर्व क्या करते थे ?'

'एक साधारण सैनिक था।'

'सैनिक से संन्यासी बनने का कारण ?'

रामराय चक्कर में पड़ गया। इतनी शीघ्रता में उसे कोई बहाना भी बनाते न बना। उसे उत्तर देने में विलम्ब हुआ।

कृष्णदेव राय ऐसे विद्वान और अनुभवी व्यक्ति को सारांश निकालने के लिए इतना पर्याप्त था। उसने पुनः पूछा 'इस जीवन से तुम्हें संतोष है युवक ?'

'नहीं राजक्कल तम्बिरन।' रामराय ने सही बात बता दी, 'किन्तु उस जीवन की भी तो ऐसी ही स्थिति थी।

'तो तुमने विवशता में उस जीवन को छोड़ा है; अन्यथा इस जीवन से उस जीवन में तुम्हारे लिए अधिक आकर्षण और संतोष था।' सम्राट् ने नाड़ी पकड़ ली।

रामराय नाही करने में असमर्थ हुआ।

सम्राट् मुसकराया। उसने उसकी पीठ पर हाथ फेरा—'कर्म पथ से विमुख होने वाले व्यक्तियों को संसार में कहीं भी संतोष नहीं प्राप्त

होता संन्यासी। तुम अभी युवक हो। तुम्हारे अन्दर जो ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा है उसका समुचित उपयोग करो। मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी यदि तुम यहाँ रह कर अपनी कला को अधिक निखार सको। समाज और मानवता को सुखी बनाकर स्वयं सुखी होना—मनुष्य का परम कर्तव्य है। कर्तव्यों का विभाजन आयु के अनुसार हुआ है। समझे।' सम्राट् को जनता द्वारा 'अभिनव भोज' की उपाधि इसी बुनियाद पर तो मिली थी।

रामराय चुप रहा।

'तुम्हारा नाम ?' सम्राट् ने पूछा।

'रामराय।'

'तो मैं समझता हूँ मेरा प्रस्ताव तुम्हें अरुचिकर न होगा ?'

'अरुचिकर तो नहीं है फिर भी मैं राजक्कल तम्बिरन से चार-छै दिन का अवसर चाहूँगा।'

'अवश्य।' सम्राट् ने उसे जाने की अनुमति दे दी।

बीस

उस दिन अप्पाजी ने अन्नपूर्णा से भेंट की थी और कुछ समय तक वार्तालाप के उपरान्त यह निश्चय हुआ कि कृष्ण जन्म उत्सव के बाद जब राजक्कल तम्बिरन पुराने राजप्रासाद में आ जायं तब कार्य को कार्यान्वित किया जाय। उसने यह भी बताया कि बिना शंकरम की हत्या कराये कार्य की सिद्धि असम्भव है।

अन्नपूर्णा ने समर्थन किया 'यह विचार तो मेरे मस्तिष्क में भी आया था पर प्रश्न है उसकी हत्या का। उसकी हत्या होते ही सब के

कान खड़े हो जायेंगे। राजक्कल तम्बिरन का भी अधिक सतर्क हो जाना स्वाभाविक हो जायेगा। छानबीन प्रारम्भ होगी और ...।'

'राजक्कल तम्बिरन और उसकी दोनों हत्यायें साथ-साथ होंगी और उसी रात को होंगी।'

अन्नपूर्णा ने विस्फारित नेत्रों से निहारा 'ऐसा सम्भव है ?'

'प्रयत्न कर रहा हूँ। जिस खोजा के विषय में मैंने ज़िक्र किया था वह इस काम के लिये अभी आगा-पीछा कर रहा है किन्तु आशा है .....।'

'परन्तु इस में भी एक कठिनाई है।' अन्नपूर्णा को जैसे कोई नई बात सूझ आई हो।

'क्या ?'

'यदि वह तैयार भी हो जाय तब भी यह आशा कैसे की जाय कि इसका खटका कक्ष में सोये हुये राजक्कल तम्बिरन को न हो सकेगा और उनके जागते ही खोजा के हाथ पाँव ढीले पड़ जायेंगे। षड़यन्त्र का भंडाफोड़ हो जायेगा। हम लोगों को जीवन से हाथ धोना पड़ेगा।'

वृद्ध मन्त्री सोचने लगा। अन्नपूर्णा ने उचित कहा था। यह उपाय सन्देहजनक है। सम्राट् की नींद खुल सकती है, 'तब ? बिना शंकरम की हत्या किये राजक्कल तम्बिरन के कमरे में प्रवेश भी असम्भव है।' उसने बताया।

'यदि मैं इस काम को करूं तो कैसा रहेगा ?'

'कैसे ?'

'मेरे कहने का तात्पर्य है कि शंकरम की हत्या आप वाला खोजा करे और सम्राट् की मैं। काम भी सरलतापूर्वक हो जायेगा और किसी को कोई जानकारी भी नहीं हो सकेगी। इसमें दोनों की बचत है।'

'हाँ। इतना अगर आप कर सकें तब तो सफलता मिल सकती है,' अप्पाजी को अन्नपूर्णा से इतनी आशा नहीं थी 'परन्तु उस में समय अधिक लगेगा।'

'क्यों ?'

'पहले आपको राजक्कल तम्बिरन के मन में अपने प्रति श्रद्धा उत्पन्न करानी होगी तभी रात के समय उनके कमरे में प्रवेश पाना सम्भव हो सकेगा।'

'क्या खोजा मुझे भी रोक सकता है ?'

'सम्भव है। शंकरम ऐसे व्यक्ति को इसमें सन्देह का आभास मिल सकता है।'

अन्नपूर्णा सोच में पड़ गई। कुछ समय तक कमरे का वातावरण मौन बना रहा, 'अप्पाजी।' वह बोली 'मैं सम्राट् से झूठा प्रेम प्रदर्शन नहीं कर सकती। यह मेरे सामर्थ्य के बाहर की वस्तु है।'

'यह देवी का भावावेश है। अपना काम बनाने के लिये हर तरह की कूटनीति बरतनी चाहिये। कुछ दिनों की बात है फिर तो कंटक साफ हो जायेगा। देवी यदि गंभीरता से सोचें तो मेरी बात अरुचिकर नहीं लगेगी।' अन्नपूर्णा द्वारा कृष्णदेव राय की हत्या का प्रस्ताव प्रधान मंत्री को बड़ा उत्तम लगा था।

'ऐसा भी तो हो सकता है कि इधर' अन्नपूर्णा ने दूसरी तरकीब बतलाई 'अपनी पूरी तैयारी कर लेने के उपरान्त उस निश्चित रात को मैं अचानक राजक्कल तम्बिरन के कक्ष के पास जा पहुँचू। यदि शंकरम ने रोका नहीं तब तो मैं कक्ष में प्रवेश करते ही काम तमाम कर दूँगी और उधर आपका लगाया हुआ खोजा शंकरम की इतिश्री कर देगा और यदि शंकरम ने रोक दिया तो चुपचाप लौट आऊँगी।'

'हाँ, यह हो सकता है लेकिन दूसरे दिन सम्राट् से बहाना क्या बनाइयेगा ?'

'वह मैं कर लूँगी।'

अप्पाजी समझ गया कि अन्नपूर्णा उसके प्रस्ताव से सहमत नहीं है। उसने अन्नपूर्णा के प्रस्ताव का समर्थन किया। उसके लिये यह भी उत्तम था। चाहे चाकू खरबूजे पर रख दिया जाय या खरबूजा चाकू

पर, कटेगा खरबूजा ही। लड्डू उसके दोनों हाथों में थे। उसने रानी की बात स्वीकार करली और अगली बैठक पर दिन निश्चित करने का निर्णय हुआ। बैठक सम्राट् के राजप्रासाद में आजाने पर होगी। अप्पाजी ने अन्नपूर्णा से विदा ली।

× × ×

सम्राट्, विट्ठल स्वामी मन्दिर से राजप्रासाद को लौट आया था। सालुव तिम्म और अन्नपूर्णा की बैठक हुई। तिम्म ने शंकरम की हत्या के लिये उस खोजा को तैयार कर लिया था। इसकी सूचना उसने अन्नपूर्णा को दे दी। सब तरफ से मामला बैठ गया। दिन निश्चित होना अब शेष था। वह भी तय हुआ अगले सप्ताह का बुधवार। एक दिन पूर्व मंगलवार को पुनः मिलने की बात हुई और दोनों एक-दूसरे से अलग हुये।

महल में सम्राट् का शयन कक्ष हाथी दाँत का था। फर्श, छत, दीवार, खम्भे, सब हाथी दाँत के थे। घरनों में भी हाथी दाँत जड़ कर कमल और गुलाब की पंखुड़ियों को इस प्रकार विकसित कर दिया गया था कि देखने वालों की दृष्टि अटक कर रह जाती थी। कक्ष के मध्य में हाथी दाँत का बड़ा पर्यंक रखा था जिस पर लगे हुये मखमली गद्दे के चारों ओर झिलमिलाते हीरे और मोती टंके थे। पर्यंक के सामने दो सिंहासन थे। ये सिंहासन भी हाथी दांत के थे। पर्यंक के सिरहाने एक हाथी दाँत के ऊँचे त्रिपद पर हाथी दाँतों द्वारा निर्मित दीप वृक्ष रक्खा था जिस में एक मोटी मोमवत्ती जल रही थी।

रात काफी जा चुकी थी फिर भी सम्राट् अभी लिख रहा था। वह अपनी पुस्तक 'आमुक्तमलयाडा' को एक अमर कृति बनाना चाहता था। वह लिख रहा था "एक राजा को अपनी आय का चार भाग करना चाहिये। एक भाग परोपकार और भोगविलास के लिये, अन्य दो भाग शक्तिशाली सेना की व्यवस्था के लिये तथा चौथा भाग कोष के निमित्त जमा कर देना चाहिये।" उसने क़लम रखकर गर्दन उठाई।

देखा तो द्वार पर शंकरम खड़ा था, 'क्या है ?' उसने पूछा।

खोजा ने अन्दर आकर बताया 'प्रधान कले ।'

'भेजो।' सम्राट् समझ गया कि कोई बहुत ही असम्भावित घटना उत्पन्न हो आई है।

राजप्रासाद का भीतरी प्रबन्ध खोजाओं के हाथ में था जिनका प्रधान साम्राज्य का एक बहुत बड़ा पदाधिकारी समझा जाता था। इसके प्रबन्ध में सम्राट् तक हस्तक्षेप नहीं करता था। राजप्रासाद के भीतर खोजाओं और दासियों के अतिरिक्त पुरुष प्रवेश नहीं कर सकता था। केवल गूढ़ मन्त्र विभाग का प्रधान बोम्मलत कले को ही सम्राट् की ओर से अनुमति प्राप्त थी कि वह राजप्रासाद के किसी भाग में किसी भी समय आ जा सकता था। वह सम्राट् से भी समय-असमय मिल सकता था। कले, कृष्णदेव राय का अत्यन्त विश्वासपात्र व्यक्ति था।

प्रधान ने कक्ष में प्रवेश करते ही मस्तक नवा कर प्रणाम किया और पर्यंक के समीप आकर खड़ा हो गया। उसकी दृष्टि नीचे को थी।

'क्या है कले ?' सम्राट् ने पूछा।

'सूचना प्राप्त हुई है कि राजक्कल तम्बिरन की हत्या का षड़यन्त्र रचा जा रहा है जिसकी पूरी भूमिका तैयार हो चुकी है।'

'मेरी हत्या का ?'

'जी, राजक्कल तम्बिरन।'

'षड़यन्त्रकारियों का कुछ पता चल सका है ?' सम्राट् के चेहरे पर गंभीरता फैल गई थी।

'जी। गजपति नरेश की पुत्री रानी अन्नपूर्णा देवी इसकी संचालिका हैं।'

'अन्नपूर्णा !'

'जी हाँ, राजक्कल तम्बिरन।'

'सहयोगियों के भी नामों की जानकारी है ?'

'जी नहीं। किन्तु आशा है दो-एक दिनों में पता कर लूँगा। वैसे सब कुछ देवी अन्नपूर्णा द्वारा ही हो रहा है। और उन्हीं ने यह बीज भी बोया है।' प्रधान ने अप्पाजी का नाम बताना उचित नहीं समझा था। सम्भव था तब सम्राट् विश्वास न करता। कले को षड़यन्त्र की पूरी जानकारी हो गई थी।

सम्राट् सोचने लगा। विदूषी स्त्री भी ऐसा दुर्बुद्धि का कार्य कर सकती है? पति की हत्या पत्नी कराये? सम्राट् के हृदय में ग्लानि उत्पन्न हो आई। उसने पुनः पुष्टि कराई 'इसकी छानबीन तुमने स्वयं करली है, कले?' सम्राट् को अभी पूर्ण रूप से विश्वास नहीं हो पाया था।

'जी, राजक्कल तम्बिरन। अन्नपूर्णा जी ने तिथि भी निश्चित कर ली है।'

सम्राट् कले को निहारने लगा……'हूँ … ?'

'मैं राजक्कल तम्बिरन के पास एक अनुरोध लेकर आया हूँ।'

'कहो।'

'कुछ दिनों के लिए राजक्कल तम्बिरन रात में सोते समय इस पर्यंक पर न सो कर नीचे 'कोष गृह' में चले जाया करें और जाते समय तकियों को वेड़े-वेड़े रखकर उन्हें चादर से ढक दें। दूसरी विनती यह थी कि यह बात राजक्कल तम्बिरन तक ही सीमित रहे। शंकरम को भी इसकी जानकारी नहीं होनी चाहिए; अन्यथा काम विगड़ जाने की आशंका है। मैं हत्यारे को पकड़कर राजक्कल तम्बिरन के सामने उपस्थित करना चाहता हूँ।'

सम्राट् सहमत हो गया। प्रधान अनुमति लेकर बाहर निकला। ब्रह्म बेला तक सम्राट् जागता रहा। उसे नींद नहीं आई। वह संसार की गतिविधियों पर विचार कर रहा था।

पर्यंक के पीछे, कक्ष के दीवार के समीप नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ वनी हुई थीं। यही 'कोष गृह' था। सम्राट् अब रात में पर्यंक

पर न सो कर कोष गृह में सोने चला जाता था। एक-एक करके कई दिन बीते। मंगल का दिन आया। अन्नपूर्णा और सालुव तिम्म की भेंट हुई। सब ठीक था। बुध का दिन आया। किसी प्रकार संध्या हुई और फिर रात। नीरवता बढ़ी और धीरे-धीरे काली रात साँय-साँय करने लगी। सम्राट् नित्य की भाँति तकियों को चादर से ढंक कर कोष गृह में सोने चला गया। बाहर दरवाजे पर शंकरम मुस्तैद अपनी स्वामी-भक्ति का परिचय दे रहा था। दूसरा वाला खोजा बरामदे में धीरे-धीरे टहल रहा था।

रात आधी से अधिक जा चुकी थी। शंकरम ने सामने से एक स्त्री को आते हुए देखा। वह आश्चर्यचकित कुछ सतर्क हुआ। समीप आने पर उसने पहिचाना—रानी अन्नपूर्णा थीं। तब तक अन्नपूर्णा द्वार के समीप आ गई—'राजक्कल तम्बिरन ···।' वह अपनी लड़खड़ाती ज़बान को संभाली हुई शीघ्रता से दरवाजे के भीतर हो गई। शंकरम देखता-समझता रह गया।

उधर अन्नपूर्णा ने कमरे में प्रवेश किया और इधर शंकरम की कोख में दूसरे खोजा ने गोमदरिस* घुसेड़कर अंतड़ियों को बाहर निकाल लिया। वह गिर पड़ा। खोजा ने उसे घसीट कर दरवाजे से अलग करना चाहा। वह झुका। उसी समय किसी ने पीछे से उसकी कोख में गोमदरिस धंसा दी। खोजा लड़खड़ाया और शंकरम के शरीर पर गिर पड़ा। दोनों खोजा एक दूसरे से चिपट कर सदैव के लिए सो गए। पीछे वाली आकृति शीघ्रता से अपने को वस्त्रों में छिपाती हुई अन्त-र्ध्यान हो गई।

अन्नपूर्णा अपने वक्ष से कटार निकाल कर दबे पाँव पर्यंक की तरफ बढ़ी और समीप पहुँचते ही उसने भरपूर वार किया किन्तु वहाँ सम्राट् के स्थान पर तकिया मिली। उसके हाथ पैर ढीले पड़ गए। भय, जो उससे कोसों दूर था, पलक गिरते उसके शरीर में प्रवेश कर गया। उसका

*गोमदरिस=एक प्रकार का क़टार जो आकार में कुछ गोल होता है।

शरीर काँपने लगा। वह लौटती हुई द्वार की ओर भागी किन्तु वहाँ बोम्मलत कले नंगी तलवार लिये खड़ा था। उसने डपट कर कहा 'वहीं खड़ी रहिए।' प्रधान दिन से ही कमरे में छुपा बैठा था।

सम्राट् इन दिनों बड़ी सतर्कता की नींद सोता था। वह आहट पाते ही उठ बैठा था तब तक कले की आवाज़ उसके कानों में पड़ी। वह नीचे से ऊपर आया। सामने काँपती हुई अन्नपूर्णा खड़ी थी। सम्राट् सिंहासन पर बैठ गया, 'शंकरम।' उसने पुकारा।

'उसकी हत्या कर दी गई......।'

'क्या ?' वह उठकर बाहर आया। दरवाज़े के समीप दोनों खोजाओं की लाशें लिपटी हुई पड़ी थीं। सम्राट् के नेत्रों में आँसू आ गये। वह लौट कर अन्दर आया।

तत्काल पूरे महल में खलबली फैल गई।

अप्पा जी को अन्नपूर्णा के पकड़े जाने की सूचना रात में मिल चुकी थी फिर भी वह निश्चिन्त पड़ा रहा। उसने तड़के सम्राट् से भेंट की और महान आश्चर्य प्रदर्शित करता हुआ घटना के विषय में सविस्तार पूछता रहा। उसकी भावभंगिमा देखने योग्य थी। वह बिल्कुल निर्दोष बना बैठा था। उसने सम्राट् के प्रति आत्मीयता दिखलाई 'अन्नपूर्णा को कठोर दण्ड मिलना चाहिए राजक्कल तम्बिरन। नीचता की हद हो गई। कभी कोई सोच नहीं सकता था। राजक्कल तम्बिरन ने क्या सोचा है ?'

उसे राजप्रासाद में न रखकर कम्भम में भेज देने का विचार किया है। वहाँ के एकाकीपन का दण्ड उसके लिए पर्याप्त होगा। आपकी क्या राय है ?' सम्राट की सहिष्णुता प्रशंसनीय थी।

'यह भी ठीक है यद्यपि ·· ।'

'उसे मैंने पत्नी के रूप में ग्रहण किया था अप्पा जी। इसका भी तो ध्यान रखना होगा।' उसने मंत्री को आगे कहने से रोक दिया।

कुटिल अप्पा जी ने सोचने की मुद्रा बनाते हुए सम्राट् की बात का

समर्थन किया।

अन्नपूर्णा कम्भम भेज दी गई।

रात में दूसरे खोजा की हत्या करने वाला स्वयं महामंत्री सालूव तिम्म था।

इक्कीस

संन्यासी रामराय के जीवन में हलचल आया। सम्राट् से मिलने के उपरान्त वह अपने जीवन मार्ग के विषय में पुनः सोचने लगा। विचारों की गूढ़ता बढ़ी। तर्क-कुतर्क आरम्भ हुये। कसौटी पर खरा उतारने का प्रयास हुआ। इच्छायें कहतीं—हम्पी में रहने पर यश, धन, वैभव, सुख सब मिल सकते हैं। अनुभव खण्डन करता—किन्तु ये इतने क्षणिक हैं कि पलक के गिरने-उठने में इनका अस्तित्व बन बिगड़ सकता है। दोनों बातें सत्य थीं। तब ?

मस्तिष्क ने तीसरी बात रक्खी—जीवन जोखिम उठाने के अभिप्राय से बनाया गया है, कायरता से मुँह छिपाने के लिये नहीं।

सो तो ठीक है परन्तु संसार का सम्मोहन क्षणभंगुर है। इसे त्यागने में ही सुख है।

पुनः उत्तर मिला—क्षणभंगुर तो शरीर भी है फिर इसे क्यों न त्याग दिया जाय ? क्या यह सामर्थ्य किसी में है ?

यह कोई दलील नहीं। शरीर नहीं त्यागा जा सकता परन्तु सुखों को, धन-सम्पति को, कुटुम्ब परिवार को त्यागा जा सकता है। यह सरल

और आत्मा को परमात्मा से मिलाने वाला है।

अन्तर के किसी कोने से पुनः आवाज़ आई—कब ? जब आत्मिक प्रेरणा के आधार पर इनका त्याग होगा तब। किसी कारणवश त्यागा हुआ संसार मनुष्य को इहलोक और परलोक दोनों से वंचित कर देता है। न वह घर का रह सकता है न घाट का।

रामराय को यह तर्क तथ्ययुक्त प्रतीत हुआ। उसने संसार को आत्मिक प्रेरणा के आधार पर नहीं त्यागा है वरन् किसी कारण के आधार पर त्यागा है जो ग़लत है। फिर ? एक नई प्रेरणा आई—जब उसमें कर्म करने की क्षमता है और उसके प्रति आकर्षण भी है तो वह पुरुषार्थी बन कर जीवन में जोखिम क्यों न उठावे ? मनुष्य कर्त्तव्य-परायण वन कर क्या नहीं कर सकता है ? जीवन में सुअवसर बार-बार थोड़े आते हैं। ईश्वर ने शक्ति, बुद्धि, रूप, गुण, प्रतिभा सभी कुछ तो उसे दे रक्खा है। सम्राट् स्वयं उस से प्रभावित है। ऐसी स्थिति में उसे जीवन को एक बार और परख कर देख लेने में क्या आपत्ति ? दाँव लगाने से क्यों चूका जाय ? कभी न कभी तो कौड़ी फँसेगी ही। उसने संन्यास मार्ग को त्यागने का निर्णय कर लिया।

इसी बीच वीणाचार्य श्रीकृष्ण भी उससे मिलने आये। उन्होंने उसे हम्पी में रुकने के लिए अपनी आन्तरिक इच्छा प्रगट की। उन्होंने कला के महत्व को विस्तारपूर्वक बतलाया और अन्त में यह कह कर कि जीवन का सच्चा सुख कला की सेवा में है, वह चलने के लिए उठ खड़े हुए। बाहर विदा लेते समय उन्होंने पुनः कहा 'मैं आशा करता हूँ कि मेरे सुझाव पर ध्यानपूर्वक विचार किया जायेगा। मुझे वड़ी प्रसन्नता होगी।'

रामराय ने हाथ जोड़े 'गोविन्द चाहेंगे तो आचार्य की वात खाली नहीं जायेगी।'

श्रीकृष्ण उसकी पीठ थपथपाते हुये चले गये।

रामराय हम्पी में रहने लगा। सुन्दर भवन, सुन्दर भोजन और

सुन्दर बसन– पहले वाला समय फिर आ गया बल्कि उससे बढ़कर आ गया था। गोलकुण्डा में वह एक साधारण पदाधिकारी था—किसी का दास। वहाँ डांट फटकार थी। जीवन, जीवन की भाँति नहीं था प्रत्युत् दाँतों के बीच जीभ सदृश्य था। लेकिन यहाँ पूर्ण स्वतन्त्रता थी और स्वयं की महत्ता सर्वमान्य थी। यहाँ प्रतिष्ठा नहीं आदर था। दोनों में बड़ा अन्तर है।

सैनिक से संन्यासी बना और अब पूर्णतः कलाकार बन गया। कंधे तक लटकते हुये घुंघराले केश, कटी हुई छोटी दाढ़ी के भीतर गौर मुख मँडल, सुन्दर नासिका, बड़े-बड़े नेत्र अच्छे से कान, सभी सौन्दर्य को बढ़ाने में समर्थ थे। रूप और गुण दोनों प्रभु ने दे रक्खा था। उसकी ख्याति बढ़ने लगी। जिसे राजा चाहे उसे उसकी प्रजा क्यों न चाहेगी ?

श्रीकृष्ण की सलाह से सम्राट् ने आदेश दिया कि वह तिरु को वीणा सिखलाया करे। आदेश मिले कई दिन हो चुके थे किन्तु अभी तक उसने श्रीगणेश नहीं किया था। नित्य जाने को सोचता परन्तु अतीत की घटना याद आते ही उसके पैर उठने से इन्कार कर देते। हृदय किसी आशंका से कांप उठता। मन में नाना प्रकार की भावनायें उठने लगतीं। वह सोचता—यदि वैसी ही घटना कहीं यहाँ घटित हो गई तो ? उसका शरीर काँप उठता। वहाँ तो किसी प्रकार जान भी बच गई थी। किन्तु यहाँ बिल्कुल गुंजाइश नहीं। उसका हृदय बैठ जाता। जाने का विचार स्थगित हो जाता। चिन्तायें बढ़ जातीं।

अनायास एक दिन रामराय ने अपने को धिक्कारा, भला-बुरा कहा। हेय बतलाया। उसके भीतर दृढ़ता आई—यदि वह स्वयं उरूसी के प्रति आकर्षित न हुआ होता तो क्या उरूसी उसे अपने रूप के सम्मोहन में जकड़ सकती थी ? कदापि नहीं जकड़ सकती थी। उसके विचारों को शक्ति मिली किन्तु उसी समय किसी ने कान में जैसे धीरे से कह दिया —गुलाब को देखकर सुगंध के लिये किसकी इच्छा जागृत नहीं होती ?

नहीं—उसने सिर हिलाकर विरोध किया। वह मनुष्य क्या जिसे स्वयं पर नियन्त्रण न हो। एक बार वह ठोकर खा चुका है। अब उसे पुनः ठोकर नहीं लगेगी। वह उठा। कपड़े बदले और राजप्रासाद को चल पड़ा। उसकी आत्मा उसे बल दे रही थी।

बाईस

गोपा का रंग साँवला था पर सूरत मन मोहनी थी। जिसने देखा देखता ही रह गया। शरीर का एक एक अंग सुडौल और किसी कवि की कल्पना के समान था। जब वह हँसती तो मोती सदृश्य उस के दाँत चमक कर मोती बिखेर देते। उसकी वाणी में अमृत घुली मिठास थी। पुरुष अपने को खो बैठता और और स्त्रियाँ उसकी हाँ मे हाँ मिलाने के लिये विवश हो जातीं। वह सदैव मुसकराती रहती। उसके चेहरे पर उदासी आज तक नहीं देखी गई। पर छोटे-बड़े, बूढ़े-जवान और विवाहित अविवाहित सब से सब तरह की बातें करती परन्तु विशेषता यह थी कि उससे कोई सीमा का उल्लंघन नहीं कर पाता था। लोग चाह कर भी अपनी इच्छायें व्यक्त करने में असमर्थ रहते थे। वह समझती हुई भी नासमझ-सी अपने जीवन को हँस कर काट देना चाहती थी। उसकी आयु लगभग इक्कीस या बाईस वर्ष की होगी।

गोपा केकिकोलर* जाति की थी और छठे कोट में रहती थी। माता-

*केकिकोलर=इनकी गणना शूद्रों में होती थी किन्तु आज कलकी

पिता के अतिरिक्त एक छोटा भाई था जिस की उम्र नौ-दस की थी। प्रथा के अनुसार गोपा का विवाह छुटपन में हो गया था। पन्द्रह वर्ष की उम्र पर उसका गौना हुआ और वह अपने पी के घर चली गई। वर्ष-दो वर्ष वहाँ रहकर पुनः अपने घर आई किन्तु उस के खोटे भाग्य ने उसे सदैव के लिये यहीं का बना दिया। वह दुबारा अपने पति से न मिल सकी। छोटी-सी दुनियाँ की छोटी छोटी कल्पनायें ज्यों की त्यों रह गईं। उसने सहते हुये सब पर पर्दा डाल दिया। उसने अपनी समझ के अनुसार यही उचित समझा।

उसका पति कायस कर्मचारियों से होने वाले झगड़े में घायल हो कर मर गया था। घटना बहुत छोटी थी। उसके पीहर में किसी लड़के का विवाह था। विवाह के उपरान्त 'विवाह कर' जो प्रत्येक को देना अनिवार्य होता था—वसूल करने के लिये कायस आये। लड़के के पिता ने अपनी आर्थिक स्थिति बतलाते हुये कुछ अवकास की याचना की। कर्म-चारियों ने इन्कार किया। लड़के के पिता ने तब विवशता प्रगट की। बात बढ़ी। उन लोगों ने उसे बन्दी बनाकर ले चलना चाहा। पुत्र को यह कहाँ बर्दाश्त थी ? इसी बीच कहीं गोपा का पति भी इधर आ निकला। जलती अग्नि में घी पड़ गया। गोपा का पति दबंग हृष्ट पुष्ट शरीर का था। फिर क्या था दोनों दलों में भिड़न्त हो गई। गोपा के पति का सिर फटा। वह मूर्छित हो कर गिरा किन्तु फिर न उठ सका। उसका प्राण पखेरू निकल गया जिसकी कोई आशा नहीं थी।

तभी से गोपा अपने पिता-माता के साथ रहकर उनकी सेवा शुश्रूषा करती हुई जीवन के दिन व्यतीत करने लगी थी। यद्यपि कुछ समय बाद उस की माँ ने सब तरह से समझा बुझाकर उसे पुनः विवाह करने के लिये बार-बार कहा था परन्तु गोपा सदैव इन्कार करती रही। कभी-कभी वह अपने पिता के पास बैठ कर धीरे से कह देती 'जितना लिखा

भाँति हेय की दृष्टि से नहीं देखे जाते थे। इस जाति का धन्धा था कपड़ा बुनना।

है उसे भोगना जरूर होगा काका फिर इस पर दुख करने से क्या लाभ ? बिना भगवान की इच्छा के मैं दूसरा विवाह भी नहीं कर सकती।'

पिता की आँखें डबडबा आतीं। वह कोई उत्तर नहीं देता। वह स्वयं भी तो कितनी बार समझा कर हार चुका था।

समय के साथ साथ स्मृतियाँ भी धूमिल पड़ गई। फिर वही गाना-बजाना और हँसना-कूदना जैसा संसार का नियम है—होने लगा पर गोपा की छोटी बुद्धि इस बात को बराबर ध्यान में बनाये रखती कि उसके प्रत्येक कार्य में स्वच्छन्दता की मात्रा उतनी ही हो जितने में सीमा का उल्लंघन न हो सके और यही कारण था कि वह भलों की दृष्टि में भली और बुरों की दृष्टि में पहेली बनकर उन्हें दिन-रात भरमाया करती थी। सौन्दर्य में लिपटा हुआ बेसुध यौवन नित हँसता हुआ विकसित होता चला जा रहा था जिसके लिये गोपा विवश थी। उसके रूप में एक अनोखा आकर्षण था।

सूरज पहाड़ियों के पीछे आ गया था; परन्तु अभी संध्या होने में देर थी। वातावरण सुहावना बन गया था। पक्षियों का समूह कलरव करता हुआ अपने नीड़ों को लौटने लगा था। पेड़ों से टकराती हुई मन्द हवा पत्तियों-डालियों से मिलती लिपटती सब को गुदगुदाने लगी थी। प्रकृति रसमय हो उठी थी। गोपा ने अंगड़ाई ली और खड़े होकर फैले हुये सूतों को लपेटने लगी 'काका, अब बन्द करो। आज बड़ी मेहनत हुई।'

अधेड़ उम्र वाला गोपा का पिता धीरे से खड़ा हुआ। उस ने अनुभव किया कि गोपा अधिक थक गई है। वह भी सूतों को लपेटने लगा।

सूतों और अन्य सामानों को यथा स्थान घर में रखने के उपरान्त गोपा ने पहनने वाले कपड़े बगल में दबाये और नहाने के लिये तालाब को चल पड़ी। वह संध्या स्नान की अभ्यस्त थी और स्नान भी उस तालाब में किया करती थी जो दूर कुछ हट कर एकान्त में बना हुआ था। इस तालाब में शायद ही जब तब कोई नहाने के विचार से आ जाता हो तो आ जाता हो अन्यथा सघन वृक्षों और झाड़ियों के बीच

यह मौन पड़ा हुआ प्रकृति की रमणीकता को अंकों में समेटे, पशु-पक्षियों के आमोद-प्रमोद का स्थल बना रहता था। तालाब के चारों ओर पत्थर की सीढ़ियाँ नीचे जल के अन्दर तक बनी हुई थीं। जैसे सदैव गोपा कुछ क्षणों तक ऊपर बैठ कर तब नहाने को नीचे उतरती थी, उसी प्रकार आज भी जब वह तालाब के ऊपर आकर बैठी ही थी कि सामने, उस तरफ एक पेड़ के सहारे बैठे हुये व्यक्ति को देख कर कुछ चौंकी। वस्त्रों और आभूषणों से वह व्यक्ति किसी बड़े परिवार का मालूम पड़ रहा था। आयु लगभग तीस-बत्तीस की दिख रही थी। उसे भी अपनी ओर ताकता देख कर वह उठी और शीघ्रता से नहा कर कपड़े बदले और लौट पड़ी। ऊपर आने पर उसने पुनः उधर देखा किन्तु इस समय वह दूसरी तरफ मुँह करके बैठ गया था। गोपा आगन्तुक के विषय में अनुमान लगाती-लगाती घर पहुँच गई।

हफ्तों बीत गये फिर वह आगन्तुक गोपा को दिखलाई नहीं पड़ा। गोपा उसी प्रकार नियमित रूप से नहाने आती-जाती रही। अकस्मात एक दिन जब वह नहाकर सीढ़ियों से चढ़ती हुई ऊपर पहुँची ही थी कि सामने उसी व्यक्ति को खड़ा देख कर अचम्भे में पड़ गई। आगन्तुक बिना कुछ बोले उधर को मुड़ गया जिधर उस दिन वह बैठा हुआ था। हाँ, उसने दो-एक बार गोपा को छिपी दृष्टि से देखने का प्रयास अवश्य किया था। गोपा ने चलते हुये सोचा— आगन्तुक घूमने-फिरने के विचार से संध्या समय इधर आ निकलता है। अज्ञात रूप से अन्तर में उपजी हुई शंका समाप्त हो गई थी।

अब अधिकतर पेड़ के सहारे बैठा हुआ वह व्यक्ति गोपा को दिखलाई पड़ जाता था। जब तब उसके गुनगुनाने की सुरीली ध्वनि भी उसके कानों में पड़ती थी और कभी-कभी उसे दूर से ऐसा भास होता था कि वह गुनगुनाकर कुछ लिखता भी जाता है। उसकी आवाज़ में टीस थी। यद्यपि आगन्तुक के आगमन से गोपा को किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचती थी, फिर भी नहाने आने में उसे अब संकोच-सा होने

लगा था। उसकी पहले वाली स्वतंत्रता जाती रही थी। उसने एक दिन सोचा—अब किसी दूसरे तालाब पर स्नान करना उचित होगा—और दूसरे ही दिन उसने उस तालाब पर जाना बन्द कर दिया।

दो-चार दिनों तक वह दूसरे तालाब पर नहाने जाती रही किन्तु उसके बाद उसने वहाँ भी जाना बन्द कर दिया, वहाँ उसकी तबियत नहीं भरती थी और जिस काम में तबीयत न भरे उसे करने से लाभ ? उसने संध्या के स्नान का नियम ही तोड़ दिया, परन्तु अभ्यास जो एक प्रकार से स्वभाव का रूप धारण कर लेता है—कहाँ मानने को था। अन्त में एक दिन यह सोच कर कि सम्भवत: उस आगन्तुक का आना बन्द हो गया हो, वह तालाब पर नहाने चल पड़ी किन्तु तालाब पर पहुँचने पर उसका अनुमान गलत निकला। आगन्तुक इधर ही टहलता हुआ दिखलाई पड़ गया। अब उल्टे पाँव लौटी। तब तक पीछे से आवाज़ आई 'सुनो देवी।'

गोपा को रुकना पड़ा।

आगन्तुक समीप आया 'मैं समझता हूँ मेरे नित्य के आगमन ने तुम्हें कष्ट दिया है ? सम्भवत: तुम इसी विचार से अब स्नान के लिये नहीं आती हो ?' आगन्तुक के कहने में नम्रता थी।

'नहीं प्रभु', गोपा ने भी उसी नम्रता से उत्तर दिया 'हमें कष्ट नहीं और यदि कष्ट भी हो तो प्रभु के लिये सहना हमारा कर्तव्य है। नहाने के लिये और भी तो तालाब हैं परन्तु जिस विचार से प्रभु का यहाँ आना होता है वह प्राकृतिक छटा दूसरे तालाबों पर नहीं मिल सकती है।' गोपा की अमृत धुली वाणी ने आगन्तुक को कहीं का न रक्खा।

'पर दूसरों के सुखों को छीन कर अपने को सुखी बनाना किसी की कमज़ोरी का अनुचित लाभ उठाना हुआ न देवी। जहाँ तुम मेरे लिये अपने सुखों का त्याग कर सकती हो वहाँ मुझे भी तो तुम्हारे लिये कुछ करना चाहिये। तुम कल से आ सकती हो। मैं अब नहीं आऊँगा।'

गोपा के हृदय में आगन्तुक की शालीनता घर कर गई। वह सहमती हुई बोली 'यदि प्रभु से हम आने के लिये विनती करें तब भी उसे स्वीकार नहीं किया जायेगा ? हमें प्रभु के लिये अपने सुख को छोड़ने में प्रसन्नता है।'

'नहीं देवी। मेरी आत्मा इसे स्वीकार नहीं करेगी। मैंने कल से न आने का ही निश्चय किया है। अच्छा, अब तुम जाओ।'

गोपा के मुड़ने के पूर्व आगन्तुक मुड़ गया।

तेईस

रामराय नित्य राजकुमारी तिरु को वीणा सिखलाने जाने लगा था। राजकुमारी को जिस प्रकार सीखना चाहिये था वैसे सीख रही थी। रामराय की भय मिश्रित शंका जाती रही थी। जानी भी चाहिये थी। उसने सोचा ही अनुचित था। सब एक जैसी नहीं होती हैं। हर एक के सोचने का अलग-अलग दृष्टिकोण होता है। भला-बुरा सब सोचते हैं पर यह बात दूसरी है कि भावुकता में बहकर वास्तविकता पर विचार नहीं किया जाय। रामराय कई दिनों तक अपने को धिक्कारता रहा। उसे दुख था कि उसने तिरु के विषय में ऐसा सोचा ? दूसरों के प्रति किसी प्रकार की धारणा बनाने के पहले अपनी भावनाओं को बुद्धि की कसौटी पर कस लेना आवश्यक है।

राजकुमारी सीखती रही। मास, दो मास और चार मास बीते। धीरे-धीरे नयेपन का भेद मिटकर निस्संकोचिता बढ़ी। जब तब गूढ़

विषयों पर चर्चा भी होने लगी। कभी साहित्यक वार्ता भी होती और घण्टों तर्क वितर्क हुआ करते। कवियों और लेखकों के विषय में अपने अपने विचार व्यक्त किये जाते। धार्मिक प्रश्नों पर भी विचार विमर्श होता। विभिन्न दार्शनिकों और विचारकों की तुलना होती। उनके द्वारा प्रतिपादित मतों की अच्छाई-बुराई बतलाई जाती। ईश्वर और उससे सम्बन्धित ब्रह्मांड की वास्तविकता तथा अवास्तविकता पर दोनों अपने-अपने मत रखते। रामराय की सारी दलीलों का निचोड़ होता—संसार में जो कुछ हो रहा है गोविन्द की कृपा से हो रहा है। वह राई को पर्वत और पर्वत को राई करने वाला है। बिना उसकी इच्छा के कुछ भी नहीं होता। आँखों की पलकें भी उसी के आदेशानुसार गिरती-उठती हैं।

तिरु सहमत होते हुये भी जानबूझ कर इसका खंडन करती। वह विशभदेव वाले सिद्धान्त के बल पर रामराय को निरुत्तर कर देती। रामराय को विवश होकर हार स्वीकार करनी पड़ती किन्तु चलते समय वह पुनः यही कहता हुआ जाता, 'बात राजकुमारी जी ठीक कहती हैं, किन्तु होता है सब उसी की इच्छानुसार।' और वह मुसकराता हुआ चल देता।

राजकुमारी के ओठों पर मुसकान की रेखा फैल जाती।

स्वभाव और समय दोनों की परिवर्तनशीलता अजेय है। आज कुछ है तो कल कुछ। व्यभिचारी संन्यासी बन सकता है और संन्यासी व्यभिचारी। धनवान निर्धन और निर्धन धनवान। भले को बुरे बनते देर नहीं लगती और बुरे को भला बनते। आज जिसे हृदय में बैठा कर रक्खा है कल उसे ही फूटी आँखों देखने की इच्छा नहीं होती। प्रकृति में परिवर्तन की यह प्रणाली बड़ी विचित्र है।

इधर कुछ दिनों से जब तब तिरु रामराय के विषय में कुछ सोचने लगी थी। यद्यपि सोचने का यह तारतम्य क्षण दो क्षण का ही होता पर होता अवश्य था। कभी वह सोचती—पूरे भारतवर्ष के विषय में

कहना तो अनुचित होगा परन्तु जहाँ तक विजयनगर साम्राज्य का प्रश्न है यह निश्चित है कि रामराय से उत्तम वीणा बजाने वाला दूसरा नहीं। उनकी वादन कला में जो आकर्षण है वह दैवी है। उसमें किसी के हृदय को वशीभूत करने की क्षमता है। यह क्षमता सबको प्राप्त नहीं है। कभी वह सोचती—कितना सौम्य है उनके मुखमंडल पर ? मालूम होता है जैसे उनके अन्दर किसी प्रकार की कोई कालिमा है ही नहीं। सदैव हंसते रहना मानो उनका स्वभाव है। गोविन्द ने रूप-गुण के सहित उनमें एक कोई ऐसी भी वस्तु दे रक्खी है जो मनमोहनी और अवर्णीय है। यदि कहीं यह भी राजपरिवार के होते तो वह राजकुमारी कितनी भाग्यशालिनी होती जो इनकी पत्नी बनती। उसका तो जीवन धन्य हो जाता। ऐसे पुरुष तो उँगलियों पर गिनने वाले होते हैं।

इस तरह ज्ञात-अज्ञात में राजकुमारी तिरु के हृदय में रामराय का स्थान बनने लगा था। कुछ समय और बीता। सोचने की क्रिया में वृद्धि हुई। अब वह अधिक सोचने-समझने लगी थी। समय और बीता। मन का चोर बिल्कुल सामने आ गया। विशभदेव और रामराय में तुलना होने लगी और जब तब तुलना हुई रामराय ही श्रेष्ठ बैठा। वह पुनः तुलना करती। विशभदेव को श्रेष्ठ सिद्ध करने के अभिप्राय से उसे सर्व सम्पन्न कह कर अपने प्रेम का प्रमाण देती किन्तु फिर भी उसका हृदय उसे स्वीकार नहीं करता। तब वह बड़े चक्कर में पड़ जाती। मस्तिष्क में एक बंवडर उठ खड़ा होता—'तो क्या उसने विशभदेव को धोखा दिया है ?' वह स्वयं से प्रश्न करती परन्तु तत्काल उत्तर भी मिलता—'नहीं। उसने विशभदेव को नहीं वरन् स्वयं को धोखा दिया है। उसने जिस रूप में अपने को विशभदेव के सामने व्यक्त किया है वह किसी अभाव की पूर्तिवश किया है, हृदय की प्रेरणावश नहीं।'

'झूठ। यदि हृदय की प्रेरणा नहीं थी तो क्या वह विशभदेव के जीवन के साथ खिलवाड़ करना चाहती थी या अपनी इन्द्रियों की प्यास बुझाने के विचार में थी ?'

'दोनों में कोई नहीं।' उत्तर मिला। 'वह नासमझी थी जो विशभ-देव के रूप के सम्मोहन के फलस्वरूप उत्पन्न हो गई थीं।'

'ठीक। माना वह रूप का सम्मोहन था लेकिन अब रामराय के संग क्या हो रहा है? क्या इसे भी रूप का सम्मोहन नहीं कहा जा सकता?'

'बिल्कुल नहीं। इसमें हृदय की प्रेरणा है जो बुद्धि के द्वारा पुष्टि की गई है।'

पुनः प्रश्न हुआ 'यदि बुद्धि द्वारा पुष्टि हुई है तो क्या रामराय का प्रेम प्राप्त होने पर विवाह सम्बन्ध संभव हो सकेगा? पिता की आज्ञा मिल सकेगी और यदि नहीं मिली तो क्या रामराय से प्रेम करके वह प्रेम के आदर्श को उज्ज्वल रख सकेगी? उसमें इतना साहस है?'

तिरु चिन्ता में पड़ गई। इसका उत्तर उसके पास नहीं था। बात सही थी। किसी भी दशा में रामराय से वैवाहिक सम्बन्ध सम्भव नहीं था। उसे पीड़ा पहुँची किन्तु उसने मन को दबाकर चुप बैठ रहना ही उचित समझा।

दिन बीतने लगे। राजकुमारी ने रामराय के विषय में बिल्कुल सोचना बन्द कर दिया परन्तु हठपूर्वक दबाई हुई भावना कब तक दबी रह सकती थी और फिर हृदय की भावना, यह तो कभी दबती ही नहीं। रामराय पुनः विचारों में मंडराने लगा। रोकने पर भी तिरु अपने को रोकने में असमर्थ पाने लगी। उसे ऐसा भास होने लगा कि वह रामराय से चाहे जितना दूर भागना चाहे भागना सम्भव नहीं। रामराय अब अलग नहीं हो सकता। बड़ी विचित्र स्थिति हो गई उसकी। राम-राय को अपनाया नहीं जा सकता था और छोड़ने के प्रश्न पर हृदय तैयार नहीं था। फिर? किन्तु धोखा देने से तो छोड़ देना श्रेयस्कर है। अपनी ज़िन्दगी के साथ दूसरे की भी ज़िन्दगी क्यों बरबाद की जाय? एक ग़लती तो उसने विशभदेव के साथ की है अब दूसरी गलती नहीं करेगी। उसने अपने पर नियंत्रण रखने का संकल्प किया।

हफ्तों बाद एक दिन बातों के प्रसंग में तिरु ने पूछा 'प्रेम की महिमा हमारे शास्त्रों में जिस रूप से वर्णित है वैसा रूप वास्तविक जगत् में भी कभी देखने को मिला है ? मैं तो नहीं समझती कि कभी किसी को मिला होगा ?'

'मिला है राजकुमारी जी पर उनकी संख्या बड़ी न्यून है। प्रेम का मार्ग ईश्वरीय है। सब को प्राप्त नहीं हुआ करता। यह सौभाग्य वालों की वस्तु है। इसमें सच्चे आनन्द की अनुभूति है न इसलिये।' रामराय ने प्रश्न की गूढ़ता के अनुसार उत्तर भी गम्भीरतापूर्वक दिया था। उसे तिरु की आन्तरिक भावनाओं का क्या अनुमान ? इस प्रकार की चर्चा तो आये दिन होती ही रहती थी।

'स्वार्थ में सच्चे आनन्द की अनुभूति। मैं समझी नहीं आचार्य। क्या प्रेम की उत्पत्ति का आधार आप स्वार्थ नही मानते ?'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'प्रेम आत्मा की प्रेरणा है राजकुमारी जी। आत्मा—छल, कपट, ईर्षा और द्वेष से भिन्न तथा सत्-चित-आनन्द से अभिन्न है और जो सत्-चित-आनन्द है वह स्वार्थी नहीं हो सकता और जो स्वयं स्वार्थी नहीं है उससे किसी स्वार्थ पूर्ण प्रेरणा की उत्पत्ति की कल्पना की जाय—नितान्त असम्भव है।'

'केवल मुँह से उच्चारण कर देने पर असम्भव की पुष्टि तो नहीं हो सकती न। इसके ·····।'

'इसके लिये' रामराय ने बीच में टोका 'प्रमाण हैं। कृष्ण के प्रति राधा का प्रेम किसी स्वार्थ का परिचायक है ? क्या उन्हें कृष्ण से किसी वस्तु की कामना थी ? मैं यहाँ भगवान कृष्ण की नहीं वरन् देहधारी कृष्ण की बात कर रहा हूँ। ऐसी ही प्रेरणा पहाड़ों और जंगलों में तप करने वाले तपस्वियों में होती है, अपने पति के शवों के साथ जल मरने वाली सतियों में होती है और यदि उनसे भी अधिक आप प्रत्यक्ष प्रमाण देखना

चाहती हैं तो प्रति वर्ष रथ यात्रा के समय मरने वाले उन व्यक्तियों को देखिए जो भगवान के रथ के पहिए के नीचे दबने में कितने आनन्द का अनुभव करते हैं ?'

'परन्तु इन में भी तो किसी वस्तु की चाह की भावना निहित है और जहाँ चाहने की प्रवृत्ति है वहाँ स्वार्थ का संयोग अनिवार्य है। स्वार्थ बड़ा हो अथवा छोटा, अपने लिये हो या पराये के लिये उसे स्वार्थ ही कहा जायेगा।'

रामराय मुसकराया 'राजकुमारी जी, जहाँ अपने को मिटा कर किसी वस्तु की कामना की जाय उसे भी आप स्वार्थ कह देंगी ? खोकर हीं वहाँ कुछ पाने की बात की जाती है। उस में हृदय की प्रेरणा है, स्वार्थ की भावना नहीं।'

राजकुमारी निरुत्तर हो गई। रामराय ने आज्ञा माँगी 'अच्छा अब चलूँगा।' वह खड़ा हुआ 'आज तो पलड़ा मेरा ही भारी रहा।' वह हँसने लगा।

राजकुमारी ने हँसते हुए प्रणाम किया।

चौबीस

आगन्तुक ने तालाव पर जाना बन्द कर दिया था। गोपा कई दिनों बाद पुनः नियमानुसार स्नान के लिये जाने लगी थी। आगन्तुक की स्मृति धूमिल पड़ गई थी। पर अकस्मात एक दिन आगन्तुक को पुनः पेड़ के नीचे बैठा देखकर वह आश्चर्य में पड़ गई। न आने को कहकर

दुबारा आने का कारण संशयात्मक था। उसे बिल्कुल आशा नहीं थी। वह विचार में पड़ गई। आगन्तुक के प्रति किसी ओछेपन का विचार करना भी स्वयं ओछेपन का परिचय देना था फिर भी वह स्त्री सुलभ सतर्कता से क्यों चूकने लगी थी ? उसने दूसरे दिन और देखकर तीसरे दिन से न आने का निश्चय किया। दूसरे दिन वह आई पर आगन्तुक नहीं दिखलाई पड़ा। तीसरे और चौथे दिन भी वह नहीं आया। सप्ताह, दो सप्ताह बीत गये अब आगन्तुक नहीं आता था। मन ने संतोष की साँस ली किन्तु अचानक एक दिन वह फिर दिखलाई पड़ गया। गोपा देखी-अनदेखी जैसी नहा-धोकर चली गई। आगन्तुक के विषय में अब चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं थी। प्राकृतिक आनन्द के अभिप्राय से ही जब तब उसका आना होता है—ऐसा उसने सोचा।

दूसरे दिन जब गोपा तालाब पर आई तो आगन्तुक उसे बाहर ही मिल गया। वह बोला 'मैं देवी से कल भी कहना चाहता था पर संकोचवश न कह सका। कहने का साहस नहीं हो रहा था। आज बड़ी कठिनाई से यहाँ खड़ा हो सका हूँ। मैंने सर्वप्रथम भेंट में देवी को आश्वासन दिया था कि मेरे द्वारा देवी के सुख का अपहरण न होगा पर यहाँ की रमणीकता एवं कण-कण में व्याप्त सम्मोहन ने मेरी दुर्बलता से लाभ उठाया है और बिना किसी तरह का विचार किये मुझे पुनः यहाँ आने के लिये विवश कर दिया है। मैं बार-बार रोकने का प्रयत्न करता हूँ पर बार-बार कोई अज्ञात शक्ति मुझे घसीटती हुई यहाँ ले आती है। मैं बड़ी द्विधा में पड़ गया हूँ।'

गोपा के मन ने कहा—प्रभुता में मद के स्थान पर इतनी सज्जनता ! विचित्र है रचने वाले की लीला। वह तनिक मुसकरा कर बोली 'हम ने तो प्रभु से उस दिन भी आग्रह किया था कि प्रभु के आगमन से हमें कोई कष्ट न होगा। हमारा काम दूसरे तालाबों से भी चल सकता है। हमें इसमें प्रसन्नता थी पर प्रभु ने स्वयं इसे स्वीकार नहीं किया।'

'स्वीकार अब भी नहीं है। बस यह चाहता हूँ कि यदि देवी भी आने को तैयार हो जायं तब तो ठीक है; अन्यथा मेरा आना-न-आना बराबर रहेगा। यहाँ आने से तबीयत मानेगी नहीं और लौटते समय जो मन को क्लेष पहुँचेगा उससे छुटकारा पाने का कोई साधन नहीं। जैसी उधर विवशता है वैसी इधर भी बनी रहेगी।' वह रुका 'क्या मेरे यहाँ आने से देवी को किसी प्रकार की बाधा पहुँचती है ?'

'नहीं, नहीं; बाधा क्यों पहुँचेगी ? ऐसी कोई बात नहीं है प्रभु ! हमने तो केवल आपके विचार से न आने को सोचा था। सम्भव है मेरे आने से प्रभु की स्वच्छन्दता में उलझन पड़ती हो पर हमारे ही आने पर यदि प्रभु का आना निर्भर है तो हम अवश्य आयेंगे।' आगन्तुक के विचारों की महानता ने गोपा को ऐसा कहने के लिये विवश कर दिया था।

'यही मैं चाहता था।' वह धीरे से पैर बढ़ाता हुआ तालाब के ऊपर चढ़ गया।

यद्यपि प्रारम्भ में गोपा दो चार दिन नहीं आई परन्तु धीरे-धीरे फिर पहले जैसा नियम बनता गया और वह नित्य समयानुसार आने लगी। आगन्तुक उसे अधिकतर पेड़ के नीचे बैठा हुआ अथवा इधर-उधर टहलता दिखलाई पड़ जाता था परन्तु न तो उसको उससे बोलने की आवश्यकता थी और न उससे उसको।

× × ×

एक दिन गोपा अपने काका के साथ कपड़े के तैयार थानों को बेचने हम्पी बाज़ार गई हुई थी। सदैव की भाँति उसके काका ने अपनी निश्चित दुकान में जाकर कपड़े दिये। दुकानदार ने थानों को उलट-पुलट कर देखा और उन्हें रखने का आदेश देता हुआ पैसे निकालने लगा। इसी बीच एक रथ दुकान के सामने आकर रुका। रथ के स्वामी को देखते ही दुकानदार खड़ा हो गया, 'पधारिये भूषण जी पधारिये। बहुत दिनों से दर्शन दुर्लभ थे।' उसने हाथ बढ़ा कर सम्राट् के अष्ट

दिग्गजों के एक दिग्गज रामराज भूषण को आदर सहित गद्दी पर बिठलाया। 'क्या आजकल बसन्तोत्सव की तैयारी में अधिक व्यस्त रहना पड़ रहा है ?'

'हाँ। इस वर्ष कुछ विशेष रूप से तैयारी की जा रही है। स्वयं राजक्कल तम्बिरन द्वारा लिखित 'जाम्ववती कल्याणम्' नामक नाटक प्रदर्शन होगा।' उसने गर्दन मोड़ी तो पीछे की ओर गोपा बैठी हुई दिखलाई पड़ गई। उसने तत्क्षण दृष्टि हटा ली। गोपा उसे बहुत पहले से निहार रही थी।

दुकानदार ने आश्चर्य प्रगट किया 'राजक्कल तम्बिरन का लिखा हुआ ? धन्य है। संसार में ऐसा सम्राट् और कहाँ होगा ?' तब तक दास ने पान लाकर दिये, 'लीजिये।' दुकानदार बोला।

रामराज भूषण ने पान खाये तदुपरान्त कुछ थानों को देखकर कपड़े मोल लिये और चलता बना। दुकानदार ने बैठे हुये अपने एक मित्र ग्राहक से बतलाया 'महाकवि पेदण्ण के बाद अपने अष्ट दिग्गजों में यदि राजक्कल तम्बिरन किसी को चाहते हैं तो इसी नवयुवक को। वाणी में जादू है जादू। चाहे जितना सुनो तबीयत भरती ही नहीं।' दुकानदार ने गोपा के काका की तरफ देखा 'अरे मैं तो भूल......।' उसने झटपट मुद्राओं को गिन कर उसके हवाले किया।

लौटते समय रास्ते भर गोपा किन्हीं नवीन विचारों में अपने को उलझाये रही।

दूसरे दिन भूषण कवि का तालाब पर आगमन नहीं हुआ। यद्यपि गोपा ने उसकी प्रतीक्षा देर तक की थी। तीसरे दिन भेंट हो गई। पेड़ के सहारे लेटा हुआ वह कुछ लिख रहा था। सीढ़ियों पर कपड़े रखकर गोपा उसके पास पहुँची। आहट मिलने पर उसने सिर घुमाया। सामने गोपा थी। वह विस्मित नेत्रों से देखता हुआ उठ कर बैठ गया। गोपा ने प्रणाम किया।

'क्या है देवी ?' कवि ने पूछा।

गोपा बैठ गई, 'प्रभु से एक विनती करने आई हूँ।'

'कहो।'

'मैं राजक्कल तम्बिरन को समीप से देखना चाहती थी प्रभु। जीवन की यही एक लालसा है।'

गोपा की विनती में छिपे रहस्य से अनभिज्ञ कवि ने मुसकराते हुये उत्तर दिया 'तुम्हारी लालसा पूरी हो जायेगी। और कुछ?'

'नहीं प्रभु। यह बहुत है। इसे ही संजोते-संजोते जीवन समाप्त हो जायेगा।' वह रुकी 'तो कब ···· ।'

'बसन्तोत्सव के उपरान्त किसी भी दिन भेंट करवा दूँगा। इधर राजक्कल तम्बिरन अधिक व्यस्त हैं।'

गोपा ने मस्तक नवा कर प्रणाम किया और उठने को हुई।

'तुम्हारा नाम?'

'गोपा। केकिकोलर हूँ प्रभु।'

रामराज भूषण ने सिर हिलाकर जाने की अनुमति दे दी।

पच्चीस

वृक्षों की पुरानी पत्तियाँ गिर चुकी थीं और उनमें नई कोंपलों ने जन्म लेकर अपने को विकसित कर लिया था। शोभा बढ़ गई थी। चमक दमक फैल गई थी। प्रकृति नवेली का योवन निखर आया था। ऋतु में मादकता आ गई थी। आनन्द कण-कण में व्याप्त हो गया था। जिधर दृष्टि जाती जड़ चेतन सभी प्रफुल्लित दृष्टिगोचर होते। सुक-

सारिकाओं का कलरव बढ़ गया था। मोरों में अधिक स्वच्छन्दता आगई थी। मोरनियों के समीप पंखों को फैला कर नाचने की प्रवृत्ति जागृत हो उठी थी। हम्पी के कोने-कोने में से बसन्ती लहलहाती हुई जीवन की सार्थकता का महत्व बतलाने लगी थी। वसन्तोत्सव समीप आगया था।

सम्राट् की ओर से साम्राज्य के समस्त कवियों, लेखकों एवं विद्वानों को निमन्त्रण भेजा जा चुका था। इधर 'जाम्बवती कल्याणम्' का पूर्वाभिनय अभ्यास भी आरम्भ हो गया था। मुख्य पात्रों में कृष्ण का अभिनय प्रसिद्ध अभिनेता नगय्या कर रहा था और जाम्बवती की भूमिका में नादुव तिम्मया की पुत्री थी। नृत्य का निर्देशन नीलाम्बई कर रही थी और संगीत का रामराय। सम्राट् स्वयं भी जब तब पूर्वाभिनय देखने चला आया करता था। नाटक का प्रारम्भ एक विशेष प्रकार के नृत्य के प्रस्तावना के उपरान्त होने वाला था अतः इस नृत्य की तैयारी राजकुमारी तिरुमलाम्बा कर रही थी। वाद्य पर संगत कर रहा था रामराय। तैयारी ज़ोरों में चल रही थी।

नगर की सजावट बढ़ गई थी। उल्लास बिखर गया था और ज्यों-ज्यों उत्सव समीप आता गया उसमें उसी प्रकार वृद्धि भी होती गई। साम्राज्य के विभिन्न भागों से कवियों, लेखकों का समुदाय उमड़ता चला आ रहा था। प्रत्येक को अपनी प्रतिभा का परिचय देकर अधिक ख्याति तथा राजक्कल तम्बिरन की दृष्टि में विशेष स्थान बनाने का इस से सुन्दर अवसर और कब मिल सकता था? उनकी महत्वाकांक्षा तो उनकी अधिकतम श्रेष्ठता में ही निहित थी न। उन्हें जगत् के वैभव से क्या दिलचस्पी? उनका समूह बढ़ता गया जो स्वाभाविक था। सम्राट् 'सकलकला भोजराज' की उपाधि से विभूषित हो कर इन्हीं पद-चिन्हों पर जो चलने लगा था। वह सर्वगुण सम्पन्न था। वह ईश्वरीय अंश लेकर उत्पन्न हुआ था।

विजयनगर के कुल देवता थे भगवान विरुपाक्ष। विरुपाक्ष का पुराना और विशाल मन्दिर हम्पी बाजार में था। इसी देवालय में बसन्त का

उत्सव मनाया जाता था। स्वयंभू जहाँ सृष्टि के संहारक हैं वहीं मंगल-दायक भी तो हैं। मंगल की वृद्धि चाहने वालों को इन्हीं की शरण में जाने से लाभ होता है। मन्दिर की रंगाई-पुताई तथा साज सज्जा जितनी हो सकती थी, की गई। झंडे-पताके लहराये गये। नाना प्रकार के नवीन अलंकरणों से मन्दिर में नवीन शोभा उत्पन्न की गई। हम्पी बाज़ार खूब सजाया गया। स्थान-स्थान पर तोरण-द्वारों की छटा सुन्दरता में चार चाँद लगाने लगी थी। इस प्रकार यदि विजयनगर देवलोक सदृश्य दिख रहा था तो विरुपाक्ष के मन्दिर के आस पास का भू-भाग इन्द्रलोक में परिणित हो उठा था। यहाँ कि छवि अद्वितीय थी।

दिन आ गया। उत्सव के एक दिन पूर्व सम्राट् ने अपने को स्वर्ण मुद्राओं तथा हीरे जवाहरातों से तौल कर सम्पूर्ण धनराशि को सेवकों, साधु-संन्यासियों और ब्राह्मणों में वितरित किया। इसके उपरान्त पूजा-पाठ का कार्यक्रम आरम्भ हुआ जो संध्या तक चलता रहा। दूसरे दिन भी सवेरे से सम्राट् सपरिवार उपस्थित हो कर अपनी प्रजा के साथ पूजा-पाठ में भाग लेता रहा। दोपहर बाद वह राजप्रासाद वापस आ गया।

संध्या समय देवालय के महामण्डप में बैठे हुए हम्पी के नागरिक एवं बाहर से आए हुए अतिथि सम्राट् के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। मण्डप, लटकते दीयटों में जलती हुई हजारों मोमबत्तियों से प्रकाशित हो रहा था। कुछ ही क्षणों में ध्वनि आई 'सावधान! सावधान! राजाधिराज परमेश्वर सकल कला भोजराज विभव मूरुरायर गण्ड श्रीमन् कृष्णराय महाराज पधार रहे हैं। सावधान!' सब खड़े हो गये। सम्राट् आया। लोगों ने मस्तक नवाकर प्रणाम किया। सम्राट् सामने बने भव्य रंगमंच पर जाकर बैठ गया। कल इसी रंगमंच से नाटक अभिनीत होने वाला था। राजक्कल तम्बिरन ने हाथ उठा कर बैठने का संकेत किया। सब बैठ गये। सम्राट् के पार्श्व में आन्ध्र कविता पितामह पेदण्ण बैठे हुये थे।

राजक्कल तम्बिरन के आदेशानुसार कविता पाठ आरम्भ हुआ। प्रथम बाहर से आये हुए कवियों ने अपनी-अपनी रचनाएं सुनाईं। उसके उपरान्त राजधानी के कवियों ने और अन्त में अष्ट दिग्गजों ने। सबके आग्रह पर सम्राट् ने भी एक कविता सुनाई। सभी ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की और इस प्रकार डेढ़ प्रहर रात शेष रहने पर कवि सम्मेलन समाप्त हुआ।

दिन में कृष्णदेव राय ने अतिथियों को प्रीतिभोज दिया तदुपरान्त सब के साथ 'भुवन विजयम्' में उपस्थित हो कर कुछ समय तक विचार विमर्श करता रहा और अन्त में योग्यतानुसार उपाधियों तथा पुरस्कारों का वितरण किया। लोगों के पास हीरे जवाहरातों की गठरियाँ बंध गईं। विद्वानों की सहायता इसी रूप से की जाती है।

आलोकमय महामण्डप में नाटक खेला गया जो राजकुमारी तिरु के नृत्य से आरम्भ हुआ। नाटक का प्रदर्शन प्रत्येक दृष्टि से सुन्दर रहा। बड़ी प्रशंसा हुई किन्तु विशेष चर्चा का विषय रहा राजकुमारी का नृत्य। जितनी आशा नहीं थी उससे अधिक वह भावों को प्रदर्शित करने में सफल हुई थी। उस ने सब कुछ साकार कर दिया था। लोग उसकी सराहना करते थकते नहीं थे। नाटक के कई दिनों बाद तक राजकुमारी को बधाइयाँ मिलती रहीं किन्तु वह समझ रही थी कि इन बधाइयों का मुख्य श्रेय किसको है ?

इस में तनिक भी सन्देह नहीं कि नृत्य की उत्पत्ति नीलाम्बई द्वारा हुई थी और उसको उसने संवारा भी था परन्तु यह भी निश्चित था कि यदि रामराय की वीणा न होती तो उस नृत्य में वह कमनीयता और लालित्य न आ पाता जैसा उस दिन आ गया था। उस दिन रामराय ने सब दिनों से अच्छी वीणा बजाई थी। वाद्य द्वारा उत्पन्न स्वर लहरियों में एक खिंचाव उत्पन्न हो गया था जिसमें तिरु स्वयं को भूलकर भावों में वास्तविकता लाने के लिए तन्मय हो उठी थी। यदि रामराय की वीणा ने ऐसा सम्मोहन उत्पन्न न किया होता तो सम्भवतः उसका प्रद-

र्शन इतना सफल नहीं हो पाता पर यह रहस्य वह कहे किस से ? इससे कोई लाभ तो था नहीं और यदि किसी से था भी तो उससे कहने में संकोच था। मन की बात मन में ही दबानी थी।

कहा गया है प्रेम अंधा है। सचमुच अंधा है। भला-बुरा, ऊँच-नीच, लाभ-हानि और उचित-अनुचित सब कुछ सोचने के उपरान्त भी जिस मार्ग पर वह चलता है चलता ही चला जाता है। वह किसी की चिन्ता किये बिना अपनी मंजिल की ओर सदैव अग्रसर होता रहता है। मार्ग की बाधाएँ उसे रोक नहीं पातीं। वह सब को एक ओर हटाता हुआ आगे बढ़ जाता है। अब तिरु भी सब को एक तरफ हटाती हुई सम्भवतः आगे बढ़ने का प्रयास करने लगी थी। रामराय के प्रति उसका आकर्षण बढ़ गया था। वह अपने सारे प्रयत्नों में असफल सिद्ध हुई थी। वह किसी प्रकार भी अपने को रोक नहीं पा रही थी।

कई दिनों उपरान्त एक दिन वीणा सीखने के पश्चात उसने रामराय से कह ही डाला 'झूठी प्रशंसा सुनते-सुनते तो मेरे कान पक गए हैं। चाहे हृदय से इसका श्रेय वे दूसरे को दे रहे हों किन्तु बधाइयाँ मुझे ही भेजी जाती हैं। मैं तो ऊब गई हूँ।'

'दूसरा कौन श्रेय पाने वाला है ?' रामराय ने विस्मय भरे नेत्रों से उसे देखा 'परिश्रम आपने किया, भावों में सजीवता आपने उत्पन्न की और श्रेय पायेगा कोई दूसरा ? यह भी खूब रही। आप के मस्तिष्क में यह उलटी बात किसने भर दी ?'

'उसी ने जो इस श्रेय का अधिकारी है।'

'अच्छा ! तब तो आप का अनुमान सही है। क्या मैं भी उस व्यक्ति का नाम जान सकता हूँ ? नृत्य दिखलायें आप और श्रेय का अधिकारी हो कोई और ? वाह।'

'इस श्रेय के आप ही अधिकारी हैं आचार्य।'

'मैं !'

'जी हाँ, आप।'

रामराय ठहाका मार कर हंस पड़ा 'पर जैसा राजकुमारी जी ने अभी कहा है मैंने कभी इस तरह की बात तो मुँह से निकाली नहीं थी ?'

'मुँह से नहीं निकाली पर कार्यों द्वारा व्यक्त तो कर दी। क्या आप इससे इन्कार कर सकते हैं कि मेरे नृत्य में इन्नी सजीवता लाने का एक मात्र श्रेय आप की वीणा को था ? सच-सच बताइयेगा।'

रामराय घपले में पड़ गया। यह निश्चित था कि जैसी प्रेरणा तिरु को उस दिन रामराय की वीणा से मिली थी वैसी ही रामराय को तिरु के नृत्य से। अद्वितीय शृंगार का छलकाव और वह भी उसी की वीणा की स्वर लहरियों पर—वह मस्त हो उठा था और तभी उसके बजाने में अनोखापन भी आ गया था। यद्यपि नाटक के दूसरे दिन उसने तिरु जैसी ही बात सोची थी परन्तु उसे किसी से कहा तो जा नहीं सकता था। अतः वह जहाँ से उठी थी वहीं दब कर रह गई। आज कई दिनों बाद स्वयं राजकुमारी द्वारा सच-सच बतलाने की बात कह कर उसे विचित्र स्थिति में लाकर डाल दिया गया था। उसने रुकते हुए उत्तर दिया 'यदि मैं राजकुमारी जी से नाहीं कर दूँ तो ?'

'तो क्या हुआ ? मैं समझ लूँगी कि आप झूठ भी बोलते हैं।'

जवाब के भोलेपन ने रामराय के हृदय को छू लिया। उसने तनिक ध्यान से राजकुमारी को देखा, 'चलिए, कहानी ही समाप्त हो गई। दोनों तरफ से जीत आप की है। 'नाहीं कहने में झूठा और 'हाँ' कहने में फिर हाँ तो है ही। लीजिये मैं ने अपना ही श्रेय स्वीकार किया। झूठे की उपाधि क्यों लूँ ?'

वह खिलखिला पड़ी 'सत्यता छिपाई नहीं जा सकती श्रीमन्। उसे कहना ही होगा। स्वयं राजक्कल तम्बिरन भी आपकी प्रशंसा कर रहे थे।'

'बधाई भी सुना दी गई।'। वह होठों में मुसकराया।

'पर सच्ची, झूठी नहीं।' उसने कनखियों से रामराय को देखकर

आँखें नीची करलीं।

'लेकिन अभी कैसे ? जब मैं भी हृदयसे सचमुच बतलाने के लिये कहूँ तब न ?'

'यह उत्तम रहेगा। आप वाला तो मेरे पास है ही। वही कह दूँगी। फिर ?' उसने गर्दन मटकाई। स्त्रियों में जब किसी के प्रति प्रेम अंकुरित होना आरम्भ हो जाता है तो उनकी भाषा और भावों की शैली धीरे धीरे बदलने लगती है।

रामराय हँसने लगा 'तर्क में आप से पार पाना कठिन है। ऐसा घेरती हैं कि कहीं से निकलने की गुँजाइश नहीं रह जाती।' वह चलने के लिये खड़ा हो गया।

तिरु भी हँस कर बोली 'फिर भी आप वाला घेरा मेरे वाले से अधिक वास्तविक और ठोस है।' वह वहुत दूर तक पहुँच गई थी। उसने हाथ जोड़ लिये।

रामराय प्रत्युत्तर में हाथ जोड़ता हुआ चला गया। वह उत्तर क्या देता ?

रात में सोते समय रामराय को जल्दी नींद न आ सकी। वह तिरु की एक-एक बात पर, उसकी गूढ़ता और उसके भाव पर तथा उसकी मुखाकृतियों पर बड़ी गम्भीरतापूर्वक सोचता रहा। इधर कुछ दिनों से तिरु में होने वाले परिवर्तनों से यद्यपि वह अनभिज्ञ नहीं था। पर कभी ऐसी स्थिती नहीं आई थी कि वह उन पर सोचता और कभी सोचने का विचार उठा भी तो अपने ही हृदय की दुर्बलता कहकर उसपर उसने पर्दा डाल दिया था; किन्तु आज की परिस्थिति दूध और पानी को अलग करने वाली थी। दुर्बलता उसके हृदय की नहीं वरन् तिरु के हृदय की थी। गुत्थियों में गुत्थियाँ पड़ने लगीं।

छब्बीस

रामराज भूषण ने गोपा के जीवन के विषय में पूरी जानकारी पता करवा ली थी। उसके जीवन कथा ने कवि हृदय को बड़ी वेदना पहुँचाई थी, परिणामस्वरूप उसके अन्तर में अत्याधिक सहृदयता का भाव उपजना प्राकृतिक था। बसन्तोत्सव समाप्त होते ही गोपा को सम्राट् से मिलवाने का निश्चय किया।

सम्राट् के शयनकक्ष के सामने बरामदा था और बरामदे के बाद एक बहुत बड़ा चौकोर कक्ष था जो अधिक हवादार था। छत, फर्श और दीवारें सब हरे रंग से रंगी हुई थीं। दीवारों पर बड़े-बड़े चित्र टंगे थे। चित्रों की विशेषता यह थी कि प्रत्येक चित्र में किसी समाज विशेष का चित्रण उपस्थित किया गया था। पूरा साम्राज्य कितने भागों में बटाँ था, उन प्रत्येक भाग के निवासियों का रहन-सहन, वेशभूषा, खान-पान के साथ साथ उनके उत्सव समारोह के तौर तरीकों का वास्तविक खाका खींच कर सब कुछ समझा दिया गया था। इतना ही नहीं हम्पी में आने वाले उन समस्त विदेशियों की भी वेशभूषा तथा रहन सहन के विषय में नाना प्रकार के चित्र लगे हुये थे। सम्राट् ने इन चित्रों को इस अभिप्राय से लगा रक्खा था जिससे इनके द्वारा वह अपनी रानियों को देशीय तथा विदेशीय दोनों समाजों की पूरी जानकारी करा सके।

कक्ष के मध्य में बेड़े-बेड़े लगे हुये चाँदी के मोटे मोटे छड़ थे जिनमें चाँदी की मोटी जंजीरों के सहारे झूलते हुये मखमली गद्दों से सुशोभित पर्यंक के आकार के पालने थे। ये पालने भी चाँदी के थे। अधिकतर

दोपहर में विश्राम के अभिप्राय से सम्राट् यहीं अपनी रानियों के साथ बैठकर आमोद-प्रमोद किया करता था। इस समय न तो वह साम्राज्य सम्बन्धी विषयों की चर्चा करता और न किसी से इस सम्बन्ध में सुनना ही चाहता था। परन्तु फिर भी जब तब अपने प्रिय व्यक्तियों के अनुरोध को न टाल कर वह राज्य सम्बन्धी कार्यों को ऐसे समय में भी सुन लिया करता था। आज इसी अवकास के समय सम्राट् को गोपा से मिलना था। उसने भूषण को अनुमति दे दी थी।

निचिश्त समय पर गोपा आई कवि के साथ। सम्राट् गावतकियों के सहारे कुछ लेटा हुआ पालने पर झूल रहा था। पार्श्व में उसकी रानी चिन्नादेवी बैठी थी। गोपा ने अपने मस्तक को पृथ्वी से छुलाते हुये प्रणाम किया और खड़ी हो गई।

क्षण भर तक उसे देखते रहने के उपरान्त कृष्णदेव राय ने पूछा 'तुम कुछ कहना भी चाहती हो? मैंने तुम्हारे जीवन की दुखद कहानी भूषण जी से सुनी थी। बड़ा दुःख है परन्तु होनहार को क्या कहा जाय? गोविन्द की इच्छाओं में किसी का वश नहीं। जैसे वह करते हैं सब उचित ही करते हैं। संतोष करो।'

गोपा ने हाथ जोड़े 'पर अपने इतने बड़े राज में राजक्कल तम्बिरन कितनों को यह संतोष वाला पाठ याद करने को कहेंगे?'

सम्राट् ने अपनी रानी को देखा और फिर गोपा से बोला 'मैं तुम्हारा आशय नहीं समझ सका देवी।' आज प्रथम बार इतना निडर होकर किसी ने कृष्णदेव राय से इस प्रकार की बात की थी। वह मन ही मन प्रसन्न था।

'राजक्कल तम्बिरन हमारे रक्षक और पालक दोनों हैं। पालक दयालु और दुखियों का अधिक ध्यान रखने वाला होता है। यदि राज के बने नियमों पर कभी सोचा विचारा गया होता तो सम्भवतः हमारे पति की जान न गई होती। जिस कर को देने लेने में प्रजा की जानें जाती हों वह कर देश में लगाये रखना कहाँ तक उचित है इसे राजक्कल

तम्बिरन स्वयं सोच सकते हैं।'

सम्राट् को गोपा की बातें अच्छी लग रही थीं। उसने पुनः पूछा 'किन्तु इस प्रकार दो चार घटनाओं के कारणों को देखकर यदि करों को हटाने का आदेश दे दिया जाय तो फिर राज्य का क्या होगा ?'

'तो राजक्कल तम्बिरन को अपने राज का पहले ध्यान है उसके बाद प्रजा का ?'

सम्राट् चिन्नादेवी की ओर देखकर मुसकराया 'इसके विषय में तुम्हारा स्वयं का अनुभव अधिक वास्तविक होगा। तुमने अब तक क्या अनुमान लगा रक्खा है ? मैं दोनों में किसे अधिक चाहता हूँ ?'

गोपा ने सिर उठा कर देखा और तत्क्षण झुका लिया 'उसी अनुमान के आधार पर तो राजक्कल तम्बिरन से यह प्रार्थना करने आई थी; अन्यथा एक केकिकोलर की इतनी बिसात ! बड़े भाग्य थे कि प्रभु के इतने समीप आने का अवसर मिला है। मेरी तरह फिर किसी स्त्री को दुर्दिन देखने को न मिले इसका कोई रास्ता राजक्कल तम्बिरन अवश्य निकाल दें। हमारी मनोकामना पूरी हो जायेगी।'

रामराज भूषण चुपचाप खड़ा सब सुन रहा था।

गोपा की छोटी-सी बुद्धि में इतनी बड़ी समझ देखकर सम्राट् बड़ा प्रभावित हुआ, 'यदि कर उठा लिया जाय तब तो तुम्हारी मनोकामना पूरी हो जायेगी ?'

'जी राजक्कल तम्बिरन।'

'तो जाओ आज से विवाह-कर समाप्त हो गया। अब तो तुम प्रसन्न हो ?'

गोपा ने पुनः बैठकर अपने मस्तक को पृथ्वी से स्पर्श कराते हुए प्रणाम किया और फिर पीछे हटती हुई कवि के साथ बाहर निकल आई।

दूसरे दिन विवाह-कर की समाप्ति की घोषणा हो गई। सैकड़ों वर्ष बाद गरीबों को इस कर से मुक्ति मिली थी पर मुक्ति किसके द्वारा मिली इसकी जानकारी कितने लोगों को थी।

× × ×

नियमानुकूल संध्या समय कवि तालाब पर उपस्थित था। गोपा आई। उसे आता देखकर कवि ने दूसरी ओर मुंह घुमा लिया। जैसे उसने देखा न हो। गोपा ने कपड़े रक्खे और फिर उसके समीप पहुँच कर प्रणाम किया। कवि ने अनभिज्ञता का भाव प्रदर्शित करते हुए उसे उत्तर दिया। गोपा मुसकराती हुई बैठ गई 'आज पुनः प्रभु के पास एक विनती लेकर आई हूँ।'

'इस की देवी अधिकारिणी हैं किन्तु विनती मेरे सामर्थ्य को ध्यान में रखकर की जाय यह एक मेरी भी विनती है।'

'उसका अनुमान हमें लग चुका है। इसे बताने की आवश्यकता नहीं। अब यह जानना है कि प्रभु ने जो मेरे ऊपर उपकार किया है उसे जीवन भर अपने पास संजो कर रक्खा किस प्रकार जाय ? बदला चुकाने की अपने पास शक्ति नहीं है और न अगले एक दो जीवन में होने की आशा है। केवल ···।'

'समझा ! कर्ता गौण हो गया और कार्य प्रमुख। उपकार की आड़ में मेरा अस्तित्व ही उड़ा दिया गया। देवी मुझे क्षमा करें। मेरे पास कोई उपाय नहीं है।' उसने कनखियों से देखा।

'हमारी बातों को हंसी में उड़ाकर हमें भटकाइये न प्रभु। हमने अपने हृदय की बात पूछी है। मुझे उसे संजोकर रखने की बड़ी कामना है।'

'पर मैंने कोई उपकार किया हो तब तो ? उपकार तो तुमने किया है देवी। कृतज्ञ मुझे होना चाहिये। जन समूह का एक मैं भी तो अंग हूँ। तुमने जनता की कितनी बड़ी सेवा की है।'

'प्रभु विद्वान् हैं। मैं तर्क नहीं कर सकती; परन्तु इतना अवश्य कह सकती हूँ कि बिना डाड़े के नाव किनारे नहीं लग पाती। वह मझधार में डूब जायेगी।'

भूषण क्षण भर तक उसे देखता रहा। वह दंग था उसके ज्ञान पर

इतनी समझ उसमें कहाँ से आ गई थी कहना कठिन था। वह बोला—'विद्वान मैं हूँ या तुम इसका निर्णय तो यदि यहाँ कोई तीसरा व्यक्ति बैठा होता तो मालूम पड़ जाता। कल भी तुमने अपनी बातों के बल पर राजक्कल तम्बिरन से जो चाहा करा लिया था और इस समय भी जो तुम सिद्ध करना चाहती हो वही हो रहा है। देवी ने यह सब सीखा कहाँ से है?'

'आप जैसे कवियों की संगत से। जब चन्दन के सुगन्ध से पास वाले पेड़ चन्दनमय बन सकते हैं तो फिर जहां प्रभु का नित आगमन हो वहाँ के वातावरण में पलने वाले क्या कभी मूर्ख रह सकते हैं?' वह धीरे से खड़ी हुई 'अब जा रही हूँ।' उसने प्रणाम किया।

रामराज भूषण ने प्रत्युत्तर में हाथ जोड़े।

वह चली गई।

अंधेरा होने तक युवक कवि अपने विचारों में खोया हुआ पेड़ के नीचे बैठा रहा। जिस दिन से उसने गोपा को देखा था गोपा उसकी कविताओं की प्रेरणा बन बैठी थी। संध्या समय नित्य तालाब पर आकर उसे देख जाना उसके लिये आवश्यक हो गया था। गोपा में जो सौंदर्य है वह प्राकृतिक है। प्रकृति में सौंदर्य की उपासना की प्रेरणा है अतः गोपा के सौंदर्य की उपासना यदि उसने पाप रहित मन से करना आरम्भ कर दिया था तो कोई बुरी बात नहीं थी। चाँद की चाँदनी में जो निर्मलता और स्वच्छता है वही निर्मलता और स्वच्छता गोपा के सौन्दर्य में थी। भूषण ने उसे उसी रूप में अपनाया था पर यह अपनाना इस रूप में कब तक स्थिर रह सकेगा सन्देहात्मक है। कारण, जहाँ प्रकृति में सौंदर्य की उपासना की प्रेरणा है वहीं उसे प्राप्त करने की कामना भी तो है।

घोड़े की हिनहिनाहट से कवि के विचारों की शृंखला टूटी। उसने इधर-उधर देखा। वह तत्काल चलने के लिये खड़ा हो गया। अंधेरा चारों ओर फैल गया था।

सत्ताइस

तिरु वीणा बजाते-बजाते रुक गई 'एक बात तो' वह बोली 'ग्रापसे बताना ही भूल गई थी। ग्रन्त:पुर की स्त्रियों ने मेरे उसी नृत्य को देखने की माता जी से इच्छा प्रगट की है। वे बड़ी उत्सुक हैं ग्रौर शीघ्र ही ग्रायोजन करना चाहती हैं।'

'उत्तम है किन्तु मैं तो वीणा बजाऊँगा नहीं।'

'क्यों ?'

'ग्रवसर मिला है तो सत्यता का निर्णय क्यों न हो जाय ? तर्क में तो ग्राप से पराजित हो जाना पड़ता है किन्तु ग्रायोजन के बाद पूछूँगा कि मेरे कथन में वास्तविकता थी या ग्रापके।' जाने ग्रनजाने ग्रब रामराय भी बातों में रस लेने लगा था।

'तो उस दिन वाली बात ग्रापको भूली नहीं है ?' वह मुसकराई 'किन्तु ग्राचार्य ने यह बात बता कर बड़ी ग़लती की। ग्रापका बना बनाया काम बिगड़ गया।'

'कैसे ?'

'मैं दूसरे वादक की संगत में नृत्य ही बिगाड़ दूँगी फिर तो सारा श्रेय ग्रापको मिल जायेगा ?'

'राजकुमारी जी ने भी नाच बिगाड़ने वाली बात बता कर बड़ी ग़लती की।' रामराय ने राजकुमारी की बात दुहरा दी, 'जब ग्राप ग्रपना नाच बिगाड़ सकती हैं तो क्या मैं वीणा बजाने में ग्रन्तर नहीं ला सकता ? मैं भी उलटा-सीधा बजाऊँगा।'

तिरु ने गर्दन मटकाई 'ऐसा हो सकता था परन्तु विवशता यह है कि आचार्य के चाहने पर भी आचार्य की उँगुलियाँ उलटा-सीधा नहीं बजा पायेंगी। इसे मैं अधिकार के साथ कह सकती हूँ।' उसने कनखियों से देखा।

'और मैं कहता हूँ कि मेरी उँगुलियाँ अच्छी तरह बजायेंगी और खूब बजायेंगी।'

'अच्छा तो मैं आचार्य को ही निर्णायक माने लेती हूँ। यदि उँगुलियों ने मेरा साथ नहीं दिया तो मैं दंड की भागिनी बनूँगी और यदि साथ दे दिया तो आचार्य। स्वीकार है आपको ?'

'है।'

'तो अब दंड का निर्णय हो जाय ?'

रामराय ने निर्णय बताया 'हारने वाला फिर कभी भविष्य में किसी प्रकार की शर्त लगाने का साहस नहीं करेगा तथा विजेता की प्रत्येक बात उसे सदैव मान्य होगी। आप इससे सहमत हैं ?' रामराय के रोम-रोम में सिहरन दौड़ गई थी।

'जी हाँ।'

'ठीक है। उँगुलियाँ मेरी और वाज़ीबद रही हैं 'राजकुमारी जी। इसे कहते हैं जोखिम उठाना। खैर, चलिये बजाइये।' वह बनावटी गम्भीरता बनाये हुये था।

पुरुष में चारित्रिक दुर्बलता चाहे कम हो किन्तु कामुकता की भावना अधिक होती है। बाँध टूट जाने पर वह अपने को रोक नहीं पाता। अंधा बन जाता है। उस समय उसकी स्वच्छन्दता स्त्रियों की स्वच्छन्दता से अधिक घातक और पथ-भ्रष्ट होती है। रामराय का बाँध टूटने लगा था।

तिरु मुसकराती हुई वीणा बजाने लगी।

वीणा सिखलाने के उपरान्त जब रामराय चलने को हुआ तो तिरु ने पूछा 'परसों आयोजन रक्खूँ ?'

'रखिये।' वह खड़ा हुआ।

तिरु ने पुनः रोका 'यदि बाज़ी में कहीं आचार्य की हारी हो गई तब तो बड़ी कठिनाई आ खड़ी होगी। सब कुछ विपरीत हो जायेगा ?'

'आचार्य की हारी क्यों होने लगी ? हारी होगी राजकुमारी तिरुमलाम्बा की। अचार्यत्व की पदवी यों ही नहीं प्राप्त की है। परसों फैसला हो जायेगा।' वह जाने की अनुमति मांगता हुआ चला गया।

दोनों एक-दूसरे की भावनाओं को समझने लगे थे।

तीसरे दिन नृत्यगृह में आयोजन हुआ। स्त्रियों के अतिरिक्त पुरुषों में केवल सम्राट् निमन्त्रित था। कई अन्य नृत्यों के पश्चात् नीलाम्बई का नृत्य हुआ तदुपरान्त तिरु मंडप में आई। नृत्य आरम्भ हुआ। वीणा वादक की तल्लीनता बढ़ी। तन और मन दोनों राजकुमारी के पक्ष में चले गये। राजकुमारी ने भी वैसी ही सजीवता उत्पन्न की जैसी उस दिन थी। नृत्य समाप्त होने पर बड़ी सराहना हुई। सम्राट् ने रामराय की विशेष प्रशंसा की। राजकुमारी ने आँख बचाकर अपनी विजय का आभास करा दिया। रामराय को अच्छा लगा। कार्यक्रम समाप्त हुआ।

प्रतीक्षा के उपरान्त दोनों के लिये दूसरा दिन आया। अपराह्न में रामराय सिखलाने आया। तिरु पहले से प्रतीक्षा में बैठी थी। उसने प्रणाम किया और खिलखिला कर हंस पड़ी। रामराय बैठ गया।

'निर्णय सुन लूँ तब बजाना आरम्भ करूँ ?' तिरु बोली।

'इसीलिये तो स्त्रियों को पुरुषों से अधिक संकुचित विचार का कहा गया है। थोड़े में उबल पड़ती हैं। मैं कहता हूँ जो घोड़े पर चढ़ता है वही तो गिरता है। अनायास बटेर के हाथ में आ जाने से कोई तीरंदाज़ नहीं बन जाता। कभी मेरा भी तो अवसर आ सकता है ?' रामराय की आँखों ने उसे विशेष प्रकार से देखा।

'दार्शनिकों का कहना है कि भविष्य अंधकारपूर्ण है। उस पर कभी सोचना नहीं चाहिये। जो सामने है वही सब कुछ है। उसी से

अधिक-से-अधिक आनन्द उठाने की चेष्टा करना बुद्धिमानी का परिचय देना होगा।' उसने भी रामराय को देखा।

'खैर, सोचने के लिये तो आप सब कुछ सोच सकती हैं किन्तु दुबारा इसी प्रकार का आपको कोई अवसर प्राप्त हो सकेगा—असम्भव है। इसे आप ध्रुव सत्य समझें।' रामराय कह तो रहा था गम्भीर होकर परन्तु उसकी गंभीरता में भी हृदय को गुदगुदी देने वाली कोई प्रेरणा थी।

'परन्तु अब अवसर से अपने को क्या मतलब ? निर्णय तो 'सदैव मान्यता' की हुई है न ?'

'हुआ करे। जब तक निर्णायक निर्णय न सुना दे तब तक निर्णय होना-न-होना समान है। मेरे निर्णय सुनाने के बाद ही आप 'सदैव मान्यता' वाली बात को उठाने की अधिकारिणी बन सकती हैं। समझा आपने ?'

तिरु ने गर्दन टेढ़ी कर आंखें नचाई 'क्या अभी निर्णय सुनाना शेष है ?'

'हां। निर्णय कल सुनाया जायेगा। चलिये बजाइये।'

'जब किसी तरफ से अपनी बात बनती दिखलाई नहीं पड़ी ता शक्ति का प्रयोग होने लगा। अभी-अभी कहा गया है कि स्त्रियाँ संकुचित विचार की होती हैं परन्तु ··· खैर। सब ठीक है। शक्तिवान् को सब क्षम्य है। जो चाहे कहें जो चाहे करें। वही कहावत है—मारेंगे भी और रोने भी नहीं देंगे। नारियाँ परवश हैं।' वह वीणा सामने खींचती हुई तारों को टुनटुनाने लगी। बीच-बीच में वह कनखियों से देख भी लेती थी।

रामराय क्षण दो क्षण मौन रहा। वह भी उन बड़ी-बड़ी आँखों में आँखें डाल कर कुछ कह देता रहा। शरीर का एक-एक अंग पुलकित हो उठा था। वह बोला 'परवश क्यों हैं ? बुद्धि उनके पास है, हथियार बाँध कर युद्धों में पुरुषों का सामना करना उन्हें आता है, व्यायाम

कुश्ती वे करती हैं, कार्यालयों में पहले स्थान उन्हें मिलता है, साम्राज्य के सभी राजकीय महलों में मुख्यतः इन्हीं की बहुतायत है, हम्पी में जो सब से बड़ा रायस* है उस में लगभग अस्सी प्रतिशत स्त्रियाँ ही काम करती हैं, कवयित्री और लेखिका इन्हें बनना आता है फिर भी अपने को शक्तिहीन और परवश कहकर पुरुषों को जंगली और अनुचित लाभ उठाने वाला कहा जाय—कुछ समझ में नहीं आता। बिना निर्णय सुने निर्णय का अनुमान लगाकर विपक्षी की खिल्ली उड़ाना, निर्णायक का अपमान करना ही तो हुआ ? मैं क्या, कोई भी आत्मसम्मानी व्यक्ति इसे सहन नहीं कर सकता।' उसने गर्दन नीची कर ली। उसे हँसी आ गई थी।

तिरु ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह भी होठों पर मुसकान बिखेरती हुई वीणा बजाने लगी। अन्तःकरण में कोई गूँजने लगा था।

बड़ी देर तक तिरु वीणा बजाती रही। क्या बजाती रही अनुमान नहीं। अनुमान कैसे होता—मस्तिष्क कहीं और था और उँगुलियाँ कहीं और। बीच बीच में जब तब वह पलकें उठा कर देख लेती थी ; परन्तु रामराय को भी अपनी ओर निहारता देखकर तत्काल पलकें झुका लेती थी। कल्पना में सजीवता बढ़ती चली जा रही थी।

उधर सामने बैठे हुये रामराय की भी यही दशा थी। वह तिरु को निहारने में तल्लीन था। मुखमंडल हृदय का दर्पण है और सम्भवतः इसी विचार से वह इस दर्पण द्वारा तिरु के हृदय की उज्ज्वलता, उसकी निष्कपटता और सुन्दरता का अनुमान लगा लेना चाहता था। उसके लिये आवश्यक भी था। वह दूध का जला हुआ था।

अकस्मात रामराय की तल्लीनता टूटी, 'बस कीजिये।' वह बोला।

तिरु की झुकी गर्दन ऊपर को उठी। क्षण भर के लिये दोनों एक दूसरे के नेत्रों में खो गये। 'बड़ी देर से आप बजा रही हैं।' रामराय

*रायस=प्रधान मंत्री का कार्यालय।

ने आँखें नीची कर लीं।

तिरु ने बन्द कर दिया।

'अब मैं चल रहा हूँ।' वह खड़ा हुआ।

तिरु खड़ी हुई। उसने हाथ जोड़े 'यदि मुँह से अपशब्द निकल गये हों तो क्षमा चाहूँगी।'

रामराय उसे देखता हुआ मुड़ गया।

तिरु का शरीर रोमांचित हो उठा।

अट्ठाइस

दिन बड़ा होने लगा था। संध्या देर में आती थी। विशेषकर कवि भूषण के लिये तो बड़ी देर में आती थी। प्रतीक्षा करते-करते झुँझलाहट होने लगती थी। दोपहर तक का समय तो किसी प्रकार स्नान-ध्यान और भोजन इत्यादि में समाप्त हो जाता था परन्तु दोपहर के बाद एक-एक पल फिर पहाड़ जैसा मालूम पड़ने लगता था। गोपा को देखने के लिये हृदय व्याकुल होने लगता था कभी-कभी तो वह धूप में ही निकल पड़ता और तालाब पर आकर उसकी प्रतीक्षा किया करता। यद्यपि उसकी यह प्रतीक्षा वासना की प्रेरणा से प्रेरित नहीं थी और न गोपा के लिये उसके मन में किसी प्रकार का पाप था। वह निच्छल हृदय से जाता उसे देखता और फिर लौट आता; परन्तु इधर जबसे गोपा के वैधव्य की जानकारी हुई थी। उसकी भावनाओं में परिवर्तन

आने लगा था। कलाकारों की दुनिया विचित्र हुआ करती है। मनोविज्ञान वहाँ काम नहीं करता।

आज जल्दी तालाब पर पहुँच कर वह गोपा की प्रतीक्षा कर रहा था। गोपा आई। उसने वहीं से एक बार भूषण को देखा और फिर नहाने के लिये सीढ़ियों से नीचे उतरने लगी। भूषण ने आवाज़ दी 'गोपा !'

गोपा रुक गई। क्षण भर तक सोचने के उपरान्त वह कपड़ों को यथा स्थान रखकर उधर को चल पड़ी। समीप पहुँचने पर उसने प्रणाम किया और बैठ गई 'प्रभु ने बुलाया है ?' उसने पूछा।

'क्या करता ? जब देखा कि तुम इधर न आकर स्नान के लिये उतरने लगीं तो मैंने पुकार लिया। वैसे मेरा पुकारना अनुचित था यह मैं जानता हूँ।'

'जी हां, इस अर्थ में तो अनुचित था ही कि इस के पहले आप ने कभी मुझे इस प्रकार पुकारा नहीं हैं।' वह मन्द-मन्द मुसकरा रही थी।

'परन्तु इस अनुचित को करने के कारण से भी तो तुम अनभिज्ञ नहीं हो ?'

'नहीं प्रभु उससे कैसे रह सकती हूँ लेकिन उतना करना मेरा कर्तव्य था ? यदि प्रभु के उपकारों के बदले में कुछ कर नहीं सकती तो क्या मुँह से कह भी नहीं सकती हूँ। मैंने कल वही किया था। यद्यपि यह करना न करना एक जैसा है परन्तु और कुछ करने के लिये समरथ भी तो नहीं। मेरे और प्रभु के संसार में बड़ा अन्तर है।'

'और इस अन्तर को उत्पन्न करने वाले हैं हम और तुम या और कोई ?'

'और कौन हो सकता है पर कठिनाई यह है कि वह अब हमारे आधीन न होकर हम उसके आधीन हो गये हैं। हमें उसी के अनुसार काम को करना होगा। माँ, बाप, स्त्री, पुत्र सभी छूट जाते हैं लेकिन समाज नहीं छूटता।' गोपा ने संक्षेप में सब कुछ कह दिया।

कवि हँसने लगा 'चलो एक बात नई समझ में आई। चाहे तुम्हारा मन यहाँ नित्य बैठकर मुझसे बातें करने को कहता हो किन्तु समाज की दृष्टि में यह अनुचित है इस भय से तुम यहाँ बैठ नहीं सकती यद्यपि तुम्हें भली प्रकार विदित है कि यहां बैठने से अहित के स्थान पर तुम्हारा हित ही होगा।'

'हाँ प्रभु। फिर मैं बैठ नहीं सकती।'

'और यदि मैं कहूँ कि मेरी इच्छा तुम से नित्य बातें करने की है तब ?'

गोपा ने गर्दन उठा कर देखा। सम्भवतः वह इस वाक्य के तात्पर्य को समझ लेना चाहती थी। उसे आश्चर्य हुआ। 'मैं इस के लिये प्रभु से क्षमा चाहूँगी। यह हमारी स्थिति के विपरीत है।'

कवि के चहरे पर गम्भीरता आई 'तुम्हारी स्थिति का मतलब तुम्हारे वैधव्य से है ?'

गोपा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

भूषण ने अब सीधा प्रश्न पूछ लिया 'यदि मैं तुम से विवाह करना चाहूँ तो तुम्हें कोई आपत्ति होगी ?' भावुक हृदयों की विशेषता होती है।

मृगों जैसे गोपा के नेत्र फैल गये। वह टकटकी लगा कर उसे देखती रह गई।

'तुम्हें विश्वास नहीं हो रहा है ?' उसने अपने कथन की पुष्टि की।

जैसे गोपा को किसी ने ऊपर से उठाकर नीचे फेंक दिया हो। वह सचेत हुई और शीघ्रता से उठकर भागी।

कवि का हृदय झूम उठा।

दो दिन गोपा नहीं आई। कवि जाता और अंधेरा होने तक प्रतीक्षा करके लौट आता। तीसरे दिन गोपा आई। अभी कवि नहीं आया हुआ था। उसने सोचा—सम्भवतः वह जल्दी चली आई है। बैठकर प्रतीक्षा

करने लगी । काफी समय तक प्रतीक्षा किया । वह अब तक नहीं आया । वह नहाने को नीचे उतरी । जितनी शीघ्रता से नहा सकती थी नहा कर कपड़े बदले । शायद उसके प्रभु आ गये हों । वह उपर आई परन्तु निराशा ही हाथ लगी । वह नहीं आया था ! उसने इधर ऊधर देखकर समय का अनुमान लगाया । अभी आने की आशा थी । वह पुनः प्रतीक्षा में बैठ गई । अंधेरा होने लगा । उसे विवश होकर उठना पड़ा । जब वह घर को चली तो उसका हृदय उसे कोस रहा था । लज्जा के पीछे दो दिन न आकर उसने अमूल्य रत्न खो दिया । उसका मन बार-बार इसे दुहरा कर उसकी अन्तंव्यथा को बढ़ाने लगा था ।

लगातार कई दिनों तक न आने के उपरान्त अकस्मात एक दिन गोपा को भूषण कवि दिखलाई पड़ गया । कई बार देखने पर आँखों को विश्वास हुआ . हृदय की कलियां खिल गईं; परन्तु साथ-साथ हौल-दिल भी बढ़ गया । मन समीप चलने के लिये कहता किन्तु लज्जा पैरों को जकड़े हुये थी । प्रीतम की प्रतीक्षा में मिलन की उत्सुकता होती है । पर स्वभाव की अनीत ऐसी है कि जब यह अवसर आता है तो वह पीछे को घसीटने लगता है । गोपा सीढ़ियों से नीचे उतर कर पानी में पैर हिला-हिला कर बड़ी देर तक सोचती रही । जाने का साहस नहीं हो रहा था ।

भूषण ने गोपा को सीढ़ियों से नीचे उतरते देखा था परन्तु इतना समय बीतने पर भी उसे ऊपर आता हुआ न देखकर उसे चिन्ता हुई । वह स्नान में इतनी देर कभी नहीं लगाती थी । उसने थोड़ी देर और प्रतीक्षा की । गोपा अब भी नहीं आई । वह उठकर तालाब के किनारे आया । नीचे गोपा बैठी दिखलाई पड़ी । उसने ऊंचे स्वर में कहा 'देवी को नमस्कार करता हूँ ।'

गोपा चौंक गई । उसने ऊपर देखकर पुनः सिर झुका लिया ।

'स्नान करके आने का कष्ट करें । मैं बड़ी देर से प्रतीक्षा में बैठा हूँ ।' कहकर वह लौट गया ।

गोपा ने स्नान नहीं किया। वह थोड़े समय बाद लजाती सकुचाती कवि के पास पहुँची। उसने बैठने को कहा। वह बैठ गई। 'एक मित्र के कार्यवश बाहर जाना पड़ गया था। आज सवेरे आना हुआ है। तभी से मनौतियाँ मानते-मानते तब जाकर कहीं संध्या आ पाई है पर यहाँ देखता हूँ कि किसी को कोई चिन्ता ही नहीं। अब तो सम्भवतः लोग आना भी बन्द करने वाले हैं ऐसा सुनने में आया है। मेरी धारणा असत्य तो नहीं है ?'

गोपा ने तनिक गम्भीर स्वर में उत्तर दिया 'प्रभु से विनती है कि इस प्रकार की बातें करके हमें नरक में न ढकेलें। मैं इस योग्य नहीं हूँ।'

'क्यों ? क्या मेरे प्रस्ताव पर तुम्हें विश्वास नहीं अथवा तुम्हें यह पसन्द नहीं है ?' भूषण भी गम्भीर हो गया।

'मुझे पसन्द नही है प्रभु। हम केकिकोलर हैं। ऐसा कभी हुआ है कि आज ही होगा। असम्भव है प्रभु असम्भव।' गोपा कहना चाहकर भी कह नहीं पा रही थी।

गोपा की नापसन्दगी का कारण कवि समझ गया। उसकी गम्भीरता सरसता में परिणित हुई 'गोपा भी तो असम्भव और अद्वितीय है। ऐसी गोपा कभी किसी को देखने को मिली होगी ? मुझे गोपा से मतलब है। उसकी जाति से नहीं। गोपा ने मेरी कविताओं को प्रेरणा देना आरम्भ कर दिया है गोपा। उसे मैं खोकर कहीं का न रह पाऊँगा।'

'परन्तु ऐसा करने का मुझ में साहस नहीं है प्रभु। चाँद में धब्बा बन कर सब के संकेतों का भाजन नहीं बनूगी।' गोपा का निष्कपट हृदय वास्तविकता बतला रहा था।

'धब्बे के कारण ही तो उसकी ज्योत्स्ना में इतनी शीतलता आ गई है अन्यथा सूरज की भांति वह तपता होता। उस समय संसार वालों के लिये क्या वह इतना आकर्षक बन सकता था ? जब चाँद की कालिमा

चाँद की महत्ता बढ़ा सकती है तो क्या गोपा की कालिमा भूषण की महत्ता बढ़ाने में समर्थ न होगी ?'

'न होगी प्रभु, बिल्कुल न होगी। आप को मैं कैसे समझाऊँ ? आप का समाज, सम्मान, प्रतिष्ठा आप से सब छिन जायेंगे। आप संसार की दृष्टि में हेय बन जायेंगे। आप .....।'

कवि ने बीच में टोका 'गोपा तो मुझ से नहीं छीनी जा सकेगी ? उसकी दृष्टि में हेय नहीं बनूँगा ?' उसने हाथ बढ़ा कर अचानक उसके हाथ को पकड़ लिया, 'मैं अपनी कविता पर जगत् का सम्पूर्ण ऐश्वर्य न्यौछावर कर सकता हूँ गोपा।'

गोपा का सारा बदन सिहर उठा। वह हाथ खींचती हुई खड़ी हो गई 'मैं नरक में गिर रही हूँ प्रभु। आपको पथ भ्रष्ट करने का सारा दोष मेरे सिर होगा। मैं ऐसा नहीं कर सकती। कभी नहीं कर सकती।' वह लम्बे-लम्बे पैर बढ़ाती हुई चली गई।

उनत्तीस

सम्राट् कृष्णदेव राय, कविता पितामह पेदण्ण को बहुत चाहता था और यही कारण था कि युद्ध स्थलों पर भी वह सम्राट् के साथ-साथ रहा करता था। सम्राट् को कवि से बौद्धिक भोजन मिलता था। साथ ही उसके संग समय बिताने में आनन्द भी आता था। उसके अतिरिक्त बहुत-सी ऐसी भी बातें होती थीं जिन पर उसकी राय लाभदायक सिद्ध होती थी। पेदण्ण सम्राट् के बहुत से निकटतम व्यक्तियों में था।

आज शयन कक्ष में सम्राट् किसी विशेष समस्या पर कवि से वार्तालाप कर रहा था। सम्राट् कई दिनों से सोचते रहने पर भी अभी तक कुछ निर्णय नहीं निकाल सका था। उचित अनुचित का रास्ता नहीं बना पा रहा था। वह पेदण्ण से कह रहा था 'इसमें संदेह नहीं कि अगर कले को जानकारी नहीं हुई होती तो उसका षड़यन्त्र सफल हो गया होता। उसने मेरी हत्या कर दी होती परन्तु गोविन्द की कृपा से वह अपने कार्य में असफल रही। ख़ैर, जो होना था सो तो हो गया चाहे वह अन्नपूर्णा की नासमझी से कहिये या उसे होतव्यता समझिये। अब प्रश्न है अन्नपूर्णा का। इधर मैं कई दिनों से इस प्रश्न पर विचार कर रहा हूँ किन्तु कुछ निश्चित नहीं कर पाता। आपकी क्या राय है ? क्या उसे वहीं रहने दें या यदि वह अपनी त्रुटि के लिये क्षमा याचना करे तो पुनः बुला लें ?'

'राजक्कल तम्बिरन जिस दृष्टि से देवी अन्नपूर्णा को क्षमादान दे कर पुनः बुलाने के विषय में सोच रहे हैं वह निस्संदेह मानवता के नाते अनिवार्य और उचित है पर देश और समाज के लिये आपके जीवन की कितनी आवश्यकता हैं इस पर पहले विचार करने के उपरान्त तब दूसरे प्रश्नों पर सोचना होगा। देवी अन्नपूर्णा को क्षमादान देकर पुनः यहाँ रखना क्या किसी दृष्टि से उपयुक्त होगा ? क्या उनकी बातों पर विश्वास कर लेना बुद्धिमानी होगी ? स्त्रियों की प्रकृति विधि ब्रह्मा के मस्तिष्क से भी परे है राजक्कल तम्बिरन। अन्नपूर्णा दुबारा भी षड़यन्त्र कर सकती हैं। आस्तीन के साँप को पालने से लाभ ?'

'आप का कहना उचित है परन्तु जहाँ तक मानवता का सम्बन्ध है वह ईश्वरीय है न कविश्रेष्ठ। उसे निभाते हुये जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति को ही व्यक्ति कहा जा सकता है। वे ही संसार में रहकर प्रभु की अनुकम्पा का पात्र बन सकते हैं। मुक्ति उन्हीं को मिल सकेगी। मृत्यु भय से कर्तव्य विमुख होना उचित नहीं है। इस मार्ग पर चलकर यहां और वहाँ दोनों से वंचित रह जाना पड़ेगा। गोविन्द की महानता इसी में है न कि वह क्षमाशील है ?'

'मुझे क्षमाशीलता पर ग्रापत्ति नहीं केवल ग्रापत्ति है उन्हें यहाँ बुलाने में। उनकी मनोवृत्ति का क्या भरोसा ? राजक्कल तम्बिरन को ग्रपनी प्रजा का पहले ध्यान रखना होगा उसके बाद देवी ग्रन्न-पूर्णा का।'

सम्राट् सिर हिलाता हुग्रा सोचने लगा 'परन्तु' वह बोला 'मैंने ग्रग्नि को साक्षी देकर जो प्रतिज्ञायें की हैं उस धर्म का पालन भी तो ग्रनिवार्य है। गल्तियाँ स्वाभाविक हैं। बिना ग्रवसर दिये हुये सुधरने की कैसे ग्राशा की जाय ? मैंने सोचा था कि स्वयं जाकर उससे मिलता ग्रौर उसके मनोभावों को समझ कर उसी के ग्रनुसार कोई कदम उठाता।'

'ऐसा हो सकता है। इसमें प्रजा को संतोष रहेगा। मन का खटका मिट जायेगा। राजक्कल तम्बिरन कब तक जाने का विचार कर रहे हैं ?'

'दो-तीन दिन के भीतर।'

'देवी ग्रन्नपूर्णा को राजक्कल तम्बिरन के ग्रागमन की सूचना पहले मिल जाय तो ग्रच्छा रहेगा।'

'हाँ। यह मैं भी सोच रहा हूँ।'

फिर दोनों में कुछ समय तक साहित्यक वार्तायें होती रहीं तत्प-श्चात् पेदण्ण ने चलने की ग्रनुमति माँगी।

कम्भम में ग्रन्नपूर्णा को सम्राट् के ग्रागमन की सूचना दे दी गई थी किन्तु ग्रागमन का कारण उसे ग्रज्ञात रहा। जब तक सम्राट् से भेंट नहीं हुई उसके ग्राने की पहेली ग्रन्नपूर्णा के मस्तिष्क को उलझाये रही। वह सम्राट् के हृदय से परिचित होने पर भी चोर की दाढ़ी में तिनके वाली कहावत से ग्रपने को कैसे ग्रछूता रख सकती थी ? उसकी बुद्धि शुभ पक्ष पर कम ग्रौर ग्रशुभ पर ग्रधिक तर्क-कुतर्क कर रही थी। उसे स्वप्न में भी ग्राशा नहीं थी कि इतना होने के उपरान्त भी उसका पति उसे उसी रूप में ग्रपनाने के लिये तैयार हो सकेगा।

तीसरे दिन सम्राट् का आगमन हुआ। कक्ष में जब सम्राट् ने प्रवेश किया तो रानी प्रतीक्षा में खड़ी थी। उसने एक बार पति को देखा और तत्काल सिर झुका लिया। सम्राट् पर्यंक पर आकर बैठ गया। 'बैठो।' वह बोला।

अन्नपूर्णा सामने रक्खे हुये त्रिपद पर बैठने को हुई किन्तु उसने टोका 'नहीं। मेरे पास पर्यंक पर बैठो।'

वह उसी प्रकार नतमस्तक पर्यंक पर बैठ गई।

'मेरे आने का अभिप्राय तुम्हें विदित है ?' पति ने पूछा।

पत्नि ने सिर हिलाकर अनभिज्ञता प्रगट की।

'मैं पिछली घटनाओं पर पर्दा डालकर तुम्हें उसी रूप में पुनः ग्रहण करने आया हूँ। तुम्हें मेरा प्रस्ताव पसन्द है ?'

अन्नपूर्णा चुप रही।

कृष्णदेव राय ने फिर कहा 'तुमने गलती की परन्तु मनुष्य होने के नाते यह कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी। गलतियाँ सब करते हैं परन्तु ग़लती को ग़लती मानकर उस पर पश्चाताप करने वाले व्यक्ति क्षम्य और निरपराध हैं। तुम्हें भी क्षमा किया यदि उसके लिये तुम्हारे हृदय में पश्चाताप है तो।'

अनायास अन्नपूर्णा पति के चरणों पर गिर पड़ी। आँसू की लड़ियाँ बंध गईं।

सम्राट् ने उठाया। वह फफक पड़ी। क्षोभमिश्रित हृदय का आनन्द कहाँ तक दब पाता। वह उसकी गोद में मुँह छिपाकर बड़ी देर तक रोती रही। सम्राट् उसके सिर पर हाथ फेरता रहा। जहाँ कृष्णदेव राय ने कर्तव्य पालन करके मानवता का परिचय दिया था वहीं अन्न-पूर्णा ने अपने को प्रत्येक रूप से हेय बताकर पति को प्राप्त कर लिया था। सम्राट् ने उठाकर उसके आँसू पोंछे, 'जाओ स्नान करो। भोजनो-परान्त हम्पी लौट चलेंगे।'

अन्नपूर्णा गुमसुम बैठी रही। उठी नहीं।

'उठो।' उसने उसकी पीठ थपथपाई 'होतव्यता थी सो हो गई। जाओ।'

अन्नपूर्णा आँचल में मुँह ढंककर फिर रोने लगी। आँसू थमना नहीं चाह रहे थे। मन की ग्लानि दबाये नहीं दब रही थी। उसने स्त्री जाति पर एक ऐसा कलंक लगा दिया था जिसे मिटाने में सदियों लग सकते थे।

'पगली है। होनहार को कभी कोई रोक सका है? यश और अपयश यह विधि के हाथ की वस्तुयें हैं। चलो उठो। मेरे हृदय में तुम्हारे लिये वही स्थान है।' उसने हाथ पकड़ कर उठाना चाहा।

'नहीं। मैं राजक्कल तम्बिरन के साथ नहीं जा सकती। मैं पतिता हूँ। मेरी नीचता अक्षम्य है। मैंने सम्राट् के यश पर धब्बा लगा दिया है। मैं कदापि नहीं जा सकती। कदापि नहीं जा सकती।'

'किन्तु यहां रहने से लाभ?'

'घुट-घुट के मरूँगी। मुझे दंड मिलना चाहिये प्रभु। मैंने अपराध किया है।'

सम्राट् ने ताली बजाई। सेविका उपस्थित हुई 'इन्हें नहलाने ले जाओ।' उसने हाथ पकड़ कर उसे उठा दिया। वह फिर भी ठिठकी रही। उसने धीरे से उसे आगे को ढकेला—'जाओ। जल्दी करो।'

अन्नपूर्णा ने गर्दन मोड़कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने पति को देखा 'मैं वहाँ मुँह दिखाने ....।'

'पहले जाकर स्नान करो।' वह उसका हाथ पकड़ कर कक्ष के द्वार तक ले गया।

अन्नपूर्णा ने भोजन नहीं के बराबर किया। सम्राट् भोजन करता जा रहा था और उसे समझाता भी जा रहा था। 'मनुष्य में गुण अधिक हैं और अवगुण कम। स्वभाव से वह दयावान है। परोपकार और मनुष्यता की भावना उसमें अधिक है। भलाई अधिक चाहता है और बुराई कम; किन्तु समाज का वातावरण

तथा उसमें शक्तिशाली व्यक्तियों द्वारा फैलाए गये ईर्षा-द्वेष की भावना उसके उन अप्राकृतिक अवगुणों को उभारने में सफल होती है जिनके विषय में स्वयं उसे जानकारी नहीं होती। मनुष्य भटक जाता है। भ्रम में पड़ने के कारण उसकी बुद्धि उचित अनुचित का तत्काल कोई निष्कर्ष नहीं निकाल पाती फलस्वरूप गलतियों का होना स्वाभाविक है। परन्तु गलतियों के होने से उसे ठोकर भी लगती है और वहीं उसे सही मार्ग का ज्ञान होता है। गलतियाँ करके मनुष्य संभलता है अन्नपूर्णा बिगड़ता नहीं। तुम्हारे अनुभव से दूसरों को शिक्षा मिलेगी और फिर यह तो तुम्हें विदित है कि सृष्टि में जो कुछ हो रहा है सब उसी की इच्छानुकूल है। बिना उसकी मर्जी के कोई काम नहीं होता। पिछली बातों को भूल कर जीवन को सही रास्ते से ले चलने का प्रयत्न करो।' उसने भोजन समाप्त किया।

अन्नपूर्णा पुनः मलयकूट में रानी बन कर आई। सम्राट् ने अपनी अन्य पत्नियों को जितना प्यार दे रखा था अन्नपूर्णा को भी उतना मिला। अन्नपूर्णा अपने पति की दासी बन गई थी।

तीस

इतिहास की समस्त पुस्तकें इस सत्यता को प्रमाणित करती हैं कि भारतवर्ष के हिन्दू और मुसलमान सम्राटों में दो-एक सम्राट् ही ऐसी श्रेणी में आ सकते हैं जिन्होंने कृष्णदेव राय की भाँति शासन संचालन

में आदर्श उपस्थित किया हो। सम्राट् कृष्णदेव राय ने अपने बीस वर्ष के अल्प शासन में विजयनगर साम्राज्य को जिस शिखर पर पहुँचा दिया था वह उसकी महानता का परिचायक था। सम्पूर्ण वैभव से परिपूर्ण देश का एक-एक कण, एक-एक व्यक्ति दुख की ज़िन्दगी को भूल चुका था। सब का जीवन आनन्द से कट रहा था। शान्ति की स्थापना न केवल उसके साम्राज्य में थी वरन् उसके पराक्रम के भय से उन बहमनी रियासतों में भी थी जिनके शासक अपनी पाशविक मनोवृत्ति के वशीभूत होकर अनाचारों एवं अत्याचारों से उस भू-भाग को रौंदा करते थे। सम्राट् कृष्णदेव राय का युग स्वर्ण युग था।

ब्रह्मवेला में सम्राट् उठ पड़ता था। दैनिक क्रियाओं से निवृत्त हो कर वह अपने शरीर में तेल लगाता तदुपरान्त कुछ व्यायाम करता फिर तलवार लेकर उस समय तक अभ्यास करता रहता जब तक उसके शरीर का तेल सूख न जाता। तत्पश्चात किसी अपने एक पहलवान के संग कुश्ती लड़ता था। कुश्ती के उपरान्त वह घोड़े पर आरूढ़ होकर जब तक सूर्य की किरणें फूट कर प्रकाशित न हो जातीं, चक्कर लगाता रहता था। उसके उपरान्त वह स्नान-पूजन में व्यस्त हो जाता था।

मुख्य द्वार से राजप्रासाद मलयकूट में प्रवेश करने पर पहले एक छोटा-सा सहन मिलता था। सहन पार करने पर दो दरवाज़े सामने मिलते थे। इन दोनों दरवाज़ों के मध्य में एक बड़ा बरामदायुक्त सुसज्जित कमरा था जहाँ साम्राज्य के उच्च पदाधिकारी; प्रान्तीय नायक; विदेशी राजदूत तथा अन्य व्यक्ति जो सम्राट् से मिलना चाहते थे—आकर बैठा करते थे। थोड़ी-थोड़ी दूर पर सशस्त्र सैनिकों की चारों ओर तैनाती रहती थी। भेंट के लिये आये हुए प्रत्येक व्यक्ति के विषय में पूरी जानकारी हो जाने पर ही उसे अन्दर जाने की अनुमति मिला करती थी। द्वार से अन्दर प्रवेश करने पर एक दूसरा सहन मिलता था। सहन के उस तरफ एक और द्वार था। इस द्वार के दोनों ओर कृष्णदेव राय तथा उसके पिता नरसिंह दोनों के मनुष्याकार चित्र बने हुये थे। सम्राट् से भेंट

करने वालों की यहाँ पुनः पूछ-ताछ होती तदुपरान्त उन्हें अन्दर जाने की आज्ञा प्राप्त होती थी। हरे रंग वाला गोलाकार भव्य कक्ष इसी के भीतर था।

आठ बजते-बजते सम्राट् इस कक्ष में आकर बैठ जाता और लगभग दो घंटे तक शासन सम्बन्धी कागज पत्रों को देखता, हस्ताक्षर करता, आदेश लिखवाता साथ-साथ उन लोगों से भी बातचीत करता रहता जो उसके निकटतम व्यक्तियों में समझे जाते थे। इन व्यक्तियों के प्रवेश में किसी प्रकार की रोक थाम नहीं होती थी। साम्राज्य सम्बन्धी दैनिक कार्यों से फुर्सत मिलने पर वह प्रतीक्षा में बैठे हुए आगन्तुकों से मिलना आरम्भ करता। मिलने वाले सीढ़ियों से ऊपर चढ़ते ही प्रणाम करते और मस्तक नवा कर खड़े हो जाते। सम्राट् आने का प्रयोजन पूछता और ध्यानपूर्वक सारी बातें सुनता। सम्राट् के आमने-सामने मुँह करके किसी प्रकार की वार्ता नहीं की जा सकती थी। विदेशी राजदूतों के आगमन पर सम्राट् तनिक तड़क-भड़क के साथ मिला करता था। उस दिन उसकी वेशभूषा राजसिक हुआ करती थी।

आज सम्राट् राजसिक वस्त्रों में था। गोआ का राजदूत क्रिस्टाबवो डी फिगिवरीडो अपना प्रमाण-पत्र देने वाला था। निश्चित समय पर फिगिवरीडो सम्राट् से मिला। उसके साथ पेई तथा अन्य कई और पुर्तगाली थे। सम्राट् ने पुर्तगाली राजदूत को बड़े आवभगत से लिया और अपने समीप बिठलाया। फिगिवरीडो ने अपने अन्य व्यक्तियों का परिचय कराया। सम्राट् सब से मिल कर प्रसन्न हुआ। इसके उपरान्त राजदूत ने उपहार भेंट किए जिसमें एक उपहार विशेष उल्लेखनीय था। वह एक प्रकार का पुर्तगाली बाजा था। सम्राट् इसे ध्यानपूर्वक देखता हुआ मुसकरा कर बोला 'क्या इसकी आवाज भी सुनने को मिल सकेगी ?'

'जी हाँ ! ज़रूर मिलेगी।' राजदूत ने पेई को संकेत किया।

पेई ने ध्वनि बजाकर सुनाया। सम्राट् ने पसन्द किया। 'मैं समझता

हूँ इसे सीखने में मुझे बहुत समय नहीं लगेगा ?'

'बिल्कुल नहीं। बहुत थोड़े सयय में सीख लेंगे। आज्ञा हो तो पेई राजक्कल तम्बिरन को ……।'

'अभी नहीं। महानवमी उत्सव के बाद।' फिर वह पुर्तगाल के सम्राट् एवं गोआ के राज्यपाल के विषय में पूछता रहा।

साम्राज्य द्वारा बने दूतावास में क्रिस्टाववो डी फिगिवरीडो के रहने का समुचित प्रबन्ध हो गया।

इकत्तीस

रामराज भूषण तालाब पर पहले से प्रतीक्षा में बैठा हुआ था। गोपा आई। भूषण उठ कर इधर आया। समीप आने पर गोपा ने प्रणाम किया। भूषण उसके पास बैठ गया। गोपा मुँह लटकाये चुप थी। कवि बोला 'मियाँ चले रोजे को और गले पड़ गई नमाज़—न प्रस्ताव रखता न यह गुमसुम वाली स्थिति आती। पहले तो बातचीत भी हो जाती थी, सदैव हँसता हुआ मुख मण्डल भी देखने को मिलता था परन्तु भाग्य को क्या कहें ? मैंने आपने हाथों अपने पैरों कुल्हाड़ी मारली है। सारी के चक्कर में आधी भी जाती रही।'

गोपा अब भी मौन रही।

भूषण पुनः बोला 'अनुमान लगाने में मेरी आँखें कभी धोखा तो नहीं खाती थीं किन्तु कुछ समझ में नहीं आ रहा है इस बार कैसे धोखा खा गईं। पत्थर जैसा कठोर निकलेगा—इसकी स्वप्न में आशा नहीं

थी। जहाँ सम्पूर्ण कोमलताओं का केन्द्रीकरण हो वहाँ यह अपवाद ? एक विचित्र बात है। ठीक कहा गया है जब दुर्दिन आते हैं तो आया हुआ हाथ में सोना भी मिट्टी बन जाता है।' कवि गंभीर वातावरण में सरसता लाना चाहता था।

गोपा फिर भी चुप रही।

भूषण ने गोपा को तनिक ध्यान से देखा। उसे कुछ अनुभव हुआ, 'कल मुझ से कुछ अनुचित हो गया गोपा ?'

'नहीं।' वह इतनी देर बाद धीरे से बोली।

'तब आज इस उदासीनता का कारण ? मैंने तो अपने हृदय की बात बतलाई थी और यह भी समझता हूँ कि तुम को उस पर अविश्वास भी नहीं होगा।'

'अविश्वास क्यों होगा प्रभु ?'

'फिर ?'

'अपने ऊपर अविश्वास है। मैं उस योग्य नहीं हूँ। हमारा वहाँ निर्वाह नहीं हो सकता। तालाब का मेढ़क नदी की बात क्या जाने ? भगवान ने छोटे-बड़े का बटवारा कुछ सोच कर किया है प्रभु। अगर पहले जन्म के कर्म अच्छे होते तो हमारा भी जन्म किसी कुलीन घर में हुआ होता। तब उस समय ......।'

'सो तो ठीक है किन्तु इस समय जो कुछ हो रहा है वह भी तो उसी की इच्छानुकूल है। क्या बिना उसकी मर्जी कभी ऐसा सम्भव था ?'

'नहीं।'

'तब तुम्हें चिन्तित होने की आवश्यकता ?'

गोपा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

'बोलो, उत्तर क्यों नहीं देती ? क्या तुम्हारी हठधर्मी किसी प्रकार उचित है ?'

'हम हठधर्मी तो नहीं कर रहे हैं प्रभु। माना उसी की इच्छा के

ग्राधार पर यह सब हो रहा है फिर भी बुद्धि कुछ-न-कुछ तो सोचती ही है। इसका भी बनाने वाला वही है न ?' गोपा ने पते की बात की थी।

कवि निरुत्तर हो गया। कुछ क्षणों तक मौन रहने के उपरान्त भूषण ने पूछा 'मेरे एक प्रश्न का सही-सही उत्तर दोगी ?'

गोपा ने अपनी पलकें उठाईं।

'तुम्हारे हृदय में मेरे लिये कोई स्थान है ?'

गोपा ने पलकें झुका लीं।

जवाब न मिलने पर उसने पुनः पूछा 'क्या मुझे इसका उत्तर नहीं मिलेगा ?' कवि भावुक होने के कारण अनाड़ी होता है। वह प्रत्येक से हथेली पर हृदय निकाल कर दिखाने की आशा रखता है।

वह फिर भी मौन रही। उत्तर क्या देती ?

'गोपा ·····।'

'क्या उत्तर दूँ प्रभु ?' उसे विवश होना पड़ा 'कोई उत्तर हो तब तो।' वह लजाकर अपने में सिकुड़ गई।

कवि की समझ में आगया। उसने गोपा की ठोड़ी पकड़ कर ऊपर उठाया 'हृदय में स्थान देकर जीवन में अलग रहने का प्रयास असम्भव है गोपा। क्या आयु की इतनी लम्बी अवधि शान्तिपूर्वक कट सकेगी ? मेरे संग-संग अपने जीवन को भी नष्ट कर लेना चाहती हो ? तुम्हारे बिना यह जीवन कटना दूभर हो जायेगा। मेरे पास अब अपना कहने को कुछ शेष नहीं रह गया है।'

गोपा ने ठोड़ी हटा ली और पास रक्खे कपड़ों को हाथ में समेटने लगी परन्तु उठी नहीं। भूषण ने उसका संकेत समझा। उसने इधर-उधर देखा। सूरज डूब चुका था। उसने अनुमति दी 'नहाने जाओ। कल यदि अवकाश मिले तो कुछ पहले आ जाना।'

× × ×

दूसरे दिन गोपा कुछ जल्दी ग्राई। सम्भवतः उसके ग्रन्तःकरण ने कवि के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था। यद्यपि भूषण ने गोपा को कुछ पहले ग्राने के लिये कहा था; परन्तु ग्राज वह स्वयं उसके ग्राने के पश्चात् ग्रा सका था। भूषण के समीप ग्राकर बैठ जाने पर भी गोपा गर्दन उठा कर देखने में ग्रसमर्थ हो रही थी। ग्राँखों की लज्जा बढ़ गई थी। ग्राज संकोच भी लगने लगा था।

'नित्य चार कोस चल कर ग्राने पर भी जब लोगों का हृदय नहीं पसीजता तो ग्राने से क्या लाभ ? कितनी-कितनी बातें कहना चाहता हूँ परन्तु किसको गरज पड़ी है दूसरों के दुःख को सुनने की। लोग गर्दन उठा कर देखना भी नापसन्द करते हैं। सम्भवतः ब्रह्मा ने स्त्री-सुख भाग्य में लिखा ही नहीं है।' भूषण ने वार्तालाप ग्रारम्भ किया।

'दुख दर्द कान सुनते हैं, ग्राँखें नहीं। जिन्हें कुछ कहना हो कह सकते हैं। मैं सब सुन रही हूँ।' गोपा ने ग्रौर गर्दन नीची कर ली।

'परन्तु, बड़ों का ग्रनुभव है कि जब तक कहने ग्रौर सुनने वाले एक दूसरे के नेत्रों में नेत्र डाल कर देख न लें तब तक न तो सुनने वाले को वास्तविकता का ग्रनुमान लग पाता है ग्रौर न कहने वाले को ग्रपनी गाथा सुनाने में संतोष हो पाता है।'

'मेरी ग्रोर से ग्राप निश्चिन्त रहें। हमें वास्तविकता का ग्रनुमान बिना देखे हो जाता है। जो कहना है ग्राप कहें।' गोपा का ग्रंग-ग्रंग ग्राह्लादित था।

'किन्तु मेरे संतोष के लिये क्या होगा ? प्रार्थी का कुछ तो ध्यान रक्खा जाय ?'

गोपा ने गर्दन हिलाई 'यह मेरी इच्छा की बात है। प्रार्थी को सुझाव देने का कोई ग्रधिकार नहीं है। हम जैसा ठीक समझते हैं करते हैं।'

भूषण ने कुछ सोचा ग्रौर ग्रकस्मात लेट गया। 'इसके ग्रधिकारी तो हम हैं ?' दोनों की ग्राँखें एक दूसरे से मिल गई थीं।

गोपा ने तत्काल अपनी हथेलियों से मुँह ढंक लिया। 'हम भी तो इसके अधिकारी हैं ?'

रोम-रोम में फैली हुई व्याकुलता अब कहाँ अपने को रोक सकती थी। पुरुष ने युवती को खींच कर अंक में भींच लिया—'तो मैं भी इसका अधिकारी हूँ।' उसके होंठ गोपा के होठों से जा सटे। गोपा विवश थी।

'किसी की......।' गोपा ने पट्टी पढ़ाई।

भुजायें ढीली पड़ीं। गोपा की चतुरता काम कर गई। वह उठकर भागी। कवि चकमा खा गया। वह भी उठा 'देखता हूँ भाग कर कहाँ जाती हो। इस बार पकड़ कर बताऊँगा।' उसने पीछा किया।

गोपा ने उँगुली विरा दिया—'पहले पकड़ में तो आऊँ।' वह पेड़ों में इधर-उधर चक्कर काटने लगी। प्रेम के संसार में दोनों अपने को भूल चुके थे।

भूषण, गोपा के समीप होता गया। गोपा ने अनुभव किया कि वह शीघ्र पकड़ी जायेगी। उसको बुद्धि ने नया उपाय सुझाया। वह तालाब की ओर भागी और झम से पानी में कूद पड़ी। कवि को मात खानी पड़ी। गोपा ने पानी के ऊपर आकर जीभ बिराया—'बस ! समझ गये न प्रभु अपनी शक्ति ?'

'अभी निकलो तो अपनी शक्ति का परिचय देता हूँ।' वह जिधर गोपा के कपड़े रक्खे थे उधर को चलने लगा।

गोपा भी तैरती हुई उधर बढ़ने लगी 'हम निकलेंगे ही नहीं। देखें आप कब तक प्रतीक्षा करते हैं ?'

'ठीक है। यही आज देखना है।' वह मुड़ता हुआ कपड़ों के पास आकर नीचे सीढ़ियों पर बैठ गया।

गोपा भी गर्दन भर पानी में आकर खड़ी हो गई। दोनों एक दूसरे को कुछ क्षणों तक निहारते रहे। हृदय में सजाते रहे। अन्त में

गोपा ने मौन भंग किया, 'उठेंगे या यों ही आसन लगाये बैठे रहेंगे ? समझ तो आदमियों में बिल्कुल होती ही नहीं। जैसे स्वयं स्वच्छन्द घूमते हैं वैसे दूसरों को भी घुमाना चाहते हैं, उठिये।'

भूषण हंसता हुआ खड़ा हो गया। 'जब कुछ भी करते न बना तो रोना आरम्भ कर दिया।' वह सीढ़ियों पर ऊपर चढ़ने लगा।

ऊपर पहुँच कर उसने मुड़ कर गोपा को देखा। गोपा ने दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम किये। कवि चला गया।

बत्तीस

राजकुमारी तिरुमलाम्बा दिन प्रति दिन आगे को बढ़ती गई। रामराय उसके हृदय में आराध्यदेव की भाँति बैठ गया था। वह दिन-रात उसी को कल्पनाओं में सजाने लगी थी। यद्यपि वह जानती थी कि रामराय से विवाह सम्बन्ध सम्भव नहीं है परन्तु उसने यह भी निर्णय कर लिया था कि यदि वह विवाह करेगी तो रामराय से; अन्यथा विष खाकर अपने जीवन को समाप्त कर लेगी। वह रामराय के अतिरिक्त दूसरे को अपना प्रेम नहीं दे सकती। वह उसकी हो चुकी है और जब तक जीवित रहेगी उसीकी हो कर रहेगी। न उसे धन वैभव की लालसा है, न सुख-एश्वर्य की। उसे केवल रामराय की भूख है और वही उसके लिए सर्वस्व है।

इधर रामराय भी मकड़ी के जाले में फंसे हुए पंतगे की भाँति दिन

पर दिन असहाय बनता चला जा रहा था। वह अपना अस्तित्व धीरे-धीरे खोता जा रहा था। तिरु की भावनायें, रूप, गुण, विचार तथा नित्य नेत्रों द्वारा व्यक्त होती हुई प्रेम की परिभाषा उसे कुछ सोचने नहीं देती थी। वह हर तरफ से घिर गया था। यद्यपि ठोकर खा लेने के कारण वह जब तब अपनी स्थिति पर सोचने विचारने लगता था परन्तु तिरु के सम्मुख होते ही वह सब कुछ भूल कर शलभ की भाँति दीपक की ओर अनायास बढ़ जाता। निस्सन्देह तिरु से उसकी कोई तुलना नहीं थी परन्तु यह भी सन्देह रहित था कि राजकुमारी के हृदय में उसके लिए अटूट प्रेम था और वह दिन प्रति दिन दृढ़ भी होता जा रहा था। उसका विश्वास नित्य के सहवास के निष्कर्ष को देख कर पुष्टि के साथ-साथ बढ़ावा भी देता जा रहा था परन्तु फिर भी मन में चोर अभी वर्तमान अवश्य था।

एक दिन एक राग बजाने के उपरान्त तिरु बोली 'आज सम्भवत: मन किसी चिन्ता में भटक रहा है। कोई विशेष बात है ?' रामराय की गंभीर मुद्रा से ऐसा ही विदित हो रहा था।

'नहीं। यों ही मस्तिष्क में एक उलझन आ खड़ी हुई है।'

'कैसी ?'

'नीति कहती है कि बैर और प्रीति अपने बराबरी वालों में करना चाहिए; अन्यथा इसका परिणाम कमज़ोर पक्ष वाले के लिए घातक सिद्ध होता है। परन्तु ऐसा क्यों है यह मैं अभी तक नहीं समझ सका हूँ। यद्यपि जहाँ तक प्रश्न बैर का है उसके लिए तो इस नीति का कुछ अंशों तक पालन हो सकता है परन्तु प्रीति भी नीति में बंधकर चलती है यह समझ में नहीं आ रहा है। मैं समझता हूँ आप भी इसे नहीं समझ रही होंगी ?' रामराय बड़ी चतुरता से अपने मन की बात पूछ रहा था।

'नहीं। यह नीति अपने में कोई बुनियाद नहीं रखती।'

'परन्तु हज़ारों वर्ष के अनुभव पर बनी इस नीति का कुछ न कुछ आधार तो होगा ही ?'

'आधार क्या होगा ? क्या पूर्वजों के सारे कथन सत्य और अकाट्य हैं ? क्या वे ग़लती नहीं कर सकते थे ? विचारों की परिपक्वता सभ्यता के साथ-साथ बढ़ती है। ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ेगी विचार उतने ही गूढ़ और परिष्कृत होंगे। उनकी नीति यदि रोज़ मिलने-जुलने वाले प्रीति से मत-लब रखती है तब तो किसी सीमा तक ठीक है किन्तु जहाँ प्रश्न हृदय से सम्बन्ध रखने वाली प्रीति का है वहाँ यह बिल्कुल असंगत और अमान्य है।' तिरु को भी अपना हृदय खोलकर दिखाने का अवसर मिल गया था।

रामराय ने प्रश्न को आगे बढ़ाया 'सहवास के द्वारा ही तो प्रीति की उत्पत्ति होती है। बिना मिले-जुले एक दूसरे को समझना कठिन है और समझे बिना प्रीति की नींव में दृढ़ता नहीं आ सकती। प्रीति को चिरस्थायित्व देने के लिए नित्य का मिलन आवश्यक है।'

वह हँस पड़ी 'वाह। यह तर्क आपने खूब रक्खा। विवाह के पूर्व कितने दम्पत्ति को मिलने-जुलने का अवसर मिलता है फिर भी उनके प्रेम में क्या चिरस्थायित्व नहीं है ? क्या वे एक दूसरे को जीजान से चाहते नहीं हैं या एक दूसरे के लिए वे अपना सर्वस्व न्यौछावर नहीं करते ?' तिरु ने कनखियों से रामराय को देखा। उसने ऐसा उत्तर किसी प्रयोजनवश दिया था।

'क्यों नहीं करते परन्तु समय पड़ने पर एक दूसरे के प्राण के भी तो प्यासे बन जाते हैं,' रामराय का संकेत अन्नपूर्णा की ओर था 'राज-कुमारी जी, विवाह का बन्धन प्रेम का बन्धन नहीं है वह प्रतिज्ञाओं का बन्धन है। वहाँ अग्नि को साक्षी देकर जीवन भर निभाने का वचन दिया जाता है।'

'और नल-दमयन्ती के प्रेम को आप किस प्रकार का प्रेम कहेंगे ? अग्नि में दहकते हुए लोहे के लाल खम्भे से चिपट कर प्राण देने के लिए तत्पर होने वाले प्रह्लाद के प्रेम को आप क्या कहेंगे ? शबरी के बेरों में पुरु-षोत्तम राम को जो मिठास मिली थी क्या वैसी मिठास उन्हें कहीं

श्रौर प्राप्त हो सकी थी ?' तिरु जैसा कहना चाहती थी वैसा उसने अब कह दिया था।

'ये दृष्टान्त अपवादों की श्रेणी में आते हैं राजकुमारी जी; सर्वसाधारण में नहीं। हर एक के वश की यह वस्तु नहीं है।'

'प्रेम भी तो अपवाद है। हर एक को कहाँ सुलभ है श्रौर जहाँ तक मैं समझती हूँ जिसे सुलभ है वही एक लीक भी बना सकता है। संसार के समक्ष एक आदर्श उपस्थित कर सकता है।' तिरु जहाँ तक अपने को व्यक्त कर सकती थी कर रही थी।

रामराय चुप हो गया। उसकी दृष्टि तिरु के मुखमण्डल पर जाकर टिक गई। तिरु ने आँखें नीची करलीं 'आप बड़े ध्यान से मुझे देखने लगे। सम्भवतः मेरी बातों पर आपको विश्वास नहीं हो रहा होगा।'

'नहीं। बिल्कुल विश्वास है।'

'फिर ?'

'सोच रहा था कि मैं भी उस लीक पर चलने योग्य हूँ अथवा नहीं। मेरी विसात तो तुलना में एक प्रकार से नहीं के बराबर है। इसलिये मैं देने लायक तो हूँ नहीं, हाँ संजो कर जीवनपर्यन्त अवश्य रख सकता हूँ। क्या इतना विश्वास मुझ पर किया जा सकता है ?' रामराय ने बाजी लगा दी। वह कहाँ तक अपने को रोकता।

तिरु की मौनता ने स्वीकृति दे दी। दोनों की आँखें एक दूसरे से मिलकर हृदय तक पहुँच गईं। अंग-अंग में प्रसन्नता फैल गई।

'मैं कल श्रीरंगपट्टन जा रहा हूँ।'

'कल ?'

'हाँ।'

'क्यों ?'

'एक आवश्यक कार्य आ गया है।' रामराय ने झूठ कहा था।

'क्या महानवमी बाद नहीं जा सकते ?'

'ऊँहूँ। त्यौहार समाप्त होने के पूर्व लौट आऊँगा। इधर अवकाश भी है वरना बाद में कहाँ मिलने का? राजक्कल तम्बिरन को किसी भी समय मेरी आवश्यकता पड़ सकती है।'

'पर मैं समझती हूँ कि इतनी जल्दी आप के लिए लौटना सम्भव नहीं हो सकेगा।'

'विवशता के पीछे यहाँ से जाना हो रहा है राजकुमारी जी; अन्यथा आप से दूर जाने की किसी की इच्छा हो सकती है?'

'अच्छा। यह भी स्थिति आ गई?'

'क्या करें? विवशता है। अपने वश में होता तो समझा भी देते। अब वह दूसरे के पास जो चला गया है।'

'किस के पास?' वह जान-बूझकर अनभिज्ञ बन गई।

'जानकारी तो मुझे भी नहीं है; किन्तु किसी के पास चला अवश्य गया है।'

'तब तो बड़े भाग्य वाला वह व्यक्ति है। आप तो अब कहीं के न रहे? प्रभु की माया विचित्र है।'

'विचित्र नहीं बड़ी विचित्र है राजकुमारी जी और आप को यह सुन कर आश्चर्य होगा कि मुझे बुरा लगने के स्थान पर यह सब अच्छा लगने लगा है। इच्छा होती है कि जो कुछ कहने को शेष रह गया है अब वह भी उनके पास चला जाय।'

'वाह। आज तो बड़ी नई-नई बातें सुनने में आ रही हैं। मालूम पड़ता है इस क्षेत्र का आपको काफी अनुभव है।' तिरु ने गर्दन झुकाकर अपनी मुसकराहट छिपा ली।

रामराय घिर गया। वह चक्कर में पड़ गया परन्तु तत्काल संभल कर बोला—'काफी नहीं लेकिन थोड़ा-बहुत तो अवश्य है।'

'हाँ हाँ, बिना अनुभव के इतना अन्दाज़ हो नहीं सकता और यह भी सत्य है कि अभी तक आपने लेना अधिक चाहा है देना कम। ठोकर खाने पर यह रास्ता समझ में आया है।'

रामराय ने अकस्मात अपने दोनों हथेलियों के बीच तिरु की कोमल हथेली को दबा लिया 'ईश्वर ने लेने योग्य कहाँ बनाया है राजकुमारी जी ? आप का प्रेम मुझ जैसे व्यक्तियों को प्राप्त हो, इसे पूर्व जन्म की तपस्याओं का ही तो फल कहेंगे। मुझे क्या मिल गया है मैं आप से कैसे बताऊँ ? इसके लिये स्वर्ग भी अवांछनीय है।'

तिरु ने धीरे से हाथ खींच लिया और तारों को टुनटुनाने लगी। तब तक किसी के आने की आहट मिली। चित्रपुष्पी शरबत लेकर आ रही थी।

× × ×

महानवमी के अवसर पर रामराय के पिता रंगराय का आना निश्चित था अतः रामराय ने हम्पी छोड़ कर कहीं चला जाना उचित समझा था। सम्भव था उसका भेद खुल जाता। यद्यपि भेद खुलने में उसे लाभ था परन्तु उसके मन की बात कोई क्या जाने ? उसने नहीं रुकने का ही निर्णय किया था।

तैंतीस

विजयनगर की महानवमी अर्थात् दशहरा राष्ट्रीय उत्सव था। इसे नौ दिनों तक बड़े समारोह के साथ मनाया जाता था। देश के कोने कोने से लोग इसे देखने आते थे। लगभग पन्द्रह दिनों तक साम्राज्य के सारे कार्यालय बन्द रहा करते थे। इस अवसर पर प्रत्येक मण्डलेश्वर की ससैन्य उपस्थिति अनिवार्य होती थी। उत्सव के अन्त में सम्राट् सेनाओं का निरीक्षण करके अपनी शक्ति का अनुमान लगाता था।

इसके अतिरिक्त समस्त सेना को एकत्रित करने का दूसरा प्रयोजन यह भी था कि अधिकतर युद्ध की घोषणा इसी अवसर पर हुआ करती थी।

कुवार मास चढ़ा। हम्पी में धूमधाम बढ़ी। दूर-पास से लोग आने लगे। दूकानदारों की आमदनी बढ़ी और दिन-दिन बढ़ती गई। ससैन्य एक-एक करके मण्डलेश्वर भी आये जिनमें रामराय का पिता रंगराय भी था। मूलवापी का मण्डलेश्वर सबसे पीछे आया। उसके साथ उसका पुत्र विशभदेव भी था। लगभग दो वर्षों के बाद उसे हम्पी देखने को मिली थी। अलग-अलग मण्डलेश्वरों के अलग-अलग शिविर पड़ गये।

हम्पी में पहुंचने पर विशभदेव का पहला कार्य था नीलाम्बई से भेंट करना। उसने अपने आगमन की सूचना उसे दे रक्खी थी।

नीलाम्बई छत पर चाँद से रूप का होड़ लगाये सुखद कल्पनाओं में विशभदेव की प्रतीक्षा कर रही थी कि किसी ने दबे पाँव आकर उसकी आँखों को मूंद लिया। नीलाम्बई हाथ जोड़ती हुई बोली 'प्रभु को मेरा नमस्कार स्वीकार हो।'

विशभदेव हँसता हुआ सामने बैठ गया। वह नीलाम्बई को निहारने लगा था।

'प्रभु कुछ दुर्बल दिख रहे हैं। इधर अधिक व्यस्त रहना पड़ा है क्या ?'

विशभदेव ने गर्दन हिलाकर हाँ किया।

'अब तो सब ठीक है ?'

'हाँ।'

'हम्पी में कब तक रुकने का विचार है ?'

'जब तक तुम चाहो।'

'इतना मूल्य कहाँ है प्रभु; अन्यथा यह पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ती।'

'बातों में बड़ी चतुर हो नीलाम्बई। अपना दोष मेरे सिर रख दिया। खैर और सुनाओ हम्पी के कोई नये समाचार।'

'कोई विशेष नहीं। सब समान रूप से चल रहा है। हाँ एक नये कलाकार का आगमन अवश्य हुआ है जो वीणा वादन में अद्वितीय हैं। आप उनकी वीणा सुनकर झूम उठेंगे।'

'अच्छा ! कहाँ के रहने वाले हैं।'

'श्रीरंगपट्टन के। आजकल राजकुमारी उन्हीं से वीणा सीखती हैं।'

'राजकुमारी से तो मैं भी मिलना चाहता था परन्तु उत्सव के पहले कोई सूरत नहीं दिखलाई पड़ रही है।'

'नहीं। कल भेंट हो सकती है। अपनी सहेलियों के संग उन्होंने गोठ का कार्यक्रम बना रक्खा है। उनका अभिप्राय राजक्कल तम्बिरन द्वारा नवनिर्मित नहर देखने का है। सुना है राजक्कल तम्बिरन ने बड़ी भव्य नहर बनवाई है। उसमें बड़े-बड़े द्वार भी लगे हैं।'

'कल राजकुमारी किस समय जा रही हैं ?'

'सवेरे। मुझे भी चलने के लिये कहा था; किन्तु राजक्कल तम्बिरन के आदेशानुसार उसी समय हमें उत्सव सम्बन्धी बातें करने के लिये उनके पास जाना है।' नीलाम्बई की समझ अनोखी थी। उसने पहले से ही अपने को अलग कर लिया 'आप कल राजकुमारी से वहीं भेंट कर लें।'

विशभदेव ने दूसरी वार्ता आरम्भ कर दी।

× × ×

विशभदेव का रथ शिखर से उस समय निकला जब उसने अनुमान लगा लिया कि राजकुमारी अपनी सहेलियों संग नहर पर पहुँच गई होगी। वह मार्ग बदलता हुआ चक्कर लगाकर उस मार्ग से नहर की ओर बढ़ा जो बाहर से नगर में आता था। रथ जहाँ पहुँचना चाहिये था पहुंच गया। विशभदेव ने राजकुमारी को दूर से देख लिया था परन्तु उसने रथ न रोक कर उसे आगे बढ़ने दिया। उसने जान-बूझकर अपनी आँखें दूसरी ओर कर ली थीं। रथ समीप से होकर आगे बढ़ा ही था कि उसने गर्दन मोड़ कर पीछे को देखा और झटके से रथ को रोक लिया।

वह व्यक्त करना चाहता था कि उसने राजकुमारी को देखकर ही रथ रोका है। वह रथ एक ओर खड़ा करके उतर पड़ा।

तिरुमलाम्बा ने आगे बढ़ कर नमस्कार किया 'वर्षों बाद इस बार हम्पी आना हुआ है।' उसने पूछा।

'हाँ। लगभग दो वर्ष बाद। राज्य के कुछ भागों में उपद्रवों का तारतम्य ऐसा बढ़ गया था कि उन्हें प्रजा के हित के लिये पूर्ण रूप से कुचल देना अत्यन्त आवश्यक हो गया था और इसी में आजकल-आजकल करते-करते दो वर्ष बीत गये।' दोनों संग-संग चल रहे थे, 'ये दो वर्ष जिस प्रकार कटे हैं उसे हृदय ही जानता है। होली की बात मन को बेधा करती थी परन्तु परिस्थितियों ने सब सहने के लिये विवश कर दिया था।' विशभदेव चुप हो गया। दोनों एकत्रित युवतियों के समीप पहुँच गये थे।

'इसके पहले इधर और कभी आपका आना हुआ है?' तिरु ने पूछा।

'नहीं। आज प्रथम अवसर है।'

'तो आइये आपको नहर की विशेषता दिखा लाऊँ?' तिरु का प्रस्ताव किसी अभिप्रायवश था।

विशभदेव के मन की हो गई। वह प्रसन्न था। दोनों सड़क पार करके नहर की पटरी पर आये, 'सुना,' विशभदेव बोला 'इस वर्ष राजक्कल तम्बिरन द्वारा लिखित जाम्बवती कल्याणम् नाटक अभिनीत किया गया था?'

'हाँ। बड़ा सफल रहा। एक-एक··· ।'

'और यह भी सुनने में आया है कि नाटक का प्रारम्भ राजकुमारी तिरुमलाम्बा के नृत्य से हुआ था जिसकी प्रशंसा आज दिन भी लोग करते हुये थकते नहीं हैं। समय-समय की बात है। जिसे जो वस्तु नहीं बदा है तो नहीं बदा है। कब से आँखें तरस रही हैं किन्तु क्या किया जाय? खैर, कभी-न-कभी तो अवसर आयेगा ही।'

राजकुमारी चुप रही।

जिस उत्सुकतावश विशभदेव का यहाँ आना हुआ था उसकी उसने जानकारी की 'पिछली बार राजोद्यान में मेरे एक प्रश्न का उत्तर होली में देने के लिये वचन दिया गया था। राजकुमारी जी उसे भूल तो नहीं गई हैं ?'

'नहीं। किन्तु उसके लिये मैं असमर्थ हूँ।'

विशभदेव के हृदय को जैसे किसी बलिष्ठ पंजे ने दबा दिया हो। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ 'मेरा मतलब······।'

'मुझे स्मरण है विशभदेव जी। वैवाहिक सम्बन्ध सम्भव नहीं है। मैं अपनी त्रुटि के लिये क्षमा चाहूँगी। मेरा आशय आप समझ रहे होंगे।' तिरु ने यदि सम्बन्ध विच्छेद की बात की तो दूसरी ओर अपनी गलती भी स्वीकार कर ली। उसी के प्रोत्साहन पर तो विशभदेव ने यह प्रस्ताव रक्खा था।

विशभदेव रुक गया 'अब लौटिये।'

राजकुमारी लौट पड़ी। दोनों मौन थे।

× × ×

राजप्रासाद 'मलयकूट' के पूर्वी द्वार से प्रवेश करने पर एक मैदान मिलता था। मैदान पार करने पर उसी प्रकार का एक दूसरा द्वार था और उस द्वार के बाद एक और मैदान था जो पहले वाले मैदान से अधिक लम्बा-चौड़ा था। अन्दर वाले द्वार से कुछ हट कर गहरे लाल तथा हरे मखमल से आच्छादित ग्यारह खंडों का गगनचुम्बी मचान था जो अभी-अभी बनकर तैयार हुआ था। यहाँ बैठकर नागरिक महानवमी उत्सव का आनन्द लिया करते थे। मैदान के दाहिने और बायें पार्श्व में पक्के बरामदे थे जिनमें मखमली गद्देदार कुर्सियाँ लगा दी गई थीं। बरामदों को कई भागों में विभाजित किया गया था। सम्भवतः यह विभाजन सामन्त सरदारों, विभिन्न सेनापतियों, नायकों, बड़े-छोटे राज कर्मचारियों और विशिष्ट नागरिकों के वर्गीकरण के विचार से था। ठीक मचान के सामने इस ओर भीमकाय स्तम्भों पर, जो गजों के

आकार के थे, दो खंड का एक अत्यन्त शोभनीय भवन था। भवन की शोभा बढ़ाने के विचार से फर्श पर, छतों में, दीवारों पर ज़री के काम की हुई मखमली चादरें लगा दी गई थीं। दीवार का कोई भाग कहीं से दिखलाई नहीं पड़ रहा था। इस भवन के आगे खुला छज्जा था जिसमें मखमली कुर्सियाँ लगी हुई थीं। छज्जे में की हुई नक्कासी अद्वितीय थी। नीचे का खंड राजपरिवार तथा उन अन्य व्यक्तियों के लिये था जो सम्राट् के अधिक निकट सम्पर्क में समझे जाते थे। सबसे ऊपर वाले खंड पर सम्राट् तथा जब कभी आने वाले उसके श्वसुर या किसी अन्य देश के राजागण हुआ करते थे। छज्जे के पीछे कमरे में सोने के ऊँचे सिंहासन पर भगवान की मूर्ति होती थी। पूजा के उपरान्त ही महानवमी का उत्सव आरम्भ होता था। पूजा स्वयं सम्राट् करता था। इस भवन में सम्राट् के चढ़ने-उतरने के लिये अलग सीढ़ी बनी हुई थी।

बीच का खुला मैदान लोहे की छड़ों से घिरा हुआ था। इसी खुले मैदान में नौ दिनों तक विविध प्रकार के आयोजनों को जनता एकत्रित होकर देखा करती थी।

महानवमी उत्सव का सारा प्रबन्ध तथा उसकी पूरी ज़िम्मेदारी सम्राट् के अंगरक्षों के प्रधान कम्मानायक की थी। उसके प्रबन्ध में महामंत्री के अतिरिक्त अन्य कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। यहाँ तक कि अनुमति-पत्र जो वितरित होते थे उन सब पर भी नायक के ही हस्ताक्षर हुआ करते थे। अनुमति-पत्र के द्वारा ही मण्डप में प्रवेश करने की प्रणाली थी। पत्रों की जाँच बड़ी सख्ती के साथ दोनों द्वारों पर की जाती थी। छोटे से बड़े तक किसी भी व्यक्ति को किसी प्रकार का हथियार धारण करके मण्डप में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं थी।

भीतर बाहर बल्लमधारी सैनिकों की पूरी-पूरी तैनाती हो गई। उत्सव आरम्भ हुआ। मचान और द्वार के मध्य में छड़ों से घिरे हुये एक गोल स्थान के भीतर नर्तकियों ने नृत्य प्रारम्भ कर दिया और यह नृत्य अनवरत गति से उत्सव समाप्त होने तक चलता रहता था। बहुत

तड़के से लोगों का आगमन शुरू हुआ। धीरे-धीरे भीड़ बढ़ने लगी और कुछ समय बाद एक प्रकार से ताँता जैसा बंध गया। दूर तक मार्ग पर सिरों के अतिरिक्त और कुछ दिखलाई नहीं पड़ रहा था। थोड़ी देर बाद सवारियों की संख्या बढ़ी। घोड़े, हाथी और रथों से उत्पन्न धमक ने कोलाहल-पूर्ण वातावरण को अधिक कोलाहलमय बनाना आरम्भ कर दिया। सरदार, सेनापति, मण्डलेश्वर तथा राज्यपदाधिकारी सभी एक-एक करके आने लगे और देखते-देखते पंडाल भर गया।

पंडितों के बताये हुए समय के अनुसार सम्राट् आया और उसी भवन के ऊपरी कक्ष में जा पहुँचा। चारों ओर के पर्दे गिरा दिये गये। ब्राह्मणों के साथ सम्राट् ने भगवान की अर्चना की तदुपरान्त वह बाहर छज्जे पर आया। एकत्रित समूह खड़ा हो गया। ठीक छज्जे के नीचे सुसज्जित श्वेत रंग के आठ घोड़े पंक्तिबद्ध खड़े थे। इन घोड़ों के पीछे नाना प्रकार के अलंकरणों से अलंकरित चार हाथी थे। सम्राट् के पीछे-पीछे एक ब्राह्मण चांदी के बड़े थाल में सफेद गुलाब पुष्प तथा इत्र इत्यादि लेकर आया। सम्राट् ने तीन बार मुट्ठियों में फूल भर कर घोड़ों पर गिराया तदुपरान्त उन पर इत्र छिड़के। इसी प्रकार उसने अपने हाथियों पर भी किया। तब थालधारी ब्राह्मण नीचे आया। उसने प्रत्येक घोड़े के सिर पर पुष्प चढ़ाये। साथ ही सब के मस्तकों पर उसने इत्र भी लगाया और लौट गया। सम्राट् पुनः कक्ष के अन्दर चला गया। यथा स्थान सब लोग बैठ गये।

इसके उपरान्त चौबीस भैंसे और डेढ़ सौ मेढ़ों की बलि चढ़ी। सम्राट् पुनः भगवान की कुछ समय तक पूजा वन्दना करता रहा तदुपरान्त बाहर छज्जे में आकर सिंहासन पर बैठ गया। एक-एक करके प्रत्येक मण्डलेश्वर ने आकर अभिवादन किया और उपहार भेंट किये। इनके जाने के बाद सरदार, सामन्त, सेनापति, साम्राज्य के प्रमुख पदाधिकारी सब क्रमशः आते गये और अभिवादन करके लौट गये। इस प्रकार यह कार्यक्रम दिन के एक बजे तक चलता रहा। इसकी समाप्ति

पर सम्राट् उठकर महल के अन्दर चला गया।

छड़ों से घिरे हुए क्रीड़ा स्थल के बीच बड़ी-बड़ी चौकियां लाकर डाल दी गईं और उन पर दरियाँ विछा दी गईं। रूप यौवन में मदमाती सैंकड़ों नर्तकियों ने आकर नृत्य दिखाना आरम्भ किया और नृत्य का यह सिलसिला लगभग दो घन्टे तक चलता रहा। तीन बजते-बजते महामंत्री सालुव तिम्म का आगमन हुआ। नृत्य बन्द हो गया। चौकियां हटाई गईं। महामंत्री ने इधर-उधर घूम कर अन्य प्रबन्धों को देखा। स्थान-स्थान पर नियुक्त सैनिकों में सतर्कता आई। सम्राट् के आगमन का समय हो चला था।

थोड़ी देर बाद सम्राट् ने आकर सिंहासन पर स्थान ग्रहण किया। प्रत्येक ने खड़े होकर अभिवादन किया। सम्राट् ने बैठते हुये हाथ उठा कर सबको बैठने का संकेत किया। इस वर्ष विशेष अतिथियों में तिरुमलाम्बा का मामा कुमारवीर था जो भविष्य में श्रीरंगपट्टन का उत्तराधिकारी होने वाला था। सम्राट् श्वेत राजसी वस्त्रों में था। सिंहासन के पीछे खासबरदार अनगिनित मोतियों, हीरों और जवाहरातों से पिरोई हुई अत्यन्त सुन्दर छतरी लिये खड़ा था। उसके पार्श्व में एक और खासबरदार था जिसके हाथ में रत्नजड़ित एक तलवार थी। सम्राट् के अगल-बगल दो खासबरदार खड़े चँवर डुला रहे थे, जिनकी मूठें सोने की थीं।

कार्यक्रम आरम्भ हुआ। प्रथम स्त्रियों के कई जोड़ दंगल हुए जिन में विजयी पक्ष सम्राट् द्वारा पुरस्कृत हुआ। इसके पश्चात पुरुषों के मुष्ठि-युद्ध का आयोजन हुआ। न्यायकर्त्ता के आ जाने पर दो-दो पहलवानों की जोड़ी मैदान में आई। मुष्ठि-युद्ध में प्रत्येक खिलाड़ी को खुल कर मुट्ठी प्रहार करने की छूट थी। गिर कर पुनः न उठने वाला व्यक्ति पराजित समझा जाता था। यह खेल जहाँ पुरुषों को मनोरंजन देता था वहाँ स्त्रियों को रुलाता भी था। खिलाड़ियों के दाँत टूट जाते, आँखें बाहर निकल आतीं, मुँह भरता हो जाता और हाथ पैर भी टूट जाते थे। यह खेल जब तक चलता रहता स्त्रियों के मुँह से 'सी-सी' सुनाई

पड़ती ही रहती थी। मुष्ठि-युद्ध के बाद 'कोलाट'* के नाना प्रकार के प्रदर्शन प्रदर्शित हुए।

संध्या का आगमन हुआ। परकोटों के छेदों में मशालें जला दी गईं। क्रीड़ा स्थल के चारों ओर लगी छड़ों की मशालें भी जला दी गईं। धीरे-धीरे दूसरी मशालें भी जलीं और इतनी जलीं कि सम्पूर्ण मण्डप दिन की भाँति प्रकाशित हो उठा। फिर विभिन्न प्रकार के खेल-तमाशे होने लगे—कोई हाथी पर नया खेल दिखाता हुआ आकर चला जाता तो कोई घोड़े की पीठ पर उसकी दुलत्तियों के साथ उछलता हुआ विचित्र भाव मुद्राओं को दिखला कर लोगों को हँसाता-हँसाता लौट जाता। नाना प्रकार के वस्त्रों से अपने को संवारे हुए मसखरे नर्तकियों के साथ आये। मटके मटकाये, हास्य भरे गीत सुनाये और अत्यधिक मनोरंजन देकर चले गये। इन खेलों के समाप्त होने पर आतिशबाज़ी शुरू हुई और इतनी हुई कि सम्पूर्ण आकाश मण्डल प्रकाशित होकर स्वर्ग के देवताओं को चुनौतियां देने लगीं कि यदि ब्रह्मांड में कहीं सचमुच स्वर्ग है तो वह है विजयनगर साम्राज्य की राजधानी विजयनगर।

आतिशबाज़ी समाप्ति पर सुन्दर सजे हुए रथों ने मंडप में प्रवेश किया। सब से आगे वाला रथ अप्पाजी का था। उसके पीछे मण्डलेश्वरों का, तदुपरान्त सेनापतिओं, सरदारों और नायकों का था। यह प्रदर्शन रथों की सजावट का था। सजावट के कितने रूप कितने ढंगों से उपस्थित किये जा सकते थे—यही इसकी विशेषता थी। ये रथ क्रीड़ा-स्थाल के चारों ओर चक्कर लगाकर बाहर निकल गये। तत्पश्चात् कुछ सुसज्जित अश्वों का एक जत्था आया। जत्थे का आगे वाला घोड़ा अन्य घोड़ों से अधिक सजा हुआ था जिस पर बैठे हुए व्यक्ति के हाथों में दो छतरियाँ मणि-माणिक्यों से गुथी हुई शोभायमान थीं। ये छाते साम्राज्य के प्रतीक थे। आगे वाले घोड़े को छोड़कर शेष सभी घोड़ों के पैरों में घुँघरू बंधे हुए थे। क्रीड़ा-स्थल में प्रवेश करते ही घोड़ों ने विशेष प्रकार से पैरों को उठा-

*कोलाट—लकड़ी खेलना।

उठा कर नाचना आरम्भ किया। सब के पैर संग-संग उठते और संग-संग गिरते थे। साथ ही उनकी पंक्तिबद्धता भी ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी। दर्शकों को यह नाच बड़ा प्रिय लगा। उन्होंने सिखलाने वाले की बड़ी सराहना की।

इस प्रकार नाचते हुये घोड़ों ने दो बार मैदान के चक्कर लगाये तदुपरान्त सम्राट् की ओर मुँह करके पाँच-पाँच की कतार में एक के पीछे एक खड़े हो गये। तब दो ब्राह्मणों सहित राजगुरु रंगनाथ दीक्षित आये। राजगुरु के हाथों में एक नारियल, अक्षत और कुछ फूल थे। दोनों ब्राह्मण पानी का पात्र लिये पीछे-पीछे चल रहे थे। राजगुरु ने प्रत्येक घोड़े की पूजा की और दोनों ब्राह्मणों सहित लौट गये। राज-गुरु के जाने के उपरान्त तीस द्वारपालिनें अपने कंधों पर कोड़े रक्खे हुये महल से निकल कर मैदान में आईं। इनके पीछे लगभग पचीस खोजे थे। खोजों के पीछे वे स्त्रियाँ थीं जो ढोल, नरसिंहा, बाँसुरी आदि बजाती आ रही थीं। इनके पीछे लगभग बीस दासियाँ और थीं जो रजत जटित छड़ियां लिये हुये थीं। अन्त में सोलह से बीस की आयु वाली रूपवती दासियों का जत्था आया। इनकी संख्या साठ थी। इनके वस्त्र रेशमी थे। सिर पर कुल्लई* थी जिन पर मोतियों के गुच्छों द्वारा फूलों की शोभा उभारी गई थी। गले में गुलूबन्द थे जिन पर बहुमूल्य हीरे टंके थे। हाथों में रत्न जड़ित बाजूबन्द और चूड़ियाँ थीं। कमर में सोने की मणिमाणिक्य जड़ित पेटियाँ थीं जो एक के नीचे एक जुड़ती हुई आधे जांघों तक चलती गई थीं। कहने का तात्पर्य यह है कि इन युवतियों के शरीर पर इतने आभूषण थे जिन्हें देखकर यही अनुमान लग रहा था कि कहीं उनके भार से वे दब न जायं। प्रत्येक सेविका के हाथ में एक-एक सोने का घड़ा था जिसमें बहुत से छिद्र थे। घड़े के भीतर मोमबत्ती जल रही थी जो दूर से दर्शकों को सुन्दर प्रतीत हो रही थी। एक के पीछे एक पंक्तिबद्ध सेविकाओं ने उन अश्वों की तीन

---

*कुल्लई—एक प्रकार की ऊँची टोपी।

बार परिक्रमा की और फिर उसी प्रकार महल को लौट गईं। ये थीं पट्टरानी की निजी सेविकायें। इस प्रकार प्रत्येक दिन रानियाँ अपनी सेविकाओं को भेज कर अपने वैभव का परिचय देती थीं।

महारानी की सेविकाओं के चले जाने के उपरान्त घोड़े भी चले गये। तब आया एक हाथियों का जत्था। समस्त हाथियों ने एक साथ सूंड उठाकर सम्राट् को नमस्कार किया और फिर चक्कर लगाते हुये बाहर हो गये। सम्राट् उठकर कक्ष में चला गया और भगवान की अर्चना करने लगा। इधर बाहर पुनः भैंसे और मेंढ़ों की बलि दी गई। बलि समाप्त होने पर सम्राट् फिर छज्जे पर आया। प्रजा ने खड़े हो कर अभिवादन किया। सम्राट् सीढ़ियों से उतरता हुआ महल में चला गया। इस समय रात्रि के लगभग तीन बज रहे थे। प्रथम दिन का उत्सव समाप्त हुआ।

इस उत्सव में राजा और प्रजा सभी दिनभर व्रत रहा करते थे। उत्सव समाप्ति पर ही भोजन करने का नियम था।

इस भाँति महानवमी का महान समारोह नित्य नवीन खेल तमाशों के साथ नवें दिन समाप्त हुआ। अन्तिम दिन ढ़ाई सौ भैंसे और साढ़े चार हज़ार मेंढ़ों की बलि दी गई। रात को सम्राट् की ओर से प्रीति भोज दिया गया जिस में लगभग दस हज़ार व्यक्ति सम्मिलित हुये थे।

तीसरे दिन राजप्रासाद से दो कोस की दूरी पर प्रति वर्ष की भाँति निश्चित स्थान पर मखमली रावटी लगा दी गई। सवेरे से ही सेनायें पंक्तिबद्ध खड़ी होने लगीं। पद के अनुसार सेना गोपों और नायकों के संरक्षण में प्रथम पदातिक सेना खड़ी हुई। भिन्न-भिन्न टुकड़ियों के भिन्न-भिन्न रंगों की पोशाकें थीं और पोशाकें भी इतनी कीमती थीं कि कल्पना के आधार पर अनुमान लगाने से सन्देह हो सकता था। ढालधारी सैनिकों के हाथों में तलवार और कमर में कटार लटक रहे थे। उनके ढालों की सुन्दरता भी देखने योग्य थी। प्रत्येक ढाल पर चाँदी या सोने के पत्तरों से किसी-न-किसी प्रकार की आकृति बनी

हुई थी जिनकी चमक में आईने की भाँति मुंह देखा जा सकता था। उनकी तलवारों पर अलंकरण भी इतने अधिक थे कि सम्भवतः उससे अधिक होने की सम्भावना शेष नहीं रह गई थी। धनुषधारी सैनिकों के कमर में कटार और फरसे दोनों लटक रहे थे। उनके धनुष स्वर्णरंजत पत्तरों से मढ़े हुये थे। बन्दूकधारी सैनिकों की अलग पंक्ति थी जिनके पास बारूद के अन्य सामान भी थे। मुसलमानों की भी सेना थी जो पीठ पर ढाल, हाथ में बरछा और कंधे में तुर्की धनुष लटकाये हुये थे। ये सैनिक बाण चलाने में बड़े प्रवीण होते थे।

पदातिक सेना के पीछे अश्वारोही थे जो विभिन्न साज-सज्जा के कारण दर्शनीय थे। घोड़ों के मस्तकों पर नाना प्रकार की झालरें बंधी थीं। किसी की झालर लाल मखमली थी तो किसी की हरे रेशम की। किसी की अतलस की थी तो किसी की चीन और फारस की बनी हुई ज़री के काम की। बहुत ऐसे भी थे जिन में मोती अथवा अन्य बहुमूल्य पत्थर टंके हुये थे। चांदी की झालरें अधिक संख्या में थीं। विभिन्न रंगों की रेशमी डोरियों से बंटी हुई घोड़ों की लगामें थीं। बहुतों के मस्तकों पर साँप तथा अन्य डरावने पशुओं के चेहरे बनाकर लगा दिये गये थे जो देखने से ताल्लुक़ रखते थे। अश्वारोहियों ने 'लावडीस'* पहन रखे थे जिनमें मखमली और रेशमी दोनों प्रकार के थे। इन वस्त्रों में अन्दर की ओर एक प्रकार का सख्त चमड़ा लगा होता था जो रक्षा के निमित्त था। बहुतों के भीतरी भाग में लोहे की चादरें भी होती थीं। कुछ ऐसे थे जिन्होंने चांदी की चादरें लगवा रक्खी थीं। अश्वारोहियों के सिर पर शिरस्त्राण भी थे जो गर्दन तक लटक रहे थे। अधिकतर शिरस्त्राण लोहे के थे जिन पर सोने या चाँदी का मुलम्मा चढ़ा दिया गया था। प्रत्येक सवार के हाथ में बरछा, कमर में कटार और तलवार थी। सभी को राज्य की ओर से छतरी प्राप्त थीं जो रंग-बिरंगी बेल-बूटों से कढ़ी थीं।

---

*लावडीस—एक प्रकार का सैनिक वस्त्र।

बार परिक्रमा की और फिर उसी प्रकार महल को लौट गईं। ये थीं पट्टरानी की निजी सेविकायें। इस प्रकार प्रत्येक दिन रानियाँ अपनी सेविकाओं को भेज कर अपने वैभव का परिचय देती थीं।

महारानी की सेविकाओं के चले जाने के उपरान्त घोड़े भी चले गये। तब आया एक हाथियों का जत्था। समस्त हाथियों ने एक साथ सूंड उठाकर सम्राट् को नमस्कार किया और फिर चक्कर लगाते हुये बाहर हो गये। सम्राट् उठकर कक्ष में चला गया और भगवान की अर्चना करने लगा। इधर बाहर पुनः भैंसे और मेंढ़ों की बलि दी गई। बलि समाप्त होने पर सम्राट् फिर छज्जे पर आया। प्रजा ने खड़े हो कर अभिवादन किया। सम्राट् सीढ़ियों से उतरता हुआ महल में चला गया। इस समय रात्रि के लगभग तीन बज रहे थे। प्रथम दिन का उत्सव समाप्त हुआ।

इस उत्सव में राजा और प्रजा सभी दिनभर व्रत रहा करते थे। उत्सव समाप्ति पर ही भोजन करने का नियम था।

इस भाँति महानवमी का महान समारोह नित्य नवीन खेल तमाशों के साथ नवें दिन समाप्त हुआ। अन्तिम दिन ढ़ाई सौ भैंसे और साढ़े चार हज़ार मेंढ़ों की बलि दी गई। रात को सम्राट् की ओर से प्रीति भोज दिया गया जिस में लगभग दस हज़ार व्यक्ति सम्मिलित हुये थे।

तीसरे दिन राजप्रासाद से दो कोस की दूरी पर प्रति वर्ष की भाँति निश्चित स्थान पर मखमली रावटी लगा दी गई। सवेरे से ही सेनायें पंक्तिबद्ध खड़ी होने लगीं। पद के अनुसार सेना गोपों और नायकों के संरक्षण में प्रथम पदातिक सेना खड़ी हुई। भिन्न-भिन्न टुकड़ियों के भिन्न-भिन्न रंगों की पोशाकें थीं और पोशाकें भी इतनी कीमती थीं कि कल्पना के आधार पर अनुमान लगाने से सन्देह हो सकता था। ढालधारी सैनिकों के हाथों में तलवार और कमर में कटार लटक रहे थे। उनके ढालों की सुन्दरता भी देखने योग्य थी। प्रत्येक ढाल पर चाँदी या सोने के पत्तरों से किसी-न-किसी प्रकार की आकृति बनी

हुई थी जिनकी चमक में आईने की भाँति मुंह देखा जा सकता था। उनकी तलवारों पर अलंकरण भी इतने अधिक थे कि सम्भवत: उससे अधिक होने की सम्भावना शेष नहीं रह गई थी। धनुषधारी सैनिकों के कमर में कटार और फरसे दोनों लटक रहे थे। उनके धनुष स्वर्णां-रंजत पत्तरों से मढ़े हुये थे। बन्दूकधारी सैनिकों की अलग पंक्ति थी जिनके पास बारूद के अन्य सामान भी थे। मुसलमानों की भी सेना थी जो पीठ पर ढाल, हाथ में बरछा और कंधे में तुर्की धनुष लटकाये हुये थे। ये सैनिक बाण चलाने में बड़े प्रवीण होते थे।

पदातिक सेना के पीछे अश्वारोही थे जो विभिन्न साज-सज्जा के कारण दर्शनीय थे। घोड़ों के मस्तकों पर नाना प्रकार की झालरें बंधी थीं। किसी की झालर लाल मखमली थी तो किसी की हरे रेशम की। किसी की अतलस की थी तो किसी की चीन और फारस की बनी हुई ज़री के काम की। बहुत ऐसे भी थे जिन में मोती अथवा अन्य बहुमूल्य पत्थर टंके हुये थे। चांदी की झालरें अधिक संख्या में थीं। विभिन्न रंगों की रेशमी डोरियों से बंटी हुई घोड़ों की लगामें थीं। बहुतों के मस्तकों पर साँप तथा अन्य डरावने पशुओं के चेहरे बनाकर लगा दिये गये थे जो देखने से ताल्लुक़ रखते थे। अश्वारोहियों ने 'लावडीस'* पहन रखे थे जिनमें मखमली और रेशमी दोनों प्रकार के थे। इन वस्त्रों में अन्दर की ओर एक प्रकार का सख्त चमड़ा लगा होता था जो रक्षा के निमित्त था। बहुतों के भीतरी भाग में लोहे की चादरें भी होती थीं। कुछ ऐसे थे जिन्होंने चाँदी की चादरें लगवा रक्खी थीं। अश्वारोहियों के सिर पर शिरस्त्राण भी थे जो गर्दन तक लटक रहे थे। अधिकतर शिरस्त्राण लोहे के थे जिन पर सोने या चाँदी का मुलम्मा चढ़ा दिया गया था। प्रत्येक सवार के हाथ में बरछा, कमर में कटार और तलवार थी। सभी को राज्य की ओर से छतरी प्राप्त थीं जो रंग-बिरंगी बेल-बूटों से कढ़ी थीं।

---

*लावडीस—एक प्रकार का सैनिक वस्त्र।

अश्वारोहियों के पीछे गज सेना दो प्रकार की थी—हौदों वाली और बिना हौदों वाली। प्रत्येक हाथी पर मखमली या रेशमी झोल झूल रहे थे जिन पर नाना प्रकार के बेल-बूटे कढ़े हुये थे। गर्दन में बड़े-बड़े घंटे लटक रहे थे। चेहरे और सूंडो को रंग दिया गया था। मस्तकों पर जंगली पशुओं की डरावनी आकृतियाँ बना दी गई थीं जिनके कारण भयानकता और बढ़ गई थी। प्रत्येक हाथी के पीछे चार-चार सैनिक लावडीस पहने खड़े थे। इनके हाथों में बरछे थे और पीठ पर ढाल थी।

सम्राट् को सूचना मिलने पर वह 'मलयकूट' से निकला। वह घोड़े पर आरूढ़ था। घोड़े के पीछे दो छतरियाँ लगी थीं जो साम्राज्य के प्रतीक स्वरूप थीं। सम्राट् के आगे-आगे लगभग बीस सशस्त्र अश्वारोही चल रहे थे और इन अश्वारोहियों के आगे-आगे दस सुसज्जित हाथी थे। सम्राट् के पार्श्व में सोने की एक बड़ी पालकी चल रही थी जिसमें भगवान की मूर्ति थी। हाथियों के घंटे की ध्वनि सुनते ही आकाश को सिर पर उठाने वाला सैनिकों का कोलाहल शान्त होते-होते पूर्ण शान्ति में परिवर्तित हो गया। चारों ओर निस्तब्धता छा गई। अपने-अपने स्थान पर सब सतर्क हो गये। पहले सम्राट् उस रावटी में गया। पालकी भी रावटी में रक्खी गई। उसने भगवान की पूजा की। तदुपरान्त उसी प्रकार सेना-निरीक्षण के लिये निकला। वह जिस तरफ से गया था उसी तरफ से लौटा भी। साथ-साथ भगवान की पालकी भी चल रही थी। सम्राट् पुनः उस रावटी में जाकर कुछ समय तक आराधना करता रहा तत्पश्चात् वह 'मलयकूट' को वापस लौट गया।

नायकों के आदेश हुये। सेना भंग हुई और एक बार पुनः ऐसा आभास हुआ जैसे आसमान फट कर गिर रहा हो।

रात को सम्राट् ने सेना के उच्चपदाधिकारियों के संग बैठकर भोजन किया। यह भोज सम्राट् की ओर से दिया गया था।

× × ×

उत्सव में विशभदेव किसी को दिखलाई नहीं पड़ा। नीलाम्बई ने जो पता करवाया उसके आधार पर—'अनायास तबीयत खराब हो जाने के कारण विशभदेव मूलवापी लौट गये।' नीलाम्बई अविश्वास करके भी विश्वास करने के लिये बाध्य हो गई थी। वह नाना प्रकार के कारणों को सोचकर भी कोई हल निकालने में असमर्थ रही। वह कुछ भी न समझ सकी और अन्त में उसी सूचना पर उसे विश्वास करना पड़ा। उत्सव की प्रसन्नता में तनिक खिन्नता आ गई। महानवमी समाप्त होने पर उसने एक पत्रवाहक को मूलवापी भेजा।

चौंतीस

गोपा और भूषण दोनों एक दूसरे के अधिक समीप आ गये थे। उन्हें एक दूसरे का सच्चा प्यार मिला था। यद्यपि प्रारम्भ में गोपा का शंकित हृदय विश्वास नहीं कर रहा था परन्तु स्वयं जब उसे कवि की दूरी टीस उत्पन्न करने लगी तब उसको उसने समझना आरम्भ किया। उसने कसौटी पर परखा। भूषण खरा उतरा। उसने अपने को उसके चरणों में समर्पित कर देने का निर्णय कर लिया। लज्जा की दीवार धीरे-धीरे टूटने लगी।

इधर महानवमी के कारण कवि को गोपा बहुत दिनों से मिल न सकी थी। उत्सव समाप्त होने पर पुनः भूषण ने संध्या वाला नियम आरम्भ किया। गोपा से भेंट हुई। भूषण ने ठिठोली की 'मेले का आकर्षण मुझ से भी अधिक हो गया है? इधर का आना-जाना ही

अश्वारोहियों के पीछे गज सेना दो प्रकार की थी—हौदों वाली और बिना हौदों वाली। प्रत्येक हाथी पर मखमली या रेशमी झोल झूल रहे थे जिन पर नाना प्रकार के बेल-बूटे कढ़े हुये थे। गर्दन में बड़े-बड़े घंटे लटक रहे थे। चेहरे और सूँडो को रंग दिया गया था। मस्तकों पर जंगली पशुओं की डरावनी आकृतियाँ बना दी गई थीं जिनके कारण भयानकता और बढ़ गई थी। प्रत्येक हाथी के पीछे चार-चार सैनिक लावडीस पहने खड़े थे। इनके हाथों में बरछे थे और पीठ पर ढाल थी।

सम्राट् को सूचना मिलने पर वह 'मलयकूट' से निकला। वह घोड़े पर आरूढ़ था। घोड़े के पीछे दो छतरियाँ लगी थीं जो साम्राज्य के प्रतीक स्वरूप थीं। सम्राट् के आगे-आगे लगभग बीस सशस्त्र अश्वारोही चल रहे थे और इन अश्वारोहियों के आगे-आगे दस सुसज्जित हाथी थे। सम्राट् के पार्श्व में सोने की एक बड़ी पालकी चल रही थी जिसमें भगवान की मूर्ति थी। हाथियों के घंटे की ध्वनि सुनते ही आकाश को सिर पर उठाने वाला सैनिकों का कोलाहल शान्त होते-होते पूर्ण शान्ति में परिवर्तित हो गया। चारों ओर निस्तब्धता छा गई। अपने-अपने स्थान पर सब सतर्क हो गये। पहले सम्राट् उस रावटी में गया। पालकी भी रावटी में रक्खी गई। उसने भगवान की पूजा की। तदुपरान्त उसी प्रकार सेना-निरीक्षण के लिये निकला। वह जिस तरफ से गया था उसी तरफ से लौटा भी। साथ-साथ भगवान की पालकी भी चल रही थी। सम्राट् पुनः उस रावटी में जाकर कुछ समय तक आराधना करता रहा तत्पश्चात् वह 'मलयकूट' को वापस लौट गया।

नायकों के आदेश हुये। सेना भंग हुई और एक बार पुनः ऐसा आभास हुआ जैसे आसमान फट कर गिर रहा हो।

रात को सम्राट् ने सेना के उच्चपदाधिकारियों के संग बैठकर भोजन किया। यह भोज सम्राट् की ओर से दिया गया था।

× × ×

उत्सव में विशभदेव किसी को दिखलाई नहीं पड़ा। नीलाम्बई ने जो पता करवाया उसके आधार पर—'अनायास तबीयत खराब हो जाने के कारण विशभदेव मूलवापी लौट गये।' नीलाम्बई अविश्वास करके भी विश्वास करने के लिये बाध्य हो गई थी। वह नाना प्रकार के कारणों को सोचकर भी कोई हल निकालने में असमर्थ रही। वह कुछ भी न समझ सकी और अन्त में उसी सूचना पर उसे विश्वास करना पड़ा। उत्सव की प्रसन्नता में तनिक खिन्नता आ गई। महानवमी समाप्त होने पर उसने एक पत्रवाहक को मूलवापी भेजा।

चौंतीस

गोपा और भूषण दोनों एक दूसरे के अधिक समीप आ गये थे। उन्हें एक दूसरे का सच्चा प्यार मिला था। यद्यपि प्रारम्भ में गोपा का शंकित हृदय विश्वास नहीं कर रहा था परन्तु स्वयं जब उसे कवि की दूरी टीस उत्पन्न करने लगी तब उसको उसने समझना आरम्भ किया। उसने कसौटी पर परखा। भूषण खरा उतरा। उसने अपने को उसके चरणों में समर्पित कर देने का निर्णय कर लिया। लज्जा की दीवार धीरे-धीरे टूटने लगी।

इधर महानवमी के कारण कवि को गोपा बहुत दिनों से मिल न सकी थी। उत्सव समाप्त होने पर पुनः भूषण ने संध्या वाला नियम आरम्भ किया। गोपा से भेंट हुई। भूषण ने ठिठोली की 'मेले का आकर्षण मुझ से भी अधिक हो गया है? इधर का आना-जाना ही

बन्द कर दिया गया है। ठीक है। गोविन्द ने रूप के साथ-साथ मेरे भाग्य को भी बुरा बना दिया। क्या किया जाये ? कोई अपना चारा नहीं।'

'जब चारा नहीं तब तो यह हाल है और यदि कहीं चारा होता तो पृथ्वी पर पैर नहीं पड़ते। आज मालूम हुआ कि लोगों को अपने विषय में बड़ा भ्रम है। भगवान की महिमा अनोखी है। सभी अपने को रूपवान ही समझते हैं।' गोपा कुछ दूरी पर बैठी हुई बातें कर रही थी।

'कह लो। कहने की स्थिति में विधि ने बना दिया है; अन्यथा कोई फूटी आँख नहीं देखता। यह तो पुरुषों की उदारता है जिसके कारण इतने दिमाग बिगड़ गये हैं नहीं तो स्त्रियाँ मारी-मारी फिरें तब भी कोई पूछने वाला न मिले।'

'यह भी सत्य है किन्तु जिसको विधि ने बना दिया है उसकी उदारता को तो न भूलिये वरना सारी आयु तालाब पर चक्कर लगाते-लगाते समाप्त हो जाती। समझ गये कवि महोदय ?'

भूषण हंसने लगा 'कितनी नासमझ होती हैं स्त्रियाँ ? थोड़ा-सा बढ़ावा मिला नहीं कि दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ गया जब कि यह विदित है सैंकड़ों युवतियाँ इन चरणों की दासी बनने के लिये नित्य निहोरा किया करती हैं। हद हो गई भई।' उसने उपेक्षा व्यक्त करने के लिये मुंह टेढ़ा किया 'मन के लड्डू खाने में आनन्द अवश्य आता होगा। क्यों आता है न ?' वह अपनी गंभीरता बनाये रहा।

'आता न होता तो नित्य चार कोस दौड़ना क्यों पड़ता ? किसे कुत्ते ने काट खाया है जो संध्या समय इस सुनसान स्थान पर आकर अपना समय बरबाद करे,' वह खड़ी हो गई 'सैकड़ों युवतियाँ चरणों की दासी बनने के लिये निहोरा करती हैं ! अः हाः ! डींग बघारना तो कोई पुरुषों से सीखे। सभी बहादुर बनते हैं।' उसने चलने के लिये पाँव उठाया।

'अररररर……चली कहाँ ?'

'घर जा रही हूँ और कहाँ ? मेरे पास ऐसा रूप तो है नहीं कि मेरा निहोरा हो सके ? जहाँ सैंकड़ों पड़ी हैं वहाँ एक की क्या विसात ?' वह बढ़ी । उसका बढ़ना किसी प्रयोजन वश था । गुलाब के तोड़ने में यदि काँटों की चुभन न होती तो सम्भवतः उसकी प्राप्ति में इतना आनन्द नहीं मिलता । आनन्द का अपना रूप कुछ नहीं है केवल उसे प्राप्त करने के प्रकारों में है ।

भूषण भी उठा 'बिना मेरी अनुमति के······?'

उसने अगूँठा विराया 'बड़े आये अनुमति वाले ।' वह भागी ।

कवि ने उसका पीछा किया । गोपा ने एक पेड़ का चक्कर दिया और तालाब की ओर दौड़ी । भूषण समीप पहुँचकर भी कुछ पीछे बना रहा । गोपा अचानक तालाब में कूद पड़ी । उसका कूदना था कि उसके पीछे भूषण भी कूद पड़ा । वह पानी के ऊपर आई । उसने ऊपर इधर उधर देखा । उसे आश्चर्य हुआ । तब तक भूषण भी ऊपर आया और उसने बढ़कर गोपा को भुजाओं में खींच लिया 'अब ?' वह मुसकरा रहा था ।

'बड़े ढीठ हैं आप । छोड़िये न । कोई आ गया तो ?' उसके छुड़ाने के प्रयत्नों से यही विदित हो रहा था कि अभी वह स्वयं भूषण की भुजाओं में आबद्ध रहना चाहती थी ।

'आ जाय तो आ जाने दो । अब मैं तुम्हारे चकमे में नहीं आने का ।' वह तैरता हुआ आगे बढ़ता रहा परन्तु पता नहीं क्या सोच कर उसने हाथ कुछ ढीला किया । गोपा सट से सरकती हुई डुबकी लगा कर आगे बढ़ गई । भूषण ने भी हाथ मारे । गोपा के लिये बचकर निकलना कठिन था । वह पुनः उसकी भुजाओं में आ गई ।

'अब चलिये । मैं थक गई ।'

भूषण उसे सहारा देता हुआ किनारे आया ।

गोपा गर्दन भर पानी में खड़ी हो गई 'आप पहनेंगे क्या ?'

'कपड़े ।'

बन्द कर दिया गया है। ठीक है। गोविन्द ने रूप के साथ-साथ मेरे भाग्य को भी बुरा बना दिया। क्या किया जाये ? कोई अपना चारा नहीं।'

'जब चारा नहीं तब तो यह हाल है और यदि कहीं चारा होता तो पृथ्वी पर पैर नहीं पड़ते। आज मालूम हुआ कि लोगों को अपने विषय में बड़ा भ्रम है। भगवान की महिमा अनोखी है। सभी अपने को रूपवान ही समझते हैं।' गोपा कुछ दूरी पर बैठी हुई बातें कर रही थी।

'कह लो। कहने की स्थिति में विधि ने बना दिया है; अन्यथा कोई फूटी आँख नहीं देखता। यह तो पुरुषों की उदारता है जिसके कारण इतने दिमाग बिगड़ गये हैं नहीं तो स्त्रियाँ मारी-मारी फिरें तब भी कोई पूछने वाला न मिले।'

'यह भी सत्य है किन्तु जिसको विधि ने बना दिया है उसकी उदारता को तो न भूलिये वरना सारी आयु तालाब पर चक्कर लगाते-लगाते समाप्त हो जाती। समझ गये कवि महोदय ?'

भूषण हंसने लगा 'कितनी नासमझ होती हैं स्त्रियाँ ? थोड़ा-सा बढ़ावा मिला नहीं कि दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ गया जब कि यह विदित है सैंकड़ों युवतियाँ इन चरणों की दासी बनने के लिये नित्य निहोरा किया करती हैं। हद हो गई भई।' उसने उपेक्षा व्यक्त करने के लिये मुंह टेढ़ा किया 'मन के लड्डू खाने में आनन्द अवश्य आता होगा। क्यों आता है न ?' वह अपनी गंभीरता बनाये रहा।

'आता न होता तो नित्य चार कोस दौड़ना क्यों पड़ता ? किसे कुत्ते ने काट खाया है जो संध्या समय इस सुनसान स्थान पर आकर अपना समय बरबाद करे,' वह खड़ी हो गई 'सैंकड़ों युवतियाँ चरणों की दासी बनने के लिये निहोरा करती हैं ! अः हाः ! डींग बघारना तो कोई पुरुषों से सीखे। सभी बहादुर बनते हैं।' उसने चलने के लिये पाँव उठाया।

'अररररर······चली कहाँ ?'

'घर जा रही हूँ और कहाँ ? मेरे पास ऐसा रूप तो है नहीं कि मेरा निहोरा हो सके ? जहाँ सैंकड़ों पड़ी हैं वहाँ एक की क्या बिसात ?' वह बढ़ी। उसका बढ़ना किसी प्रयोजन वश था। गुलाब के तोड़ने में यदि काँटों की चुभन न होती तो सम्भवतः उसकी प्राप्ति में इतना आनन्द नहीं मिलता। आनन्द का अपना रूप कुछ नहीं है केवल उसे प्राप्त करने के प्रकारों में है।

भूषण भी उठा 'बिना मेरी अनुमति के······?'

उसने अगूँठा बिराया 'बड़े आये अनुमति वाले।' वह भागी।

कवि ने उसका पीछा किया। गोपा ने एक पेड़ का चक्कर दिया और तालाब की ओर दौड़ी। भूषण समीप पहुँचकर भी कुछ पीछे बना रहा। गोपा अचानक तालाब में कूद पड़ी। उसका कूदना था कि उसके पीछे भूषण भी कूद पड़ा। वह पानी के ऊपर आई। उसने ऊपर इधर उधर देखा। उसे आश्चर्य हुआ। तब तक भूषण भी ऊपर आया और उसने बढ़कर गोपा को भुजाओं में खींच लिया 'अब ?' वह मुसकरा रहा था।

'बड़े ढीठ हैं आप। छोड़िये न। कोई आ गया तो ?' उसके छुड़ाने के प्रयत्नों से यही विदित हो रहा था कि अभी वह स्वयं भूषण की भुजाओं में आबद्ध रहना चाहती थी।

'आ जाय तो आ जाने दो। अब मैं तुम्हारे चकमे में नहीं आने का।' वह तैरता हुआ आगे बढ़ता रहा परन्तु पता नहीं क्या सोच कर उसने हाथ कुछ ढीला किया। गोपा सट से सरकती हुई डुबकी लगा कर आगे बढ़ गई। भूषण ने भी हाथ मारे। गोपा के लिये बचकर निकलना कठिन था। वह पुनः उसकी भुजाओं में आ गई।

'अब चलिये। मैं थक गई।'

भूषण उसे सहारा देता हुआ किनारे आया।

गोपा गर्दन भर पानी में खड़ी हो गई 'आप पहनेंगे क्या ?'

'कपड़े।'

'कहाँ हैं ?'

'घोड़े की काठी में।'

गोपा ने मुँह बनाया 'घोड़े की काठी में। फिर जाइये खड़े क्या हैं ? कपड़े नहीं बदलने हैं ?'

'बदलने हैं।' वह चला गया।

गोपा ने भी बाहर निकल कर झटपट कपड़े बदले और मन ही मन हँसती हुई चुपके से निकल भागी।

× × ×

दूसरे दिन पेड़ों की झुरमुट में गोपा भूषण की गोद में सिर रख कर करवट लेती हुई उंगुली से मिट्टी करोंद रही थी। भूषण उसके बालों में अपनी उंगुलियों को उलझाये हुये था। कुछ सोच रहा था। अधिक समय बीत जाने पर भी जब कवि के विचारों की कड़ियाँ न टूटीं तो वह उकता उठी। नीरवता खलने लगी। उसने पूछा 'अकस्मात बातें करते-करते सोचने क्या लगे ?'

'कुछ नहीं।' उसका ध्यान बंटा।

'फिर भी ?' वह सीधी होकर उसकी ओर निहारने लगी।

भूषण ने अपनी हथेलियों के बीच उसके कपोलों को आबद्ध करते हुये कहा 'विवाह के विषय में सोच रहा था। किस प्रकार की कौन-कौन सी तैयारियाँ होंगी उसकी रूप रेखा बना रहा था।'

गोपा के अधरों पर उपहास की मुसकान फैल गई।

'क्यों ?'

'आपके विवाह में कोई सम्मिलित भी होगा ? क्या आपके माता-पिता आपका साथ देंगे ? हमें तो विश्वास नहीं है और जहाँ तक प्रश्न राज-क्कल तम्बिरन का है वह भी बिना प्रयोजन समाज के विरुद्ध नहीं जायेंगे।'

वह मुसकराया 'मेरे माता-पिता नहीं हैं गोपा। कई वर्ष पूर्व दोनों ने संग-संग रथ यात्रा के अवसर पर अपनी जीवन लीला समाप्त कर

ली थी। मैं अकेला हूँ। कुछ भी कर सकता हूँ। और जहाँ तक प्रश्न राजक्कल तम्बिरन का है उनके विषय में अभी तुम्हें पूरी जानकारी नहीं है। मेरे विवाह के सर्वेसर्वा वही होंगे। मेरी बरात में यदि राजक्कल तम्बिरन न हुये तो फिर विशेषता किस बात की? काम वही है जिसमें कुछ अनोखापन हो। साधारण तो सभी करते हैं।'

'सम्भव है पर मेरा मन कहता है कि इस विवाह के लिये राजक्कल तम्बिरन आपको अनुमति नहीं देंगे।'

'तो इसमें भी कोई चिन्ता नहीं। यद्यपि उनकी ओर से मुझे पक्का भरोसा है फिर भी हो सकता है तुम्हारी बात सत्य निकले। वह अनुमति न दें। मैं गोपा को नहीं छोड़ सकता। उसकी झोंपड़ी में रहकर जो वह करती है उसे मैं भी करूँगा। इसमें तो किसी को आपत्ति न होगी?' उसने गर्दन झुका कर गुलाब की पंखुड़ियों जैसे अधरों को चूम लिया 'तुम अपनी झोंपड़ी में मुझे रख लोगी न?'

गोपा ने करवट ले ली। कोई उत्तर नहीं दिया।

'क्यों, मुझे जगह नहीं मिलेगी?'

गोपा ने उत्तर न देकर अपनी बात चलाई 'हम कहते हैं क्या हमारा विवाह होना आवश्यक है? बिना विवाह के हमारे प्रेम में स्थिरता नहीं रह सकती?'

'असम्भव है। कैसे रह सकती है? और थोड़ी देर के लिये मान लिया जाय सम्भव भी है तो भी यह उचित तो नहीं है। हम विवाह करके कोई पाप तो नहीं कर रहे हैं गोपा। प्रेम अपने संसार में भेद नहीं बरतता। ऊँच-नीच अथवा छोटे-बड़े की घृणित भावना को उत्पन्न करने वाला समाज है, ईश्वर नहीं।'

गोपा ने जैसे उसके अन्तिम वाक्यों पर ध्यान ही न दिया हो 'तो क्या और कोई उपाय नहीं है?' मानो उसने कोई उपाय सोच रक्खा था परन्तु संकोचवश कह नहीं पा रही थी। 'मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण प्रभु को······।'

'कहाँ हैं ?'

'घोड़े की काठी में।'

गोपा ने मुँह बनाया 'घोड़े की काठी में। फिर जाइये खड़े क्या हैं ? कपड़े नहीं बदलने हैं ?'

'बदलने हैं।' वह चला गया।

गोपा ने भी बाहर निकल कर झटपट कपड़े बदले और मन ही मन हँसती हुई चुपके से निकल भागी।

× × ×

दूसरे दिन पेड़ों की झुरमुट में गोपा भूषण की गोद में सिर रख कर करवट लेती हुई उंगुली से मिट्टी करोंद रही थी। भूषण उसके बालों में अपनी उंगुलियों को उलझाये हुये था। कुछ सोच रहा था। अधिक समय बीत जाने पर भी जब कवि के विचारों की कड़ियाँ न टूटीं तो वह उकता उठी। नीरवता खलने लगी। उसने पूछा 'अकस्मात बातें करते-करते सोचने क्या लगे ?'

'कुछ नहीं।' उसका ध्यान बंटा।

'फिर भी ?' वह सीधी होकर उसकी ओर निहारने लगी।

भूषण ने अपनी हथेलियों के बीच उसके कपोलों को आबद्ध करते हुये कहा 'विवाह के विषय में सोच रहा था। किस प्रकार की कौन-कौन सी तैयारियाँ होंगी उसकी रूप रेखा बना रहा था।'

गोपा के अधरों पर उपहास की मुसकान फैल गई।

'क्यों ?'

'आपके विवाह में कोई सम्मिलित भी होगा ? क्या आपके माता-पिता आपका साथ देंगे ? हमें तो विश्वास नहीं है और जहाँ तक प्रश्न राज-क्कल तम्भिरन का है वह भी बिना प्रयोजन समाज के विरुद्ध नहीं जायेंगे।'

वह मुसकराया 'मेरे माता-पिता नहीं हैं गोपा। कई वर्ष पूर्व दोनों ने संग-संग रथ यात्रा के अवसर पर अपनी जीवन लीला समाप्त कर

ली थी। मैं अकेला हूँ। कुछ भी कर सकता हूँ। और जहाँ तक प्रश्न राजक्कल तम्बिरन का है उनके विषय में अभी तुम्हें पूरी जानकारी नहीं है। मेरे विवाह के सर्वेसर्वा वही होंगे। मेरी बरात में यदि राजक्कल तम्बिरन न हुये तो फिर विशेषता किस बात की? काम वही है जिसमें कुछ अनोखापन हो। साधारण तो सभी करते हैं।'

'सम्भव है पर मेरा मन कहता है कि इस विवाह के लिये राजक्कल तम्बिरन आपको अनुमति नहीं देंगे।'

'तो इसमें भी कोई चिन्ता नहीं। यद्यपि उनकी ओर से मुझे पक्का भरोसा है फिर भी हो सकता है तुम्हारी बात सत्य निकले। वह अनुमति न दें। मैं गोपा को नहीं छोड़ सकता। उसकी झोंपड़ी में रहकर जो वह करती है उसे मैं भी करूँगा। इसमें तो किसी को आपत्ति न होगी?' उसने गर्दन झुका कर गुलाब की पंखुड़ियों जैसे अधरों को चूम लिया 'तुम अपनी झोंपड़ी में मुझे रख लोगी न?'

गोपा ने करवट ले ली। कोई उत्तर नहीं दिया।

'क्यों, मुझे जगह नहीं मिलेगी?'

गोपा ने उत्तर न देकर अपनी बात चलाई 'हम कहते हैं क्या हमारा विवाह होना आवश्वक है? बिना विवाह के हमारे प्रेम में स्थिरता नहीं रह सकती?'

'असम्भव है। कैसे रह सकती है? और थोड़ी देर के लिये मान लिया जाय सम्भव भी है तो भी यह उचित तो नहीं है। हम विवाह करके कोई पाप तो नहीं कर रहे हैं गोपा। प्रेम अपने संसार में भेद नहीं बरतता। ऊँच-नीच अथवा छोटे-बड़े की घृणित भावना को उत्पन्न करने वाला समाज है, ईश्वर नहीं।'

गोपा ने जैसे उसके अन्तिम वाक्यों पर ध्यान ही न दिया हो 'तो क्या और कोई उपाय नहीं है?' मानो उसने कोई उपाय सोच रक्खा था परन्तु संकोचवश कह नहीं पा रही थी। 'मैं नहीं चाहती कि मेरे कारण प्रभु को……।'

भूषण ने उसे अपनी ओर मोड़ लिया और उसके कपोलों को थपथपाया 'मुझे दीन-दुनिया की आवश्यकता नहीं है पगली। गोपा का पलडा उस पलड़े से अधिक भारी है। मुझे और कोई उपाय ढूँढने की आवश्यकता नहीं, समझी?' उसने बिना सुने ही गोपा के प्रस्ताव को रद्द कर दिया। 'दो-एक दिन में उपयुक्त अवसर देखकर राजक्कल तम्बिरन से अपनी इच्छा प्रकट करूँगा। अब अधिक दिनों तक मैं प्रतीक्षा करने की स्थिति में नहीं हूँ।' वह मुसकराया

'चलिये। जैसे सब कुछ आप की ही इच्छाओं पर निर्भर तो करता है।' उसने अपनी आँखे बन्द कर लीं।

'यदि करे तो तुम्हारे पास इसके बचाव का कोई साधन है?'

'बहुत। क्या शक्तिहीन संसार में जीवित नहीं रहते?'

'उनका रहना और न रहना एक जैसा है और यदि है तो आज मेरी भुजाओं से निकल जाओ तो समझें?'

गोपा उठी परन्तु उठ न सकी।

पैंतीस

अपने कथनानुसार रामराय नहीं आ सका। राजकुमारी तिरु आज-कल-आजकल सोचती रही और महानवमी भी समाप्त हो गई। रामराय नहीं आया। उत्सव फीका-फीका-सा लगा। अन्य वर्षों की भाँति इस वर्ष आनन्द नहीं आया। मन के अन्दर एक प्रकार की उदासीनता छाई रही। किसी की अनुपस्थिति का अभाव खटकता रहा। हृदय रह-रह कर किसी

के स्मरण से व्याकुल हो उठता। नहीं आने के कारणों पर बुद्धि तर्क करती। किसी परिणाम पर पहुँचने की चेष्टा करती परन्तु प्रयास निष्फल सिद्ध होता। किसी-किसी दिन तो उसे रात भर नींद नहीं आती। पर्यंक पर करवटें बदलती रहती। सवेरा हो जाता किन्तु मिलता क्या— कुछ नहीं। अकुलाहट जैसी की तैसी बनी रहती। रामराय की याद बिसरती नहीं थी। कभी रामराय के साथ अपने ऊपर भी क्रोध आता। घंटों अपने को भला-बुरा कहती रहती। रामराय के विषय में न सोचने की प्रतिज्ञायें करती परन्तु यह कितनी देर के लिये ? कुछ समय बाद पुनः उसका स्मरण हो आता। उसकी आकृति नेत्रों के सामने नाचने लगती। वह विवश हो जाती। हृदय से सम्बन्ध रखने वाली समस्यायें ऐसी ही होती हैं।

उत्सव समाप्त हुये कई दिन हो गये थे। हम्पी की पहले जैसी चहल-पहल प्रायः समाप्त हो चली थी। बाहर से आये हुये व्यक्ति लगभग जा चुके थे। जिसकी जैसी दिनचर्या थी वह पुनः उसी प्रकार कर्मों के संचालन में जुट पड़ा था परन्तु राजकुमारी तिरु जैसी स्थिति वालों के लिये समस्या टेढ़ी बन गई थी। तिरु पहले से अधिक चिन्तित हो उठी थी। अन्तर की विह्वलता बढ़ गई थी। उसने अपने संतोष के लिए जानकारी भी करवाई। परसो-नरसों भी पता करवाया था किन्तु जब रामराय आया हो तब तो। वह अभी तक नहीं आया था। तिरु की नींद हराम होने लगी। यदि उसे विदित होता कि प्रेम का पथ ऐसी व्यथाओं का जन्मदाता है तो सम्भवतः इस मार्ग पर किसी भी दशा में पैर रखने का साहस न करती। इस समय उसे बड़ा पछतावा था।

अकस्मात एक दिन रामराय का आगमन हो गया। तिरु को अन्तःपुर में सूचना दी गई। आने का समाचार सुनकर हृदय खिल उठा किन्तु तत्काल चेहरे पर गंभीरता फैल गई। उसने दासी को वीणा ले जाकर रखने के लिये कहा और 'नृत्य-गृह' को कुछ सोचती हुई धीरे-धीरे चल पड़ी। प्यार की तबीयत निराली है। जिसकी प्रतीक्षा में

भूषण ने उसे अपनी ओर मोड़ लिया और उसके कपोलों को थपथपाया 'मुझे दीन-दुनिया की आवश्यकता नहीं है पगली। गोपा का पलडा उस पलड़े से अधिक भारी है। मुझे और कोई उपाय ढूँढने की आवश्यकता नहीं, समझी ?' उसने बिना सुने ही गोपा के प्रस्ताव को रद्द कर दिया। 'दो-एक दिन में उपयुक्त अवसर देखकर राजक्कल तम्बिरन से अपनी इच्छा प्रकट करूँगा। अब अधिक दिनों तक मैं प्रतीक्षा करने की स्थिति में नहीं हूँ।' वह मुसकराया

'चलिये। जैसे सब कुछ आप की ही इच्छाओं पर निर्भर तो करता है।' उसने अपनी आँखे बन्द कर लीं।

'यदि करे तो तुम्हारे पास इसके बचाव का कोई साधन है ?'

'बहुत। क्या शक्तिहीन संसार में जीवित नहीं रहते ?'

'उनका रहना और न रहना एक जैसा है और यदि है तो आज मेरी भुजाओं से निकल जाओ तो समझें ?'

गोपा उठी परन्तु उठ न सकी।

पैंतीस

अपने कथनानुसार रामराय नहीं आ सका। राजकुमारी तिरु आज-कल-आजकल सोचती रही और महानवमी भी समाप्त हो गई। रामराय नहीं आया।उत्सव फीका-फीका-सा लगा। अन्य वर्षों की भाँति इस वर्ष आनन्द नहीं आया। मन के अन्दर एक प्रकार की उदासीनता छाई रही। किसी की अनुपस्थिति का अभाव खटकता रहा। हृदय रह-रह कर किसी

के स्मरण से व्याकुल हो उठता। नहीं आने के कारणों पर बुद्धि तर्क करती। किसी परिणाम पर पहुँचने की चेष्टा करती परन्तु प्रयास निष्फल सिद्ध होता। किसी-किसी दिन तो उसे रात भर नींद नहीं आती। पर्यंक पर करवटें बदलती रहती। सवेरा हो जाता किन्तु मिलता क्या—कुछ नहीं। अकुलाहट जैसी की तैसी बनी रहती। रामराय की याद बिसरती नहीं थी। कभी रामराय के साथ अपने ऊपर भी क्रोध आता। घंटों अपने को भला-बुरा कहती रहती। रामराय के विषय में न सोचने की प्रतिज्ञायें करती परन्तु यह कितनी देर के लिये? कुछ समय बाद पुनः उसका स्मरण हो आता। उसकी आकृति नेत्रों के सामने नाचने लगती। वह विवश हो जाती। हृदय से सम्बन्ध रखने वाली समस्यायें ऐसी ही होती हैं।

उत्सव समाप्त हुये कई दिन हो गये थे। हम्पी की पहले जैसी चहल-पहल प्रायः समाप्त हो चली थी। बाहर से आये हुये व्यक्ति लगभग जा चुके थे। जिसकी जैसी दिनचर्या थी वह पुनः उसी प्रकार कर्मों के संचालन में जुट पड़ा था परन्तु राजकुमारी तिरु जैसी स्थिति वालों के लिये समस्या टेढ़ी बन गई थी। तिरु पहले से अधिक चिन्तित हो उठी थी। अन्तर की विह्वलता बढ़ गई थी। उसने अपने संतोष के लिए जानकारी भी करवाई। परसों-नरसों भी पता करवाया था किन्तु जब रामराय आया हो तब तो। वह अभी तक नहीं आया था। तिरु की नींद हराम होने लगी। यदि उसे विदित होता कि प्रेम का पथ ऐसी व्यथाओं का जन्मदाता है तो सम्भवतः इस मार्ग पर किसी भी दशा में पैर रखने का साहस न करती। इस समय उसे बड़ा पछतावा था।

अकस्मात एक दिन रामराय का आगमन हो गया। तिरु को अन्तःपुर में सूचना दी गई। आने का समाचार सुनकर हृदय खिल उठा किन्तु तत्काल चेहरे पर गंभीरता फैल गई। उसने दासी को वीणा ले जाकर रखने के लिये कहा और 'नृत्य-गृह' को कुछ सोचती हुई धीरे-धीरे चल पड़ी। प्यार की तबीयत निराली है। जिसकी प्रतीक्षा में

आँखों की नींद उड़ गई थी, भोजन के लिये भूख नहीं रह गई थी, मिलना-जुलना बन्द हो गया था; आज उसके आगमन पर दौड़ कर चलने के स्थान पर धीरे-धीरे पैर उठ रहे थे।

दासी वीणा रखकर चली गई। तिरु आई। उसने रामराय की ओर देखा तक नहीं और चुपचाप बैठकर वीणा के स्वरों को मिलाने लगीं। रामराय उसे निहारता हुआ होठों में मुसकराता रहा। वह भी चुप था। कई बार तिरु ने खूटियों को कसा और ढीला किया परन्तु स्वर नहीं मिला। मिलता कैसे ? मस्तिष्क तो कहीं और था। 'लाइये मैं मिला दूं। आप से नहीं मिलेगा।' रामराय बोला।

'मिलेगा कैसे नहीं ? क्या मुझे मिलाना आता नहीं। मैं मिला लूंगी। आप कष्ट न करें।' वह अब भी सिर झुकाये हुये थी।

'मिलाना क्यों नहीं आता किन्तु आज मिलने की सम्भावना कम है। वैसे मिल भी सकता है। कोशिश करने से कोई काम कठिन नहीं।' वह अपनी हँसी दबाये हुए था।

तिरु तारों को मिलाती रही। उसने सुनी-अनसुनी कर दी थी। तार मिल गये। 'बोलिये कौन-सा राग बजाऊँ ?' उसने पूछा।

'बिना कारणों की जानकारी किये क्रोध करना तो उचित नहीं होता है न राजकुमारी जी। दूसरों को भी अपनी बात कहने का अवसर मिलना चाहिये। अपने वचनों को न पालन करने का अर्थ किसी गंभीर परिस्थिति के आगमन के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?'

तिरु अब भी चुप रही।

'अच्छा यदि अपनी त्रुटि मानकर कुछ कहना चाहूँ तब तो मेरी बात सुनने की कृपा होगी ? क्षमा दान सब दानों में महादान समझा गया है और दान देने वाले की महानता ईश्वर जैसी होती है। तो कहने की अनुमति है ?'

तिरु फिर भी गर्दन झुकाए मौन रही।

रामराय अपने को न रोक सका। उसने हाथ बढ़ा कर तिरु की

ठोड़ी को धीरे से ऊपर उठा दिया। राजकुमारी ने मुँह उठा कर पुनः नीचे कर लिया। उसके नेत्र डबडबा आये थे। व्यथा व्यक्त होनी ही थी। जिह्वा से व्यक्त न होकर नेत्रों से हो गई। रामराय का गला भर आया, 'परिस्थितियों के वशीभूत होकर ऐसा करना पड़ा था राजकुमारी जी अन्यथा··· ··· खैर। मैं जा रहा हूँ, कल उद्यान में बैठकर कुछ कहना चाहता हूँ। आपका आना हो सकेगा ?'

तिरु ने सिर उठाकर देखा।

'मैं कल इसी समय वहाँ रहूँगा।' वह खड़ा हो गया।

दूसरे दिन उद्यान में भेंट हुई। दोनों बिल्कुल पीछे की ओर एक सघन कुँज में बैठे हुए थे। तिरु सकुचा रही थी। रामराय ने वार्ता आरम्भ की 'आज मुझे कुछ अपने विषय में आप से बतलाना है जिसके बारे में अभी तक किसी को जानकारी नहीं है। मेरे विषय में अभी तक आपने जो कुछ जाना और सुना है—सब झूठ है। आपको सम्भवतः विश्वास नहीं होगा कि न तो मैं माता-पिता विहीन हूँ और न मेरा घर श्रीरंगपट्टन में है। आप को सुन कर और भी आश्चर्य होगा कि जब मैं कहूँ कि मैं गोलकुँडा के शाह की सेना में पदाधिकारी था और लगभग पन्द्रह वर्षों तक उसकी सेवायें करता रहा। इतना ही नहीं आप को अपने कानों पर विश्वास न होगा जब मैं यह बताऊँ कि मेरा प्रेम बीजापुर के सुलतान आदिलशाह की पुत्री उरूसी से हो गया था और मुझे उसी बुनियाद पर देश छोड़ कर निकल जाने की आज्ञा मिली थी। जान बख्श दी गई यही उस प्रभु की कृपा थी; अन्यथा आपके सामीप्य का सौभाग्य नहीं प्राप्त होता।'

तिरु अवाक रामराय को देखने लगी थी।

रामराय ने उरूसी की कहानी सुनाते हुए अन्त में कहा—'निस्संदेह उरूसी की भावनाओं में बासना की मात्रा अधिक थी और प्रेम की न्यून। उसने मेरे जीवन के साथ खिलवाड़ किया था। वह सब कुछ समझती हुई भी मुझे धोखे में रखने का प्रयत्न करती रही। खैर······

आँखों की नींद उड़ गई थी, भोजन के लिये भूख नहीं रह गई थी, मिलना-जुलना बन्द हो गया था; आज उसके आगमन पर दौड़ कर चलने के स्थान पर धीरे-धीरे पैर उठ रहे थे।

दासी वीणा रखकर चली गई। तिरु आई। उसने रामराय की ओर देखा तक नहीं और चुपचाप बैठकर वीणा के स्वरों को मिलाने लगीं। रामराय उसे निहारता हुआ होठों में मुसकराता रहा। वह भी चुप था। कई वार तिरु ने खूटियों को कसा और ढीला किया परन्तु स्वर नहीं मिला। मिलता कैसे ? मस्तिष्क तो कहीं और था। 'लाइये मैं मिला दूं। आप से नहीं मिलेगा।' रामराय बोला।

'मिलेगा कैसे नहीं ? क्या मुझे मिलाना आता नहीं। मैं मिला लूंगी। आप कष्ट न करें।' वह अब भी सिर झुकाये हुये थी।

'मिलाना क्यों नहीं आता किन्तु आज मिलने की सम्भावना कम है। वैसे मिल भी सकता है। कोशिश करने से कोई काम कठिन नहीं।' वह अपनी हँसी दबाये हुए था।

तिरु तारों को मिलाती रही। उसने सुनी-अनसुनी कर दी थी। तार मिल गये। 'बोलिये कौन-सा राग बजाऊँ ?' उसने पूछा।

'बिना कारणों की जानकारी किये क्रोध करना तो उचित नहीं होता है न राजकुमारी जी। दूसरों को भी अपनी बात कहने का अवसर मिलना चाहिये। अपने वचनों को न पालन करने का अर्थ किसी गंभीर परिस्थिति के आगमन के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?'

तिरु अब भी चुप रही।

'अच्छा यदि अपनी त्रुटि मानकर कुछ कहना चाहूँ तब तो मेरी बात सुनने की कृपा होगी ? क्षमा दान सब दानों में महादान समझा गया है और दान देने वाले की महानता ईश्वर जैसी होती है। तो कहने की अनुमति है ?'

तिरु फिर भी गर्दन झुकाए मौन रही।

रामराय अपने को न रोक सका। उसने हाथ बढ़ा कर तिरु की

ठोड़ी को धीरे से ऊपर उठा दिया। राजकुमारी ने मुँह उठा कर पुनः नीचे कर लिया। उसके नेत्र डबडबा आये थे। व्यथा व्यक्त होनी ही थी। जिह्वा से व्यक्त न होकर नेत्रों से हो गई। रामराय का गला भर आया, 'परिस्थितियों के वशीभूत होकर ऐसा करना पड़ा था राजकुमारी जी अन्यथा··· ··· खैर। मैं जा रहा हूँ, कल उद्यान में बैठकर कुछ कहना चाहता हूँ। आपका आना हो सकेगा ?'

तिरु ने सिर उठाकर देखा।

'मैं कल इसी समय वहाँ रहूँगा।' वह खड़ा हो गया।

दूसरे दिन उद्यान में भेंट हुई। दोनों बिल्कुल पीछे की ओर एक सघन कुंज में बैठे हुए थे। तिरु सकुचा रही थी। रामराय ने वार्ता आरम्भ की 'आज मुझे कुछ अपने विषय में आप से बतलाना है जिसके बारे में अभी तक किसी को जानकारी नहीं है। मेरे विषय में अभी तक आपने जो कुछ जाना और सुना है—सब झूठ है। आपको सम्भवतः विश्वास नहीं होगा कि न तो मैं माता-पिता विहीन हूँ और न मेरा घर श्रीरंगपट्टन में है। आप को सुन कर और भी आश्चर्य होगा कि जब मैं कहूँ कि मैं गोलकुंडा के शाह की सेना में पदाधिकारी था और लगभग पन्द्रह वर्षों तक उसकी सेवायें करता रहा। इतना ही नहीं आप को अपने कानों पर विश्वास न होगा जब मैं यह बताऊँ कि मेरा प्रेम बीजापुर के सुलतान आदिलशाह की पुत्री उरूसी से हो गया था और मुझे उसी बुनियाद पर देश छोड़ कर निकल जाने की आज्ञा मिली थी। जान बख्श दी गई यही उस प्रभु की कृपा थी; अन्यथा आपके सामीप्य का सौभाग्य नहीं प्राप्त होता।'

तिरु अवाक रामराय को देखने लगी थी।

रामराय ने उरूसी की कहानी सुनाते हुए अन्त में कहा—'निस्संदेह उरूसी की भावनाओं में बासना की मात्रा अधिक थी और प्रेम की न्यून। उसने मेरे जीवन के साथ खिलवाड़ किया था। वह सब कुछ समझती हुई भी मुझे धोखे में रखने का प्रयत्न करती रही। खैर······

समय के साथ-साथ वे सारी बातें भी अंधकार में विलीन हो गई। जीवन का मार्ग दूसरा बना। उस पर चलता रहा। विवशता थी। अन्य कोई रास्ता नहीं दिखलाई पड़ रहा था। भाग्य ने पुन: पलटा खाया और मैं उस जीवन को त्याग कर इस जीवन में आया। आपका प्रेम मिला जो मेरे लिए दुर्लभ था किन्तु दूध से जली हुई जबान को मट्ठे पर भरोसा कैसे होता? मेरे भीतर बहुत समय तक अन्तर्द्वन्द चलता रहा जिसका आभास आप को जब-तब मिला भी होगा परन्तु अन्त में हृदय की जीत हुई फिर भी बुद्धि अतीत के उस चित्र को विसरने नहीं देती है। वह खोद-खोद कर मुझे सचेत करती रहती है कि वैर और प्रीति समान स्तर वालों में होना चाहिए असमान में नहीं। यद्यपि मुझे इस तर्क पर विश्वास नहीं है और जीवन में कभी होगा भी नहीं परन्तु यह मैं अवश्य पूछ लेना चाहता हूँ कि मुझे जो कुछ दिया गया है उसे वापस तो नहीं ले लिया जायेगा? जो कदम राजकुमारी जी ने उठाया है उस पर भली भाँति सोच लिया गया है न?'

'सोच लिया है।' तिरु ने धीरे से कह दिया।

'तो क्या विवाह सम्बन्ध सम्भव है? क्या राजक्कल तम्बिरन इस पर राज़ी हो सकेंगे?'

'सम्भव भी है और नहीं भी।'

'तब? यदि उन्होंने नाहीं कर दिया तो?'

'तो क्या हुआ? जब पिता अपने संतान की इच्छाओं का ध्यान नहीं रख सकेगा तो संतानें क्यों कर पिता की आज्ञाओं को पालन करने के लिये बाध्य होने लगीं? उन्हें भी तो अपनी बुद्धि की उपयोगिता का अनुमान है?' वह तनिक रुकी और सिर झुकाती हुई बोली, 'पर मेरे ऊपर आचार्य के सन्देह का कारण?'

'यह मेरी दुर्बलता है राजकुमारी जी और कुछ नहीं। मेरी स्थिति उस मनुष्य की भांति है जो रात में सोया था झोपड़ी के अन्दर परन्तु जब आँखें खुलीं तो वह किसी राजप्रासाद में सोने के पर्यंक पर लेटा

हुआ था। फिर ऐसी स्थिति में भला आप ही सोचें क्या उसे अपने नेत्रों पर कभी विश्वास हो सकेगा ? मुझे भी अपनी स्थिति के कारण विश्वास नहीं हो रहा है। मैं विवश हूँ और समझता हूँ कि मेरी यह दुर्बलता क्षम्य होगी ?' रामराय ने वास्तविकता बतला दी थी।

तिरु का हृदय रामराय की निष्कपटता पर न्यौछावर हो गया। उसके शरीर में एक विशेष प्रकार की आनन्ददायिनी सिहरन फैलकर अंगों को गुदगुदा गई। वह चुप थी।

रामराय ने उसका हाथ पकड़ कर अपनी हथेलियों में दबा लिया 'तिरु, सूरज को साक्षी देकर आज प्रतिज्ञा करता हूं कि जब तक शरीर में जान रहेगी, ज़बान मुँह में हिलती रहेगी तब तक तिरु के अतिरिक्त दूसरा नाम कोई नहीं सुन सकेगा। यह जीवन अब तुम्हारा है और मरते दम तक तुम्हारा रहेगा। इसके अतिरिक्त मेरे पास और कुछ कहने को नहीं है।'

तिरु ने धीरे से हाथ खींच लिया 'चलिये ! चलें।'

शरीर में फैले हुये रोमांच को पुरुष साध न सका। उसकी भुजायें फैलीं और युवती उसमें आबद्ध हो गई। शक्तिशाली ने और ढिठाई बरतनी चाही। उसने अधरों को चूमने का प्रयत्न किया परन्तु युवती ने रोक दिया, 'नहीं। प्रत्येक कार्य के लिये समय निर्धारित है। भविष्य को सुखी बनाने में आनन्द है। चलिये।' वह अलग हो गई।

दोनों खड़े हो गये।

रामराय ने चलते-चलते कहा 'कल फिर.......।'

'जी नहीं।'

'क्यों ?'

'आपकी ढिठाई जो कैसी है ?'

रामराय हंसने लगा।

समय के साथ-साथ वे सारी बातें भी अंधकार में विलीन हो गईं। जीवन का मार्ग दूसरा बना। उस पर चलता रहा। विवशता थी। अन्य कोई रास्ता नहीं दिखलाई पड़ रहा था। भाग्य ने पुनः पलटा खाया और मैं उस जीवन को त्याग कर इस जीवन में आया। आपका प्रेम मिला जो मेरे लिए दुर्लभ था किन्तु दूध से जली हुई ज़बान को मट्ठे पर भरोसा कैसे होता? मेरे भीतर बहुत समय तक अन्तर्द्वन्द चलता रहा जिसका आभास आप को जब-तब मिला भी होगा परन्तु अन्त में हृदय की जीत हुई फिर भी बुद्धि अतीत के उस चित्र को विसरने नहीं देती है। वह खोद-खोद कर मुझे सचेत करती रहती है कि बैर और प्रीति समान स्तर वालों में होना चाहिए असमान में नहीं। यद्यपि मुझे इस तर्क पर विश्वास नहीं है और जीवन में कभी होगा भी नहीं परन्तु यह मैं अवश्य पूछ लेना चाहता हूँ कि मुझे जो कुछ दिया गया है उसे वापस तो नहीं ले लिया जायेगा? जो कदम राजकुमारी जी ने उठाया है उस पर भली भाँति सोच लिया गया है न?'

'सोच लिया है।' तिरु ने धीरे से कह दिया।

'तो क्या विवाह सम्बन्ध सम्भव है? क्या राजक्कल तम्बिरन इस पर राज़ी हो सकेंगे?'

'सम्भव भी है और नहीं भी।'

'तब? यदि उन्होंने नाहीं कर दिया तो?'

'तो क्या हुआ? जब पिता अपने संतान की इच्छाओं का ध्यान नहीं रख सकेगा तो संतानें क्यों कर पिता की आज्ञाओं को पालन करने के लिये बाध्य होने लगीं? उन्हें भी तो अपनी बुद्धि की उपयोगिता का अनुमान है?' वह तनिक रुकी और सिर झुकाती हुई बोली, 'पर मेरे ऊपर आचार्य के सन्देह का कारण?'

'यह मेरी दुर्बलता है राजकुमारी जी और कुछ नहीं। मेरी स्थिति उस मनुष्य की भांति है जो रात में सोया था झोपड़ी के अन्दर परन्तु जब आँखें खुलीं तो वह किसी राजप्रासाद में सोने के पर्यंक पर लेटा

हुआ था। फिर ऐसी स्थिति में भला आप ही सोचें क्या उसे अपने नेत्रों पर कभी विश्वास हो सकेगा ? मुझे भी अपनी स्थिति के कारण विश्वास नहीं हो रहा है। मैं विवश हूँ और समझता हूँ कि मेरी यह दुर्बलता क्षम्य होगी ?' रामराय ने वास्तविकता बतला दी थी।

तिरु का हृदय रामराय की निष्कपटता पर न्यौछावर हो गया। उसके शरीर में एक विशेष प्रकार की आनन्ददायिनी सिहरन फैलकर अंगों को गुदगुदा गई। वह चुप थी।

रामराय ने उसका हाथ पकड़ कर अपनी हथेलियों में दबा लिया 'तिरु, सूरज को साक्षी देकर आज प्रतिज्ञा करता हूं कि जब तक शरीर में जान रहेगी, ज़बान मुँह में हिलती रहेगी तब तक तिरु के अतिरिक्त दूसरा नाम कोई नहीं सुन सकेगा। यह जीवन अब तुम्हारा है और मरते दम तक तुम्हारा रहेगा। इसके अतिरिक्त मेरे पास और कुछ कहने को नहीं है।'

तिरु ने धीरे से हाथ खींच लिया 'चलिये ! चलें।'

शरीर में फैले हुये रोमांच को पुरुष साध न सका। उसकी भुजायें फैलीं और युवती उसमें आबद्ध हो गई। शक्तिशाली ने और ढिठाई बरतनी चाही। उसने अधरों को चूमने का प्रयत्न किया परन्तु युवती ने रोक दिया, 'नहीं। प्रत्येक कार्य के लिये समय निर्धारित है। भविष्य को सुखी बनाने में आनन्द है। चलिये।' वह अलग हो गई।

दोनों खड़े हो गये।

रामराय ने चलते-चलते कहा 'कल फिर·······।'

'जी नहीं।'

'क्यों ?'

'आपकी ढिठाई जो कैसी है ?'

रामराय हंसने लगा।

छत्तीस

अकस्मात एक नई घटना घटित हुई। सम्राट् कृष्णदेव राय ने सैयद मीर खाँ नामक व्यक्ति को जो उसकी सेना में एक टुकड़ी का नायक था, चालीस हज़ार बाराह देकर घोड़े खरीदने के लिये गोआ भेजा। मीर खाँ चालीस हज़ार बाराह के साथ पोंडा पहुँचा। पोंडा मुसलमानों की एक बस्ती थी जहाँ से गोआ केवल चार कोस रह जाता था। मीर खाँ पौंडा में विश्राम हेतु रुका। इसी बीच बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह का पत्र लेकर एक कासिद उसके पास आया। मीर खाँ को आदिलशाह का पत्र रुचिकर प्रतीत हुआ। उसने उसका उत्तर दिया और अविलम्ब प्रत्युत्तर के लिये प्रार्थना की। कासिद पवन वेग से गया और उसी वेग से लौटा भी। सुल्तान और सैयद के बीच बात पक्की हो गई। सैयद ने नमक हरामी की। उसने सम्राट् के साथ विश्वासघात किया। वह गोआ न जाकर बीजापुर चला गया। उसने ईमान के साथ-साथ अपनी जाति पर भी कलंक का टीका लगा दिया।

मंत्रगूढ़ विभाग के प्रधान बोम्मलत कले द्वारा सम्राट् को सूचना मिली। पहले सम्राट् को विश्वास नहीं हुआ। वह मनुष्य पहले था उस के बाद राजनीतिज्ञ। वह नहीं समझता था कि मनुष्यता का बदला पशुता में भी दिया जा सकता है। उसने कले की ओर ध्यान से देखा 'सही सूचना है ?'

'जी हाँ राजक्कल तम्बिरन।' कले ने ताली बजाई।

द्वारिक नतमस्तक अन्दर आया।

'गोश्रा से श्राये हुये व्यक्ति को उपस्थित करो।'

'जी प्रभु।' वह पीछे हटता हुश्रा बाहर हो गया।

'गोश्रा में नियुक्त गुप्तचर ने श्राकर सविस्तार वर्णन किया। सम्राट् ध्यानपूर्वक सुनता रहा। उसे विश्वास हो गया। सब सुन लेने पर उसने जाने की श्रनुमति दी। दोनों चले गये। सम्राट् कुछ समय तक इस प्रश्न की जटिलता पर सोचता रहा श्रौर श्रन्त में कर्णिक को बुलाकर एक पत्र लिखवाया—

बीजापुर सुल्तान, श्रादिलशाह बहादुर,

हमारी श्रापकी मित्रता पुरानी है। हम वर्षों से श्रापसी वैर भूलकर एक श्रादर्श पड़ोसी की भांति रहने में प्रयत्नशील हैं। न श्रापको हम से किसी प्रकार की शिकायत रही है श्रौर न हम को श्राप से। दोनों राज्यों की जनता शान्तिमय जीवन बिताते हुये श्रपनी उन्नति में लगी हुई है श्रौर श्राशा है भविष्य में भी लगी रहेगी परन्तु सैयद मीर खाँ की गद्दारी श्रौर भागकर श्रापकी शरण में श्राश्रय लेने की सूचना ने मुझे सन्देह में डाल दिया है। मैं नहीं समझता कि उस नमक हराम के पीछे हमारी इतने वर्षों की मित्रता श्रौर श्रमन-श्रमान में किसी प्रकार का श्रन्तर श्रा सकेगा। मुझे विश्वास है कि श्राप शीघ्र ही मीर खाँ को मेरे हवाले करने का प्रयत्न करेंगे ताकि मैं उसकी नीचता पर उसे उचित दंड देकर दूसरों के लिये एक मिसाल रख सकूँ।'

कर्णिक पत्र साफ करके लाया। सम्राट् ने पढ़ कर हस्ताक्षर किये। मोहर लगी श्रौर तत्काल पत्र श्रादिलशाह के पास भेजा गया।

श्रादिलशाह को पत्र मिला। उसने उसी समय श्रपने खास सलाहकारों श्रौर काज़ियों को बुलवाया। सब के एकत्रित होने पर पुनः पत्र पढ़कर सुनाया गया तदुपरान्त सुल्तान ने लोगों के विचारों को जानने की इच्छा प्रगट की। मंडली दो विचारों में बंट गई। कुछ का कहना था कि मीर खाँ को कृष्णदेव राय के हवाले कर देना ही उत्तम होगा; परन्तु बहुमत उसे रखने के पक्ष में था। उनके श्रनुसार मीर खाँ एक

छत्तीस

अकस्मात एक नई घटना घटित हुई। सम्राट् कृष्णदेव राय ने सैयद मीर खाँ नामक व्यक्ति को जो उसकी सेना में एक टुकड़ी का नायक था, चालीस हज़ार बाराह देकर घोड़े खरीदने के लिये गोआ भेजा। मीर खाँ चालीस हज़ार बाराह के साथ पोंडा पहुँचा। पोंडा मुसलमानों की एक बस्ती थी जहाँ से गोआ केवल चार कोस रह जाता था। मीर खाँ पोंडा में विश्राम हेतु रुका। इसी बीच बीजापुर के सुल्तान आदिलशाह का पत्र लेकर एक कासिद उसके पास आया। मीर खाँ को आदिलशाह का पत्र रुचिकर प्रतीत हुआ। उसने उसका उत्तर दिया और अविलम्ब प्रत्युत्तर के लिये प्रार्थना की। कासिद पवन वेग से गया और उसी वेग से लौटा भी। सुल्तान और सैयद के बीच बात पक्की हो गई। सैयद ने नमक हरामी की। उसने सम्राट् के साथ विश्वासघात किया। वह गोआ न जाकर बीजापुर चला गया। उसने ईमान के साथ-साथ अपनी जाति पर भी कलंक का टीका लगा दिया।

मंत्रगूढ़ विभाग के प्रधान बोम्मलत कले द्वारा सम्राट् को सूचना मिली। पहले सम्राट् को विश्वास नहीं हुआ। वह मनुष्य पहले था उस के बाद राजनीतिज्ञ। वह नहीं समझता था कि मनुष्यता का बदला पशुता में भी दिया जा सकता है। उसने कले की ओर ध्यान से देखा 'सही सूचना है ?'

'जी हाँ राजक्कल तम्बिरन।' कले ने ताली बजाई।

द्वारिक नतमस्तक अन्दर आया।

'गोआ से आये हुये व्यक्ति को उपस्थित करो।'

'जी प्रभु।' वह पीछे हटता हुआ बाहर हो गया।

'गोआ में नियुक्त गुप्तचर ने आकर सविस्तार वर्णन किया। सम्राट् ध्यानपूर्वक सुनता रहा। उसे विश्वास हो गया। सब सुन लेने पर उसने जाने की अनुमति दी। दोनों चले गये। सम्राट् कुछ समय तक इस प्रश्न की जटिलता पर सोचता रहा और अन्त में करिणक को बुलाकर एक पत्र लिखवाया—

बीजापुर सुल्तान, आदिलशाह बहादुर,

हमारी आपकी मित्रता पुरानी है। हम वर्षों से आपसी वैर भूलकर एक आदर्श पड़ोसी की भांति रहने में प्रयत्नशील हैं। न आपको हम से किसी प्रकार की शिकायत रही है और न हम को आप से। दोनों राज्यों की जनता शान्तिमय जीवन बिताते हुये अपनी उन्नति में लगी हुई है और आशा है भविष्य में भी लगी रहेगी परन्तु सैयद मीर खाँ की गद्दारी और भागकर आपकी शरण में आश्रय लेने की सूचना ने मुझे सन्देह में डाल दिया है। मैं नहीं समझता कि उस नमक हराम के पीछे हमारी इतने वर्षों की मित्रता और अमन-अमान में किसी प्रकार का अन्तर आ सकेगा। मुझे विश्वास है कि आप शीघ्र ही मीर खाँ को मेरे हवाले करने का प्रयत्न करेंगे ताकि मैं उसकी नीचता पर उसे उचित दंड देकर दूसरों के लिये एक मिसाल रख सकूँ।'

करिणक पत्र साफ करके लाया। सम्राट् ने पढ़ कर हस्ताक्षर किये। मोहर लगी और तत्काल पत्र आदिलशाह के पास भेजा गया।

आदिलशाह को पत्र मिला। उसने उसी समय अपने खास सलाह-कारों और काज़ियों को बुलवाया। सब के एकत्रित होने पर पुनः पत्र पढ़कर सुनाया गया तदुपरान्त सुल्तान ने लोगों के विचारों को जानने की इच्छा प्रगट की। मंडली दो विचारों में बंट गई। कुछ का कहना था कि मीर खाँ को कृष्णदेव राय के हवाले कर देना ही उत्तम होगा; परन्तु बहुमत उसे रखने के पक्ष में था। उनके अनुसार मीर खाँ एक

विद्वान् व्यक्ति था और साथ ही पैगम्बर मुहम्मद साहब के सम्बन्धियों में होता था। वह तो पूज्यनीय हुआ। उसे काफिरों के हवाले कैसे किया जा सकता था ? सुल्तान सब की सुनता रहा। बातों के दौरान में एक काज़ी ने एक बात ऐसी की जो आदिलशाह के मन की थी। वह बोला 'ग़रीबपरवर ! क्रीशनदेव राय को अपनी ताक़त का बड़ा गरूर हो गया है। उसे अपने बाप दादे वाला ज़माना भूल गया है। अगर इसी बहाने इस बार उसे कस दिया गया तो फिर सिर उठाने की हिम्मत नहीं करेगा वरना मुमकिन है वह अपनी ताक़त के नशे में धोखा देकर कभी हमला कर बैठे। दुश्मन को हमेशा खौफज़दा बनाये रखना हर माने में बेहत्तर होता है आलमपनाह।'

'आप सहीं कहते हैं। मैं भी इसी का क़ायल हूँ लेकिन मौक़ा अपनी ओर से क्यों दिया जाय ? मैं समझता हूँ मेरे जवाब के बाद वह खुद लड़ाई की तैयारी शुरू कर देगा।'

सभा भंग हुई। सैयद मीर खाँ को दबुल्ल भेज दिया गया जो सुल्तान के राज्य का एक दूरवर्ती स्थान था। साथ ही कृष्णदेव राय को भी पत्र भेजा गया जिसमें सुल्तान ने लिखा, 'XXX मुझे खुद सैयद मीर खाँ की उस वक्त जानकारी हुई जब आपका खत मिला। इसके पहले मुझे उसके बारे में कोई वाकफियत नहीं थी। अभी-अभी मुझे खबर मिली है कि उसने दबुल्ल पर कब्ज़ा कर लिया है और आगे के लिये भी उसकी तैयारी हो रही है। मैंने उसके खिलाफ़ फौज भेजने का हुक्म दे रक्खा है। इससे ज्यादा मैं और क्या कर सकता हूँ। XXX।'

आदिलशाह की धूर्तता इतने तक ही सीमित नहीं रही। उसने दबुल्ल में मीर खाँ का वध करा कर पूरी सम्पत्ति अपने अधिकार में कर ली। यही उसका अन्तिम उद्देश्य था।

आदिलशाह का पत्र सम्राट् कृष्णदेव राय को मिला। राजप्रासाद के भूगर्भ में एक कक्ष था जिसकी दीवारें, फर्श, छत सभी सोने की चद्दरों से ढंकी हुई थीं। वह स्वर्ण कक्ष 'मंत्रणागृह' के नाम से जाना

जाता था। गंभीर समस्याओं के उठ खड़े होने पर कृष्णदेव राय इसी गृह में बैठकर अपने विशेष सलाहकारों के संग मंत्रणा किया करता था। आज इसी प्रकार की बैठक अर्ध-रात्री के समय इस कक्ष में आरम्भ हुई। परामर्शदाताओं में महामंत्री अप्पाजी, राजगुरु रंगनाथ दीक्षित, कवि पेदण्णा, सम्राट् के अंगरक्षकों का प्रधान कम्मानायक और मंत्रगूढ़ विभाग का प्रधान बोम्मलत कले था।

सम्राट् के आदेशानुसार कम्मानायक ने आदिलशाह के पत्र को पढ़कर सुनाया। पत्र सुन लेने पर सम्राट् ने पूछा 'अब आप सब इससे क्या आशय निकालते हैं ?'

'आशय तो साफ है।' अप्पा जी ने कहा 'आदिलशाह मीर खां को लौटाना नहीं चाहता।'

'हाँ। बिल्कुल यही चीज़ है।' कम्मानायक ने समर्थन किया।

सम्राट् ने अन्य व्यक्तियों की ओर देखा।

सब ने अप्पा जी का समर्थन किया और एक मत से आदिलशाह के विरुद्ध उचित कार्यवाही करने की राय दी।

'तो मीर खाँ के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जाय ?' सम्राट् पूछा।

'बिल्कुल। किन्तु सेना दबुल्ल वाले मार्ग से न चलकर रायचूर वाले मार्ग से चलेगी। एक तीर से दो शिकार करने की आवश्यकता है। इस तरफ से चलने पर रायचूर भी आप के अधिकार में आ जायेगा और स्वाभाविक है कि आदिलशाह जब इसके रक्षार्थ सामने आयेगा तो आप उसे भी नीचा दिखाने में सफल हो सकेंगे।' अप्पा जी राजनीति का पुराना खिलाड़ी था।

'अप्पा जी का प्रस्ताव सुन्दर है,' महाकवि बोला 'रायचूर सदैव से हमारा रहा है परन्तु यवनों ने अपनी शक्ति के द्वारा उसे अपने अधिकार में कर रक्खा है। अवसर उपयुक्त है। राजक्कल तम्बिरन इस बहाने आदिलशाह को नीचा दिखा कर स्वर्गीय महाराज की आत्मा को

विद्वान् व्यक्ति था और साथ ही पैगम्बर मुहम्मद साहब के सम्बन्धियों में होता था। वह तो पूज्यनीय हुआ। उसे काफिरों के हवाले कैसे किया जा सकता था? सुल्तान सब की सुनता रहा। बातों के दौरान में एक काज़ी ने एक बात ऐसी की जो आदिलशाह के मन की थी। वह बोला 'ग़रीबपरवर! क्रीशनदेव राय को अपनी ताक़त का बड़ा गरूर हो गया है। उसे अपने बाप दादे वाला ज़माना भूल गया है। अगर इसी बहाने इस बार उसे कस दिया गया तो फिर सिर उठाने की हिम्मत नहीं करेगा वरना मुमकिन है वह अपनी ताक़त के नशे में धोखा देकर कभी हमला कर बैठे। दुश्मन को हमेशा खौफज़दा बनाये रखना हर माने में बेहत्तर होता है आलमपनाह।'

'आप सहीं कहते हैं। मैं भी इसी का क़ायल हूँ लेकिन मौक़ा अपनी ओर से क्यों दिया जाय? मैं समझता हूँ मेरे जवाब के बाद वह खुद लड़ाई की तैयारी शुरू कर देगा।'

सभा भंग हुई। सैयद मीर खाँ को दबुल्ल भेज दिया गया जो सुल्तान के राज्य का एक दूरवर्ती स्थान था। साथ ही कृष्णदेव राय को भी पत्र भेजा गया जिसमें सुल्तान ने लिखा, 'XXX मुझे खुद सैयद मीर खाँ की उस वक्त जानकारी हुई जब आपका खत मिला। इसके पहले मुझे उसके बारे में कोई वाकफियत नहीं थी। अभी-अभी मुझे खबर मिली है कि उसने दबुल्ल पर कब्ज़ा कर लिया है और आगे के लिये भी उसकी तैयारी हो रही है। मैंने उसके खिलाफ़ फौज भेजने का हुक्म दे रक्खा है। इससे ज्यादा मैं और क्या कर सकता हूँ। XXX।'

आदिलशाह की धूर्तता इतने तक ही सीमित नहीं रही। उसने दबुल्ल में मीर खाँ का वध करा कर पूरी सम्पत्ति अपने अधिकार में कर ली। यही उसका अन्तिम उद्देश्य था।

आदिलशाह का पत्र सम्राट् कृष्णदेव राय को मिला। राजप्रासाद के भूगर्भ में एक कक्ष था जिसकी दीवारें, फर्श, छत सभी सोने की चद्दरों से ढंकी हुई थीं। वह स्वर्ण कक्ष 'मंत्रणागृह' के नाम से जाना

जाता था। गंभीर समस्याओं के उठ खड़े होने पर कृष्णदेव राय इसी गृह में बैठकर अपने विशेष सलाहकारों के संग मंत्रणा किया करता था। आज इसी प्रकार की बैठक अर्ध-रात्री के समय इस कक्ष में आरम्भ हुई। परामर्शदाताओं में महामंत्री अप्पाजी, राजगुरु रंगनाथ दीक्षित, कवि पेदण्णा, सम्राट् के अंगरक्षकों का प्रधान कम्मानायक और मंत्रगूढ़ विभाग का प्रधान बोम्मलत कले था।

सम्राट् के आदेशानुसार कम्मानायक ने आदिलशाह के पत्र को पढ़कर सुनाया। पत्र सुन लेने पर सम्राट् ने पूछा 'अब आप सब इससे क्या आशय निकालते हैं ?'

'आशय तो साफ है।' अप्पा जी ने कहा 'आदिलशाह मीर खां को लौटाना नहीं चाहता।'

'हाँ। बिल्कुल यही चीज़ है।' कम्मानायक ने समर्थन किया।

सम्राट् ने अन्य व्यक्तियों की ओर देखा।

सब ने अप्पा जी का समर्थन किया और एक मत से आदिलशाह के विरुद्ध उचित कार्यवाही करने की राय दी।

'तो मीर खाँ के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जाय ?' सम्राट् पूछा।

'बिल्कुल। किन्तु सेना दबुल्ल वाले मार्ग से न चलकर रायचूर वाले मार्ग से चलेगी। एक तीर से दो शिकार करने की आवश्यकता है। इस तरफ से चलने पर रायचूर भी आप के अधिकार में आ जायेगा और स्वाभाविक है कि आदिलशाह जब इसके रक्षार्थ सामने आयेगा तो आप उसे भी नीचा दिखाने में सफल हो सकेंगे।' अप्पा जी राजनीति का पुराना खिलाड़ी था।

'अप्पा जी का प्रस्ताव सुन्दर है,' महाकवि बोला 'रायचूर सदैव से हमारा रहा है परन्तु यवनों ने अपनी शक्ति के द्वारा उसे अपने अधिकार में कर रखा है। अवसर उपयुक्त है। राजक्कल तम्बिरन इस बहाने आदिलशाह को नीचा दिखा कर स्वर्गीय महाराज की आत्मा को

संतोष दे सकेंगे । यह आवश्यक है ।' सम्राट् कृष्णदेव राय के पिता की मरते दम तक अभिलाषा बनी रही कि वह बैरियों से रायचूर को छीन न सका ।

सम्राट् भी सहमत हो गया ।

सैंतीस

सर्दी पड़ने लगी थी। दिन छोटा हो गया था । सूरज को निकलते डूबते देर नहीं लगती थी। सम्भवतः ठंड के प्रकोप से वह भी भयभीत हो उठा था। परन्तु प्रकृति का बनाव सिंगार बढ़ गया था। कण-कण में प्रसन्नता खिलखिला उठी थी । सूखे भी हरे बन गये थे। मादकता फैल गई थी। अतः प्रेम के संसार में विचरण करने वालों की भावनाओं का कवित्तमय होना स्वाभाविक हीं था। कवि भूषण का युवा हृदय लहराने लगा था। कल्पनाओं में नवीनता आ गई थी। चाव बढ़ गई थी। तालाब पर अब वह दोपहर से ही आकर बैठ जाया करता था।

गोपा ने नियमित रूप से आना बन्द कर दिया था। अंतरे तीसरे आया करती थी जिसकी जानकारी भूषण को होती थी। यद्यपि भूषण को यह अरुचिकर प्रतीत हो रहा था। उसे बीच वाले दिन काटने में मुश्किल हो जाते थे; परन्तु हर प्रकार से समझाने पर भी गोपा तैयार नहीं थी। वह लोकलाज की बात कहकर उसके मुँह को बन्द कर देती

थी। बदनामी बुरी होती है। वह सर्दियों में कभी भी संझा को नहाने नहीं आया करती रही है। प्रत्येक नवीनता पड़ोसियों को खटकने लगती है। टीका टिप्पणी प्रारम्भ हो जाती है।

भूषण आज अन्य दिनों की अपेक्षा तालाब पर बहुत पहले आ गया था। एक प्रकार सवेरे से ही आकर बैठ गया था। वह आज अधिक प्रसन्न था और सम्भवत: इतने पहले आने का कारण भी यही था। वह गोपा को शीघ्र-से-शीघ्र बता देने के लिये उत्सुक हो उठा था। दोपहर का सूरज जब सिर पर आया तो गोपा कपड़ों सहित तालाब पर आई। भूषण ने दूर से देखा और पेड़ की ओट में हो गया। गोपा ने सिढ़ियों पर कपड़े रक्खे। क्षण भर खड़ी-खड़ी सोचती रही तदुपरान्त उधर को चली। समीप आने पर भूषण ने पीछे से निकलकर उसकी आँखों को मूँद लिया।

'छोड़िये। आपने तो मुझे डरा दिया।'

दोनों बैठ गये। भूषण उसे टकटकी लगाकर देखने लगा।

'क्यों मेरे चेहरे में कोई नवीनता आ गई है ?'

कवि ने सिर हिलाया, 'हाँ। और दिनों की अपेक्षा आज लावण्यता अधिक है।'

'ज़रूर अधिक होगी।' उसने मुँह बनाकर गर्दन झुका ली।

भूषण ने ठोड़ी पकड़कर ऊपर उठा दिया 'क्या डर लगने लगा कि कहीं नज़र न लग जाय ? सुनते ही गर्दन झुका ली ?' वह हँसने लगा 'नज़र अपने लोगों की थोड़े ही लगती है। यह तो बाहर वाले होते हैं।'

गोपा ने मुंह हटा लिया 'आपका मन ऐसी ही बातों में बसता है। अच्छी बातें तो मुंह से निकलती ही नहीं।'

अच्छी बातों वाली अभी उम्र आई कहाँ है ? प्रत्येक काम के लिये समय बंटा हुआ है। अभी तो गृहस्थाश्रम है।'

'चलिये। बड़े आये गृहस्थ आश्रम वाले। कवियों को हवा में महल

संतोष दे सकेंगे। यह आवश्यक है।' सम्राट् कृष्णदेव राय के पिता की मरते दम तक अभिलाषा बनी रही कि वह बैरियों से रायचूर को छीन न सका।

सम्राट् भी सहमत हो गया।

सैंतीस

सर्दी पड़ने लगी थी। दिन छोटा हो गया था। सूरज को निकलते डूबते देर नहीं लगती थी। सम्भवतः ठंड के प्रकोप से वह भी भयभीत हो उठा था। परन्तु प्रकृति का बनाव सिंगार बढ़ गया था। कण-कण में प्रसन्नता खिलखिला उठी थी। सूखे भी हरे बन गये थे। मादकता फैल गई थी। अतः प्रेम के संसार में विचरण करने वालों की भावनाओं का कवित्तमय होना स्वाभाविक ही था। कवि भूषण का युवा हृदय लहराने लगा था। कल्पनाओं में नवीनता आ गई थी। चाव बढ़ गई थी। तालाब पर अब वह दोपहर से ही आकर बैठ जाया करता था।

गोपा ने नियमित रूप से आना बन्द कर दिया था। अंतरे तीसरे आया करती थी जिसकी जानकारी भूषण को होती थी। यद्यपि भूषण को यह अरुचिकर प्रतीत हो रहा था। उसे बीच वाले दिन काटने में मुश्किल हो जाते थे; परन्तु हर प्रकार से समझाने पर भी गोपा तैयार नहीं थी। वह लोकलाज की बात कहकर उसके मुँह को बन्द कर देती

थी । बदनामी बुरी होती है । वह सर्दियों में कभी भी झंझा को नहाने नहीं आया करती रही है । प्रत्येक नवीनता पड़ोसियों को खटकने लगती है । टीका टिप्पणी प्रारम्भ हो जाती है ।

भूषण आज अन्य दिनों की अपेक्षा तालाब पर बहुत पहले आ गया था । एक प्रकार सवेरे से ही आकर बैठ गया था । वह आज अधिक प्रसन्न था और सम्भवतः इतने पहले आने का कारण भी यही था । वह गोपा को शीघ्र-से-शीघ्र बता देने के लिये उत्सुक हो उठा था । दोपहर का सूरज जब सिर पर आया तो गोपा कपड़ों सहित तालाब पर आई । भूषण ने दूर से देखा और पेड़ की ओट में हो गया । गोपा ने सिढ़ियों पर कपड़े रक्खे । क्षण भर खड़ी-खड़ी सोचती रही तदुपरान्त उधर को चली । समीप आने पर भूषण ने पीछे से निकलकर उसकी आँखों को मूँद लिया ।

'छोड़िये । आपने तो मुझे डरा दिया ।'

दोनों बैठ गये । भूषण उसे टकटकी लगाकर देखने लगा ।

'क्यों मेरे चेहरे में कोई नवीनता आ गई है ?'

कवि ने सिर हिलाया, 'हाँ । और दिनों की अपेक्षा आज लावण्यता अधिक है ।'

'ज़रूर अधिक होगी ।' उसने मुँह बनाकर गर्दन झुका ली ।

भूषण ने ठोड़ी पकड़कर ऊपर उठा दिया 'क्या डर लगने लगा कि कहीं नज़र न लग जाय ? सुनते ही गर्दन झुका ली ?' वह हँसने लगा 'नज़र अपने लोगों की थोड़े ही लगती है । यह तो बाहर वाले होते हैं ।'

गोपा ने मुंह हटा लिया 'आपका मन ऐसी ही बातों में बसता है । अच्छी बातें तो मुंह से निकलती ही नहीं ।'

अच्छी बातों वाली अभी उम्र आई कहाँ है ? प्रत्येक काम के लिये समय बंटा हुआ है । अभी तो गृहस्थाश्रम है ।'

'चलिये । बड़े आये गृहस्थ आश्रम वाले । कवियों को हवा में महल

बनाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं आता।' गोपा का संकेत कहीं और था।

'डंक मारने से स्त्रियाँ चूकती नहीं। घबड़ाओ नहीं। हम्पी में महल बनवाने की अनुमति मिल गई है। पंडितों से शुभ महूर्त्त विचारने के लिये कह दिया है। शीघ्र ही श्रीगणेश होगा। तब पूछूंगा तुम से।'

गोपा ने तनिक ध्यान से भूषण के मुख की ओर देखा। उसके अन्तर में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

'देख क्या रही हो? मैं क्या झूठ कह रहा हूँ? राजक्कल तम्बिरन से अनुमति मिल गई है।' वह अभी पहेली बुझा रहा था।

गोपा को अनुमान लग गया परन्तु फिर भी उसने अनभिज्ञता का परिचय दिया। जब भूषण को पहेली बुझाने में आनन्द मिल सकता था तो क्या उसे बूझने में आनन्द नहीं मिलता। वह बोली 'मिल गई होगी। अपने को इससे क्या मतलब? झोंपड़ी के रहने वाले झोंपड़ी की बातें जानते हैं। न उन्हें हवा में महल बनाने का ज्ञान है न हम्पी में।'

भूषण ने उसके अधरों के समीप मुंह सटा कर धीरे से कहा 'राज-क्कल तम्बिरन हमारे-तुम्हारे सम्बन्ध से प्रसन्न हैं। मैंने परसों उनसे चर्चा चलाई थी।'

गोपा ने आँखें नचाई, 'झूठ।' उसका अंग-अंग फड़क उठा था।

'सत्य कह रहा हूँ गोपा। यही बताने के लिये आज यहां सवेरे से बैठा हूँ। राजक्कल तम्बिरन ऐसे विवाहों को पसन्द करते हैं। उनके विचार से हृदय का ही बन्धन सर्वश्रेष्ठ बन्धन है। उन्होंने··· ।'

'क्या आपने,' गोपा ने बीच में टोक दिया 'अपना और मेरा नाम राजक्कल तम्बिरन को बता दिया है?'

नहीं। अभी क्यों बताता? अभी तो मैंने उनके विचारों की जान-कारी की है। अब किसी दिन उपयुक्त अवसर देखकर अपनी बात भी करूँगा।'

'आप ने यह प्रसंग उठाया किस प्रकार था ?' गोपा जानने के लिये उत्सुक थी।

'एक दिन राजक्कल तम्बिरन से साहित्यिक वार्तायें हो रही थीं। हम लोगों के अतिरिक्त बाहर के एक-दो विद्वान भी गोष्ठी में उपस्थित थे। वार्ता चलते-चलते रामायण का प्रसंग आया। रामायण के जन्म-दाता बाल्मीकि की भी चर्चा हुई और फिर उनके जन्म कर्म पर भी टीका-टिप्पणी होने लगी। मैंने अवसर देखकर वार्तालाप के क्रम को अपने विषयानुसार मोड़ा। मैं बोला, "यद्यपि राजक्कल तम्बिरन ने 'आमुक्त-मलयाडा' में कर्म को ही सर्वोपरि स्वीकार किया है किन्तु क्या आज का युग, समाज में इस आधार को लेकर व्यवस्था स्थापित करने में सफल हो सकेगा ? जातीयता की भावना ने जैसा भयंकर रूप धारण कर रक्खा है और जो दिन-प्रतिदिन भयंकर ही बनती जा रही है, क्या उसमें सुधार की वह आशा दिखाई पड़ सकती है जैसा वेदों में वर्णन देखने को मिलता है ?"

राजक्कल तम्बिरन मेरी बातों पर मुसकराये "किन्तु भूषण जी उस युग में और आज के युग में बड़ा अन्तर आ गया है। तब भारतवर्ष केवल भारतवासियों का था। समाज का स्वरूप भिन्न था परन्तु आज देश उन विदेशियों के आधिपत्य में है जिनका रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल, रीति-रिवाज सब भिन्न और यहाँ की संस्कृति और धर्म के पूर्णतः प्रतिकूल हैं। अतः विचारों में प्रतिक्रिया स्वाभाविक है। आज का समाज इन्हीं प्रतिक्रियाओं के आधार पर अपना रूप बदलता जा रहा है। आपसी भेदभाव का बढ़ना प्राकृतिक है फिर भी उन्हें रोकते रहने का प्रयास होते रहना चाहिये। शक्ति के द्वारा नहीं वरन् आपसी प्रेम और सद्भावनाओं के आधार पर।"

मैंने अधिक जानकारी के लिये पुनः प्रश्न किया "परन्तु जब तक राजक्कल तम्बिरन की विशेष अनुकम्पा न होगी तब तक इस दिशा में कदम उठाने वालों को समाज दूध की मक्खी की भाँति निकाल फेंकेगा

बनाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं आता।' गोपा का संकेत कहीं और था।

'डंक मारने से स्त्रियाँ चूकती नहीं। घबड़ाओ नहीं। हम्पी में महल बनवाने की अनुमति मिल गई है। पंडितों से शुभ महूर्त्त विचारने के लिये कह दिया है। शीघ्र ही श्रीगणेश होगा। तब पूछूंगा तुम से।'

गोपा ने तनिक ध्यान से भूषण के मुख की ओर देखा। उसके अन्तर में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

'देख क्या रही हो? मैं क्या झूठ कह रहा हूँ? राजक्कल तम्बिरन से अनुमति मिल गई है।' वह अभी पहेली बुझा रहा था।

गोपा को अनुमान लग गया परन्तु फिर भी उसने अनभिज्ञता का परिचय दिया। जब भूषण को पहेली बुझाने में आनन्द मिल सकता था तो क्या उसे बूझने में आनन्द नहीं मिलता। वह बोली 'मिल गई होगी। अपने को इससे क्या मतलब? झोंपड़ी के रहने वाले झोंपड़ी की बातें जानते हैं। न उन्हें हवा में महल बनाने का ज्ञान है न हम्पी में।'

भूषण ने उसके अधरों के समीप मुंह सटा कर धीरे से कहा 'राजक्कल तम्बिरन हमारे-तुम्हारे सम्बन्ध से प्रसन्न हैं। मैंने परसों उनसे चर्चा चलाई थी।'

गोपा ने आँखें नचाई, 'झूठ।' उसका अंग-अंग फड़क उठा था।

'सत्य कह रहा हूँ गोपा। यही बताने के लिये आज यहां सवेरे से बैठा हूँ। राजक्कल तम्बिरन ऐसे विवाहों को पसन्द करते हैं। उनके विचार से हृदय का ही बन्धन सर्वश्रेष्ठ बन्धन है। उन्होंने··· ।'

'क्या आपने,' गोपा ने बीच में टोक दिया 'अपना और मेरा नाम राजक्कल तम्बिरन को बता दिया है?'

नहीं। अभी क्यों बताता? अभी तो मैंने उनके विचारों की जानकारी की है। अब किसी दिन उपयुक्त अवसर देखकर अपनी बात भी करूँगा।'

'आप ने यह प्रसंग उठाया किस प्रकार था ?' गोपा जानने के लिये उत्सुक थी।

'एक दिन राजक्कल तम्बिरन से साहित्यिक वार्तायें हो रही थीं। हम लोगों के अतिरिक्त बाहर के एक-दो विद्वान भी गोष्ठी में उपस्थित थे। वार्ता चलते-चलते रामायण का प्रसंग आया। रामायण के जन्म-दाता बाल्मीकि की भी चर्चा हुई और फिर उनके जन्म कर्म पर भी टीका-टिप्पणी होने लगी। मैंने अवसर देखकर वार्तालाप के क्रम को अपने विषयानुसार मोड़ा। मैं बोला, "यद्यपि राजक्कल तम्बिरन ने 'आमुक्त-मल्लयाडा' में कर्म को ही सर्वोपरि स्वीकार किया है किन्तु क्या आज का युग, समाज में इस आधार को लेकर व्यवस्था स्थापित करने में सफल हो सकेगा ? जातीयता की भावना ने जैसा भयंकर रूप धारण कर रक्खा है और जो दिन-प्रतिदिन भयंकर ही बनती जा रही है, क्या उसमें सुधार की वह आशा दिखाई पड़ सकती है जैसा वेदों में वर्णन देखने को मिलता है ?"

राजक्कल तम्बिरन मेरी बातों पर मुसकराये "किन्तु भूषण जी उस युग में और आज के युग में बड़ा अन्तर आ गया है। तब भारतवर्ष केवल भारतवासियों का था। समाज का स्वरूप भिन्न था परन्तु आज देश उन विदेशियों के आधिपत्य में है जिनका रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल, रीति-रिवाज सब भिन्न और यहाँ की संस्कृति और धर्म के पूर्णतः प्रतिकूल हैं। अतः विचारों में प्रतिक्रिया स्वाभाविक है। आज का समाज इन्हीं प्रतिक्रियाओं के आधार पर अपना रूप बदलता जा रहा है। आपसी भेदभाव का बढ़ना प्राकृतिक है फिर भी उन्हें रोकते रहने का प्रयास होते रहना चाहिये। शक्ति के द्वारा नहीं वरन् आपसी प्रेम और सद्भावनाओं के आधार पर।"

मैंने अधिक जानकारी के लिये पुनः प्रश्न किया "परन्तु जब तक राजक्कल तम्बिरन की विशेष अनुकम्पा न होगी तब तक इस दिशा में कदम उठाने वालों को समाज दूध की मक्खी की भाँति निकाल फेंकेगा

न प्रभु ?"

राजक्कल तम्बिरन हँसने लगे "भूषण जी पहले कर्म क्षेत्र में उतरो तो मुझे तो प्रसन्नता होगी कि मेरे 'अष्ट दिग्गजों' में एक दिग्गज के पास इस प्रकार की भी क्षमता है।"

मैं चुप हो गया। बातों का क्रम बदला और दूसरी बातें होने लगीं। यह है हमारी उनकी बातचीत। अब तो तुम्हें विश्वास हो गया कि हमें उनकी अनुमति अवश्यमेव प्राप्त होगी। अब तुम बताओ कि तुम्हारी इच्छा कब की है ?'

'कभी भी नहीं।' वह गद्गद् हो रही थी।

'यह मुझे विश्वास है। तनिक हृदय पर हाथ रखकर अपने मन से तो पूछो।'

'सब पूछा है। हम लोगों का मन पुरुषों जैसा थोड़ा होता है कि बाहर कुछ और है और भीतर कुछ और।'

'उल्टी बात। क्यों ?'

अड़तीस

राजकुमारी तिरुमलाम्बा का रथ निकला था 'पान-सुपारी बाज़ार' को; परन्तु उसने सारथि से नहर की ओर मोड़ कर ले चलने के लिए कह दिया। रथ मुड़ गया। बगल में बैठी हुई चित्रपुष्पी होठों में मुसकराई 'वास्तव में उलझे हुए मन के लिए प्राकृतिक सुन्दरता रामबाण जैसा काम करती है। उसकी शरण में पहुँचते ही सारी चिन्ताओं से मुक्ति

मिल जाती है परन्तु साथ ही यहाँ एक दोष भी है। वह अन्तर की टीस को बढ़ा देती है। ऐसा मेरा स्वयं का अनुभव है।' रामराय के प्रति राजकुमारी के आकर्षणों का उसे आभास मिल चुका था।

'हाँ हाँ, अनुभव क्यों नहीं होगा ? महाभारत वाले संजय महाराज के बाद गोबिन्द ने तुझे ही तो दिव्य दृष्टि प्रदान की है। संसार में ऐसी कोई वस्तु है जिसके विषय में तुझे ज्ञान न हो ? दुष्ट ! जब देखो तब इसी प्रकार की बातें करेगी। इतनी बेचैनी है तो विवाह क्यों नहीं कर लेती ?'

चित्रपुष्पी ने जैसे राजकुमारी की बात सुनी न हो। वह उसी प्रकार बोली 'क्या है विलक्षणता ? कल आचार्य जी को भी इधर कल्पनाओं में विचरते देखा था। सम्भव है आज भी आये हों। कहीं मिल गये तब तो आना ही सार्थक हो जायेगा।'

'तेरा तो नहीं होगा ? तुझे क्यों प्रसन्नता है ? अब तू झूठ भी बहुत बोलने लगी है। कल तू इधर किस समय आई थी ?'

चित्रपुष्पी राजकुमारी की उत्सुकता को ताड़ गई। वह और गंभीर बन कर बोली 'दोपहर को। जब आप महारानी जी के पास बैठी हुई थीं। इसमें झूठ बोलने की कौन-सी बात है ? कल तो मेरी उनकी बात-चीत भी हुई थी। कुछ उदास से दिख रहे थे।'

राजकुमारी चकमे में आगई 'क्यों ?'

'क्या बताऊँ ? कारण जानने का बहुत प्रयत्न किया था किन्तु कुछ जान न सकी। हाँ, इतना अनुमान अवश्य लगा पाई थी कि उन्हें सम्भवतः अपने कहे हुए शब्दों पर पश्चाताप हो रहा था।'

चित्रपुष्पी पकड़ी गई। उसने उलटा कह दिया था। तिरु ने उसके कान पकड़े 'अनुमान लगाने में तेरी क्या बराबरी ? तू तो उड़ती चिड़िया के पर कतरती है। अपने शब्दों पर उन्हें पश्चाताप था क्यों ?' वह अपनी हँसी न रोक सकी।

चित्रपुष्पी भी हंसने लगी, 'एक बात कहूँ राजकुमारी जी', हँसी

न प्रभु ?"

राजक्कल तम्बिरन हँसने लगे "भूषण जी पहले कर्म क्षेत्र में उतरो तो मुझे तो प्रसन्नता होगी कि मेरे 'अष्ट दिग्गजों' में एक दिग्गज के पास इस प्रकार की भी क्षमता है।"

मैं चुप हो गया। बातों का क्रम बदला और दूसरी बातें होने लगीं। यह है हमारी उनकी बातचीत। अब तो तुम्हें विश्वास हो गया कि हमें उनकी अनुमति अवश्यमेव प्राप्त होगी। अब तुम बताओ कि तुम्हारी इच्छा कब की है ?'

'कभी भी नहीं।' वह गद्गद् हो रही थी।

'यह मुझे विश्वास है। तनिक हृदय पर हाथ रखकर अपने मन से तो पूछो।'

'सब पूछा है। हम लोगों का मन पुरुषों जैसा थोड़ा होता है कि बाहर कुछ और है और भीतर कुछ और।'

'उल्टी बात। क्यों ?'

अड़तीस

राजकुमारी तिरुमलाम्बा का रथ निकला था 'पान-सुपारी बाज़ार' को; परन्तु उसने सारथि से नहर की ओर मोड़ कर ले चलने के लिए कह दिया। रथ मुड़ गया। बगल में बैठी हुई चित्रपुष्पी होठों में मुसकराई 'वास्तव में उलझे हुए मन के लिए प्राकृतिक सुन्दरता रामबाण जैसा काम करती है। उसकी शरण में पहुँचते ही सारी चिन्ताओं से मुक्ति

मिल जाती है परन्तु साथ ही यहाँ एक दोष भी है। वह अन्तर की टीस को बढ़ा देती है। ऐसा मेरा स्वयं का अनुभव है।' रामराय के प्रति राजकुमारी के आकर्षणों का उसे आभास मिल चुका था।

'हाँ हाँ, अनुभव क्यों नहीं होगा ? महाभारत वाले संजय महाराज के बाद गोबिन्द ने तुझे ही तो दिव्य दृष्टि प्रदान की है। संसार में ऐसी कोई वस्तु है जिसके विषय में तुझे ज्ञान न हो ? दुष्ट ! जब देखो तब इसी प्रकार की बातें करेगी। इतनी बेचैनी है तो विवाह क्यों नहीं कर लेती ?'

चित्रपुष्पी ने जैसे राजकुमारी की बात सुनी न हो। वह उसी प्रकार बोली 'क्या है विलक्षणता ? कल आचार्य जी को भी इधर कल्पनाओं में विचरते देखा था। सम्भव है आज भी आये हों। कहीं मिल गये तब तो आना ही सार्थक हो जायेगा।'

'तेरा तो नहीं होगा ? तुझे क्यों प्रसन्नता है ? अब तू झूठ भी बहुत बोलने लगी है। कल तू इधर किस समय आई थी ?'

चित्रपुष्पी राजकुमारी की उत्सुकता को ताड़ गई। वह और गंभीर बन कर बोली 'दोपहर को। जब आप महारानी जी के पास बैठी हुई थीं। इसमें झूठ बोलने की कौन-सी बात है ? कल तो मेरी उनकी बात-चीत भी हुई थी। कुछ उदास से दिख रहे थे।'

राजकुमारी चकमे में आगई 'क्यों ?'

'क्या बताऊँ ? कारण जानने का बहुत प्रयत्न किया था किन्तु कुछ जान न सकी। हाँ, इतना अनुमान अवश्य लगा पाई थी कि उन्हें सम्भवतः अपने कहे हुए शब्दों पर पश्चाताप हो रहा था।'

चित्रपुष्पी पकड़ी गई। उसने उलटा कह दिया था। तिरु ने उसके कान पकड़े 'अनुमान लगाने में तेरी क्या बराबरी ? तू तो उड़ती चिड़िया के पर कतरती है। अपने शब्दों पर उन्हें पश्चाताप था क्यों ?' वह अपनी हँसी न रोक सकी।

चित्रपुष्पी भी हंसने लगी, 'एक बात कहूँ राजकुमारी जी', हँसी

रुकने पर वह बोली 'यद्यपि आप इतनी मेरी बुद्धि नहीं है और न किसी भले-बुरे को गहराई तक सोचने की क्षमता ही है पर मोटी समझ के अनुसार इतना कह सकती हूँ कि मन बड़ा चंचल है। उसे जीवन भर अंकुश में रखकर चलने की आवश्यकता है। निरंकुश हो जाने पर वह गड्ढे में गिरा सकता है।' उसका संकेत दूर तक था।

'तेरे भाव को मैं समझ रही हूँ चित्रपुष्पी। मेरे अन्तर में बहुत दिनों तक यह द्वन्द्व चलता रहा है। विशभदेव के प्रति मैं आकर्षित हुई इसमें सन्देह नहीं परन्तु कुछ ही दिनों बाद मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मैं किसी भावावेश में आकर ऐसा कर बैठी हूँ। मेरा हृदय इसके लिए तैयार नहीं था और दूसरी ओर आचार्य के प्रति ठीक इसके विपरीत भावना उठ खड़ी हुई। मैं उन से दूर रहने का प्रयत्न करके भी दूर रहने में असमर्थ रही और अब तो बिल्कुल असमर्थ हूँ। अब तू बता मैं क्या करूँ?'

'परन्तु इसके परिणाम के विषय में आपने कुछ सोचा है?'

'सोचा है, फिर भी विवशता का अनुभव कर रही हूँ। वहाँ से मन हटता नहीं।'

क्षण भर तक चित्रपुष्पी मौन रही, 'बड़ा कठिन मार्ग चुन लिया है आपने। यदि पुनः विचार कर सकती हों तो कर लीजिए। अभी समय है। इस मार्ग की कठिनाई यदि झेल न सकीं तो जीवन रोकर भी काटना दूभर हो जायेगा।'

'क्या पुनः विचार करने में रोना न पड़ेगा चित्रपुष्पी? हृदय की दहकती ज्वाला क्या कभी शान्त हो सकेगी? मैं समझती हूँ वह जीवन इस जीवन से भी अधिक दुखमय बन जायेगा। उसकी व्यथा असहनीय होगी जो मृत्यु के उपरान्त आत्मा तक को चैन नहीं लेने देगी। क्या मेरे इस कथन से तू सहमत नहीं है?'

'सहमत हूँ किन्तु ......' वह रुक गई। समझ नहीं पा रही थी कि क्या कहे, 'किन्तु इस मार्ग को छोड़ देना ही उचित है।

विशभदेव जी से विवाह सम्भव था परन्तु आचार्य रामराय से बिल्कुल असम्भव। सभी कुछ सोचने की आवश्यकता है राजकुमारी जी।'

'तो तेरी दृष्टि में हृदय से अधिक महत्व है वैभव और सुख ऐश्वर्य का ?'

'एक दम नहीं। मेरा अभिप्राय सुख वैभव से नहीं वरन् राजक्कल तम्बिरन की स्थिति से है। वंश और मर्यादा दोनों को ध्यान में रखना उनके लिए स्वाभाविक है और जहाँ ये दोनों स्वाभाविक हैं वहाँ इनके विपरीत पड़ने वाले कार्य के लिए उनसे किसी प्रकार की अनुमति की आशा की जाय—असम्भव है।'

'इसे मैं भी सोच चुकी हूँ चित्रपुष्पी परन्तु अब मेरे लिए भी इस मार्ग से विमुख होना असम्भव है। मैंने निश्चय कर लिया है। रहा प्रश्न पिता जी का, यदि हल न होने वाली समस्या उनके सामने खड़ी हो जायेगी तो मैं विष खा कर जीवन की इतिश्री कर लूँगी। इसे तो तू पसन्द करेगी ?'

चित्रपुष्पी राजकुमारी का मुंह ताकती रही। रथ चक्कर लगाता हुआ 'पान-सुपारी बाज़ार' आ गया। दोनों उतर पड़ीं।

रात में सोते समय तिरु के मस्तिष्क में नाना प्रकार के विचार बड़ी देर तक उसकी नींद खराब किये रहे।

दूसरे दिन रामराय के मिलने पर तिरु का पहला प्रश्न था, 'उस दिन आप कह रहे थे कि आप का घर श्रीरंगपट्टन नहीं है तो फिर आप महानवमी के उत्सव पर कहाँ चले गये थे ?'

'तुंगभद्रा के तट पर।'

'क्यों ?'

'यों ही।'

'फिर ?'

'मैं समझता हूँ राजकुमारी जी इसके लिए क्षमा करेंगी। इसके पीछे कुछ कारण हैं।'

रुकने पर वह बोली 'यद्यपि आप इतनी मेरी बुद्धि नहीं है और न किसी भले-बुरे को गहराई तक सोचने की क्षमता ही है पर मोटी समझ के अनुसार इतना कह सकती हूँ कि मन बड़ा चंचल है। उसे जीवन भर अंकुश में रखकर चलने की आवश्यकता है। निरंकुश हो जाने पर वह गड्ढे में गिरा सकता है।' उसका संकेत दूर तक था।

'तेरे भाव को मैं समझ रही हूँ चित्रपुष्पी। मेरे अन्तर में बहुत दिनों तक यह द्वन्द्व चलता रहा है। विशभदेव के प्रति मैं आकर्षित हुई इसमें सन्देह नहीं परन्तु कुछ ही दिनों बाद मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मैं किसी भावावेश में आकर ऐसा कर बैठी हूँ। मेरा हृदय इसके लिए तैयार नहीं था और दूसरी ओर आचार्य के प्रति ठीक इसके विपरीत भावना उठ खड़ी हुई। मैं उन से दूर रहने का प्रयत्न करके भी दूर रहने में असमर्थ रही और अब तो बिल्कुल असमर्थ हूँ। अब तू बता मैं क्या करूँ ?'

'परन्तु इसके परिणाम के विषय में आपने कुछ सोचा है ?'

'सोचा है, फिर भी विवशता का अनुभव कर रही हूँ। वहाँ से मन हटता नहीं।'

क्षण भर तक चित्रपुष्पी मौन रही, 'बड़ा कठिन मार्ग चुन लिया है आपने। यदि पुनः विचार कर सकती हों तो कर लीजिए। अभी समय है। इस मार्ग की कठिनाई यदि झेल न सकीं तो जीवन रोकर भी काटना दूभर हो जायेगा।'

'क्या पुनः विचार करने में रोना न पड़ेगा चित्रपुष्पी ? हृदय की दहकती ज्वाला क्या कभी शान्त हो सकेगी ? मैं समझती हूँ वह जीवन इस जीवन से भी अधिक दुखमय बन जायेगा। उसकी व्यथा असहनीय होगी जो मृत्यु के उपरान्त आत्मा तक को चैन नहीं लेने देगी। क्या मेरे इस कथन से तू सहमत नहीं है ?'

'सहमत हूँ किन्तु ·······' वह रुक गई। समझ नहीं पा रही थी कि क्या कहे, 'किन्तु इस मार्ग को छोड़ देना ही उचित है।

विशभदेव जी से विवाह सम्भव था परन्तु आचार्य रामराय से बिल्कुल असम्भव। सभी कुछ सोचने की आवश्यकता है राजकुमारी जी।'

'तो तेरी दृष्टि में हृदय से अधिक महत्व है वैभव और सुख ऐश्वर्य का ?'

'एक दम नहीं। मेरा अभिप्राय सुख वैभव से नहीं वरन् राजक्कल तम्बिरन की स्थिति से है। वंश और मर्यादा दोनों को ध्यान में रखना उनके लिए स्वाभाविक है और जहाँ ये दोनों स्वाभाविक हैं वहाँ इनके विपरीत पड़ने वाले कार्य के लिए उनसे किसी प्रकार की अनुमति की आशा की जाय—असम्भव है।'

'इसे मैं भी सोच चुकी हूँ चित्रपुष्पी परन्तु अब मेरे लिए भी इस मार्ग से विमुख होना असम्भव है। मैंने निश्चय कर लिया है। रहा प्रश्न पिता जी का, यदि हल न होने वाली समस्या उनके सामने खड़ी हो जायेगी तो मैं विष खा कर जीवन की इतिश्री कर लूँगी। इसे तो तू पसन्द करेगी ?'

चित्रपुष्पी राजकुमारी का मुंह ताकती रही। रथ चक्कर लगाता हुआ 'पान-सुपारी बाज़ार' आ गया। दोनों उतर पड़ीं।

रात में सोते समय तिरु के मस्तिष्क में नाना प्रकार के विचार बड़ी देर तक उसकी नींद खराब किये रहे।

दूसरे दिन रामराय के मिलने पर तिरु का पहला प्रश्न था, 'उस दिन आप कह रहे थे कि आप का घर श्रीरंगपट्टन नहीं है तो फिर आप महानवमी के उत्सव पर कहाँ चले गये थे ?'

'तुंगभद्रा के तट पर।'

'क्यों ?'

'यों ही।'

'फिर ?'

'मैं समझता हूँ राजकुमारी जी इसके लिए क्षमा करेंगी। इसके पीछे कुछ कारण हैं।'

'तो क्या मुझसे भी आप·······?'

'नहीं। ऐसी कोई चीज़ नहीं है लेकिन अभी बताने वाला अवसर नहीं आया है। प्रतीक्षा उसी की है।'

तिरु रामराय को देख रही थी 'और महानवमी के अवसर पर यहाँ न रहने का कारण ?'

'इसमें भी एक रहस्य है।'

'हूँ।' उसने गर्दन झुकाली 'और आपके माता-पिता कहाँ हैं ?'

'इस विषय को भी अभी गोपनीय रखना है। आप विश्वास रखिए इन बातों में········मैं आपको कैसे समझाऊँ··········कोई ऐसा रहस्य नहीं है जो हमारे आपके सम्बन्ध में बाधा उत्पन्न कर सके परन्तु मेरे स्वयं के जीवन के लिए इनका अभी गोपनीय रहना कई दृष्टियों से अनिवार्य है।'

'ठीक है। आप के जीवन से मेरा कोई सम्बन्ध तो है नहीं ?' उसका मुँह उतर आया था।

'नहीं तिरु। मेरा यह मतलब नहीं है। मैं तुम से क्या बताऊँ ? ये प्रश्न जितने अधिक समय तक गोपनीय बने रहेंगे हमारे-तुम्हारे आने वाले जीवन के लिये अधिक सुखदायी सिद्ध होंगे। मेरी बातों पर विश्वास करो तिरु।' वह खिसक कर समीप आ गया और उसके लटके हुए मुँह को ऊपर उठाया।

राजकुमारी के नेत्र सजल हो आये थे।

'मैं तुम्हारी शपथ खाकर कहता हूँ कि इनमें इस तरह का कोई रहस्य नहीं है जो तुम्हारे लिए सन्देह का कारण बन सके।'

तिरु चुप रही।

उनतालीस

दूसरे दिन सम्राट् कृष्णदेव राय ने हम्पी के विशिष्ट नागरिकों तथा विभिन्न विभागों के उच्च पदाधिकारियों से विचार विमर्श किया। उन लोगों ने भी सर्व सम्मति से युद्ध के पक्ष में अपना मत प्रगट किया। सम्राट् ने युद्ध का निर्णय कर लिया। उसके आदेश जारी हुये। सम्बन्धियों को पत्र लिखे गये। आवश्यक सूचनायें चारों ओर भेजी जाने लगीं। युद्ध की तैयारी प्रारम्भ हो गई। कारखानों में दिन-रात काम होने लगा। विशेषकर हथियार वाले कारखानों में अधिक व्यस्तता आई। नगर का वातावरण बदला। घर-घर युद्ध की चर्चा होने लगी। अटकल पर नाना प्रकार की बातें चलने लगी। जहाँ युवकों में उत्साह था, मारने-मरने की महत्त्वाकांक्षा थी वहीं वृद्धों में चिन्ता और भय था। उन्हें यवनों से होने वाले युद्ध का बड़ा कटु अनुभव था। उनके सोचने का तरीक़ा भिन्न था।

प्रांतों की सेनायें आने लगीं। जमघट बढ़ने लगा। अलग-अलग सेनापतियों की अलग-अलग तैयारियाँ होने लगीं। सैनिकों की सम्पूर्ण व्यवस्था की पूरी-पूरी ज़िम्मेदारी उन्हीं की हुआ करती थी। सम्राट् इस मामले में बड़ा सख्त था। सैनिकों के सुख शान्ति का वह अत्यधिक ध्यान रखता था। धीरे-धीरे संख्या बढ़ती गई। सेनायें आती रहीं।

सब सेना एकत्रित हो जाने पर सम्राट् ने युद्ध की घोषणा की तदुपरान्त पुरोहितों द्वारा निश्चित की हुई तिथि पर भगवान की आराधना-उपासना के पश्चात् उसने सेनाओं को हम्पी से प्रस्थान करने के लिये

आदेश दिया। सेना का सेनापतित्व वह स्वयं कर रहा था। सेनायें निकलीं। सर्वप्रथम कम्मानायक चालीस हज़ार पदातिक, एक हज़ार अश्वारोही और सोलह हाथियों का नेतृत्व करता हुआ बढ़ा। पदातिक सेना में बन्दूकधारी, धनुषधारी और बल्लमधारी भी थे। सैनिकों के पास ढालें भी थीं और वह इतनी बड़ी-बड़ी थीं कि उनसे उनका पूरा शरीर ढक जाता था। कम्मानायक के पीछे त्रिम्बक राय पचास हज़ार पदातिक, दो हज़ार अश्वारोही और बीस हाथियों के साथ निकला। इसके पीछे महामन्त्री अप्पा जी साठ हज़ार पदातिक, साढ़े तीन हज़ार अश्वारोही और तीस हाथियों के साथ था। तब आया अदाया नायक। इसकी आधीनता में एक लाख पदातिक, पाँच हज़ार अश्वारोही और पचास हाथी थे। इसके पीछे कनड़नोलू के मण्डलेश्वर रंगराय एक लाख बीस हज़ार पदातिक, छः हज़ार अश्वारोही और साठ हाथियों के साथ था। तदुपरान्त कुमार की सेना थी जिसमें अस्सी हज़ार पदातिक, ढाई हज़ार अश्वारोही और चालीस हाथी थे; इसके पश्चात् नगरपाल गोविन्द राजा तीस हज़ार पदातिक, एक हज़ार अश्वारोही और दस हाथियों का नायकत्व कर रहा था। गोविन्द राजा के पीछे सम्राट् के वे तीन विश्वासपात्र खोजा थे जो युद्ध कौशल में अद्वितीय स्थान रखते थे। इनकी संरक्षता में चालीस हज़ार पदातिक, एक हज़ार अश्वारोही और पन्द्रह हाथियों का जत्था था। मदुरा का राजा भी इनके पीछे अपने पन्द्रह हज़ार पदातिक और दो सौ अश्वारोहियों के साथ चल रहा था। इसके पीछे सम्राट् का साला कुमार वीर आठ हज़ार पदातिक, चार सौ अश्वारोही और बीस हाथियों को लेकर चल रहा था और अन्त में विशालकाय हाथी पर सोने के हौदे में खड़ा सम्राट् कृष्णदेव राय चालीस हज़ार पदातिक और छः हज़ार अंगरक्षक अश्वारोहियों के साथ, मार्ग के दोनों ओर खड़ी जनता के जयघोषों को स्वीकार करता हुआ प्रसन्न मुख चल रहा था।

सेना में रथसेना, तोपखाना और ऊँट सेना भी थी। सैनिक अपने

अस्त्र-शस्त्रों से पूर्णतः सुसज्जित थे। धनुषधारी और बन्दूकधारी 'लाडसी' पहिने हुये थे। तलवारधारियों के कन्धों में ढालें थीं और कमर में गोमदरिस। अश्वारोहियों और उनके अश्वों की साज-सज्जा अनोखी थी। हौदे वाले हाथियों पर चार सैनिक चारों कोनों में लैस खड़े थे। प्रत्येक हाथी की सूंड में पैनी कटारें बाँध दी गई थीं जो युद्ध के समय वैरियों के लिये मौत का काम करती थीं।

सेना से लगभग छः कोस आगे कोई पचास हज़ार हरावल चल रहे थे जो आगे की स्थिति को सदैव अवगत कराते रहते थे। इनके संग-संग दो हज़ार धनुषधारी घुड़सवार भी थे जो बिल्कुल अग्रभाग में थे।

धोबियों, सेवकों, प्रबन्धकों तथा अन्य कार्यकर्ताओं की संख्या अनगिनत थी। लगभग बीस हज़ार तो केवल दासियों की संख्या थी। इसी प्रकार भिश्तियों की संख्या लगभग बारह हज़ार थी। भिश्तियों का जत्था सम्राट् के अंगरक्षकों के आगे-आगे चल रहा था। व्यापारियों, जीवन सम्बन्धी छोटी-मोटी वस्तुओं के विक्रेताओं, रसद देने वालों, खेल-तमाशा दिखलाने वालों तथा इसी प्रकार के तमाम ऐसे लोग भी सेना के संग-संग चल रहे थे जिनकी गणना नहीं की जा सकती थी। इनके अतिरिक्त बहुत से ऐसे भी व्यापारी थे जो रसद इत्यादि पूरी सामग्री के साथ आगे जा चुके थे ताकि आवश्यकतानुसार सरलता से सामान हर स्थान पर प्राप्त किया जा सके। इतने प्रबन्धों के बाद भी प्रत्येक सेनापति को आदेश था कि वह अपने संग-संग उन व्यापारियों को रक्खे जिनके पास सैनिकों की समस्त आवश्यकताओं की वस्तुयें उपलब्ध हों।

आकाश और पाताल को कम्पायमान करती हुई सम्राट् कृष्णराय की यह विशाल सेना रुकती हुई रायचूर के मार्ग पर नित्य अग्रसर होती गई और अन्त में मल्लिया बांदा नामक स्थान पर आकर रुक गई। शिविर पड़ गये। यहाँ से रायचूर डेढ़ कोस रह गया था।

पड़ाव क्या पड़ा था मानो एक दूसरी हम्पी बसा दी गई थी। विभिन्न वस्तुओं के बड़े-बड़े बाजार लग गये थे। सब्जी मंडी, गल्ले की

आदेश दिया। सेना का सेनापतित्व वह स्वयं कर रहा था। सेनायें निकलीं। सर्वप्रथम कम्मानायक चालीस हज़ार पदातिक, एक हज़ार अश्वारोही और सोलह हाथियों का नेतृत्व करता हुआ बढ़ा। पदातिक सेना में बन्दूकधारी, धनुषधारी और बल्लमधारी भी थे। सैनिकों के पास ढालें भी थीं और वह इतनी बड़ी-बड़ी थीं कि उनसे उनका पूरा शरीर ढक जाता था। कम्मानायक के पीछे त्रिम्बक राय पचास हज़ार पदातिक, दो हज़ार अश्वारोही और बीस हाथियों के साथ निकला। इसके पीछे महामन्त्री अप्पा जी साठ हज़ार पदातिक, साढ़े तीन हज़ार अश्वारोही और तीस हाथियों के साथ था। तब आया अदाया नायक। इसकी आधीनता में एक लाख पदातिक, पाँच हज़ार अश्वारोही और पचास हाथी थे। इसके पीछे कनड़नोलू के मण्डलेश्वर रंगराय एक लाख बीस हज़ार पदातिक, छः हज़ार अश्वारोही और साठ हाथियों के साथ था। तदुपरान्त कुमार की सेना थी जिसमें अस्सी हज़ार पदातिक, ढाई हज़ार अश्वारोही और चालीस हाथी थे; इसके पश्चात् नगरपाल गोविन्द राजा तीस हज़ार पदातिक, एक हजार अश्वारोही और दस हाथियों का नायकत्व कर रहा था। गोविन्द राजा के पीछे सम्राट् के वे तीन विश्वासपात्र खोजा थे जो युद्ध कौशल में अद्वितीय स्थान रखते थे। इनकी संरक्षता में चालीस हज़ार पदातिक, एक हज़ार अश्वारोही और पन्द्रह हाथियों का जत्था था। मदुरा का राजा भी इनके पीछे अपने पन्द्रह हज़ार पदातिक और दो सौ अश्वारोहियों के साथ चल रहा था। इसके पीछे सम्राट् का साला कुमार वीर आठ हज़ार पदातिक, चार सौ अश्वारोही और बीस हाथियों को लेकर चल रहा था और अन्त में विशालकाय हाथी पर सोने के हौदे में खड़ा सम्राट् कृष्णदेव राय चालीस हज़ार पदातिक और छः हज़ार अंगरक्षक अश्वारोहियों के साथ, मार्ग के दोनों ओर खड़ी जनता के जयघोषों को स्वीकार करता हुआ प्रसन्न मुख चल रहा था।

सेना में रथसेना, तोपखाना और ऊँट सेना भी थी। सैनिक अपने

अस्त्र-शस्त्रों से पूर्णतः सुसज्जित थे। धनुषधारी और बन्दूकधारी 'लाडसी' पहिने हुये थे। तलवारधारियों के कन्धों में ढालें थीं और कमर में गोमदरिस। अश्वारोहियों और उनके अश्वों की साज-सज्जा अनोखी थी। हौदे वाले हाथियों पर चार सैनिक चारों कोनों में लैस खड़े थे। प्रत्येक हाथी की सूंड में पैनी कटारें बाँध दी गई थीं जो युद्ध के समय वैरियों के लिये मौत का काम करती थीं।

सेना से लगभग छः कोस आगे कोई पचास हज़ार हरावल चल रहे थे जो आगे की स्थिति को सदैव अवगत कराते रहते थे। इनके संग-संग दो हज़ार धनुषधारी घुड़सवार भी थे जो बिल्कुल अग्रभाग में थे।

धोबियों, सेवकों, प्रबन्धकों तथा अन्य कार्यकर्ताओं की संख्या अनगिनत थी। लगभग बीस हज़ार तो केवल दासियों की संख्या थी। इसी प्रकार भिश्तियों की संख्या लगभग बारह हजार थी। भिश्तियों का जत्था सम्राट् के अंगरक्षकों के आगे-आगे चल रहा था। व्यापारियों, जीवन सम्बन्धी छोटी-मोटी वस्तुओं के विक्रेताओं, रसद देने वालों, खेल-तमाशा दिखलाने वालों तथा इसी प्रकार के तमाम ऐसे लोग भी सेना के संग-संग चल रहे थे जिनकी गणना नहीं की जा सकती थी। इनके अतिरिक्त बहुत से ऐसे भी व्यापारी थे जो रसद इत्यादि पूरी सामग्री के साथ आगे जा चुके थे ताकि आवश्यकतानुसार सरलता से सामान हर स्थान पर प्राप्त किया जा सके। इतने प्रबन्धों के बाद भी प्रत्येक सेनापति को आदेश था कि वह अपने संग-संग उन व्यापारियों को रक्खे जिनके पास सैनिकों की समस्त आवश्यकताओं की वस्तुयें उपलब्ध हों।

आकाश और पाताल को कम्पायमान करती हुई सम्राट् कृष्णराय की यह विशाल सेना रुकती हुई रायचूर के मार्ग पर नित्य अग्रसर होती गई और अन्त में मल्लिया बांदा नामक स्थान पर आकर रुक गई। शिविर पड़ गये। यहाँ से रायचूर डेढ़ कोस रह गया था।

पड़ाव क्या पड़ा था मानो एक दूसरी हम्पी बसा दी गई थी। विभिन्न वस्तुओं के बड़े-बड़े बाजार लग गये थे। सब्जी मंडी, गल्ले की

मंडी, कपड़ा बाज़ार, सराफा बाज़ार, पान और मिठाइयों की स्थान-स्थान पर छोटी-बड़ी दुकानें तड़क-भड़क के साथ सजा दी गई थीं। सराफा बाज़ार में चांदी सोने से लेकर हीरे और जवाहरातों तक का क्रय-विक्रय हो सकता था। जौहरियों की संख्या बढ़ गई थी। विदेशी व्यापारियों की भी गिनती कम नहीं थी। गोआ के व्यापारियों का मुख्यतः घोड़ों का व्यवसाय था। हर तरफ चहल-पहल थी। नाना प्रकार के मनोविनोद होने लगे थे। कहीं मुर्गों का द्वन्द्व युद्ध हो रहा था तो कहीं डम्बर* अपने विभिन्न प्रकार के खेलों से लोगों को मनोरंजन देकर पैसे कमा रहे थे। ये सांपों का भी प्रदर्शन अच्छा करते थे। इस प्रकार, इस विशाल पड़ाव में, जिसने एक महानगर का रूप धारण कर लिया था—संसार की समस्त वस्तुयें उपलब्ध थीं। किसी वस्तु का अभाव खटक नहीं सकता था। खटकना भी नहीं चाहिये था। जहाँ छः-छः और सात-सात लाख मनुष्यों का जमाव हो वहाँ सभी कुछ का होना नितान्त आवश्यक है।

राजदूत क्रिस्टावोडी भिगिवरीडो भी संग-संग था।

रायचूर दो नदियों के अंकों में बसा हुआ था। स्थान की सुरक्षा और सुदृढ़ता के लिये तीन परकोटे बनाये गये थे और परकोटे भी ऐसे थे जिन्हें तोड़ना लोहे के चने चबाना था। चौड़ी-चौड़ी पत्थर की दीवारों के बीच मिट्टी भर कर उन्हें दुर्भेद्य बना दिया गया था। दुर्ग मध्य में बना हुआ था। भोजन की सामग्री पाँच वर्ष के लिये यहाँ सदैव इकट्ठी रहा करती थी। झीलों और तालाबों की संख्या अधिक होने के कारण पानी की विशेष सुविधा थी। आदिलशाह की खास और चुनी हुई सेना अत्यन्त विश्वासपात्र नायकों के नायकत्व में यहाँ रहती थी। लगभग दो सौ भीमकाय तोपें दीवारों पर सदैव लगी रहती थीं जिनकी मार को सहन करना किसी भी आक्रमणकारी के लिये मौत के घाट उतरना था। रायचूर प्रत्येक दृष्टि से सुदृढ़ता में अपना सानी नहीं रखता था।

*'डम्बर' नामक जाति नट का खेल दिखाया करती थी।

सम्राट् ने रायचूर का घेरा डाल दिया था परन्तु अभी युद्ध आरम्भ नहीं हुआ था। सेना आदेश की प्रतीक्षा में थी। पंडितों ने शुभ मुहूर्त देख कर तिथि बतलाई। सम्राट् ने देवताओं की पूजा की और तत्काल आक्रमण के लिये आदेश दिया। युद्ध आरम्भ हुआ। सैनिकों ने नारा लगाया 'गोविन्द ! गोविन्द !!' और सिंह की भाँति झपट पड़े। रायचूर पर मानो तूफान आ गया हो परन्तु वाह रे आदिलशाह के वफादार सैनिको ! उन्होंने भी उसी उत्साह और जंवामर्दी के साथ सामना किया। तूफान की भीषणता थम गई। दुर्ग डगमगा कर संभल गया। मुसलमानों को अवसर मिला। उनकी तोपें अपना कमाल दिखाने लगीं। हिन्दुओं के पैर जमने में असमर्थता प्रकट करने लगे। दिन बीतने लगे। धीरे-धीरे मास, दो मास और तीन मास बीत गये। रायचूर का दुर्ग अभी तक कृष्णराय के अधिकार में नहीं आ सका। उसकी चिन्ता बढ़ गई पर उसने भी तय कर लिया था कि जब तक रायचूर पर उसका आधिपत्य स्थापित न हो जाय वह लौटेगा नहीं।

इसी बीच आदिलशाह के आने की सूचना मिली। शाह अपनी विशाल सेना सहित आया परन्तु आक्रमण न करके नदी उस पार उत्तर की ओर चार कोस की दूरी पर पड़ाव डालकर रुक गया। पूर्व में कृष्णराय अपनी मुख्य सेना के साथ था। वह भी शान्त रहा। वह क्यों आदिलशाह पर आक्रमण करने लगा ? सौ बार गरज हो तो आदिलशाह दुर्ग रक्षार्थ उसके मुकाबले में आये। सम्राट् तो अपना कार्य कर ही रहा था। हफ्तों बीत जाने पर भी जब कृष्णदेव राय ने आदिलशाह पर आक्रमण नहीं किया तब प्रधान सेनापति सलावत खाँ ने शाह को नदी पार कर के आक्रमण करने की सलाह दी। उसके मतानुसार कृष्णदेव राय अपने को अधिक शक्तिशाली समझ कर अपना अहं प्रदर्शित कर रहा था। आदिलशाह ने नदी पार की ओर आक्रमण की तैयारी करने लगा।

इस समय दोनों सेनायें बहुत थोड़े फासले पर आमने-सामने लगी

मंडी, कपड़ा बाज़ार, सराफा बाज़ार, पान और मिठाइयों की स्थान-स्थान पर छोटी-बड़ी दुकानें तड़क-भड़क के साथ सजा दी गई थीं। सराफा बाज़ार में चांदी सोने से लेकर हीरे और जवाहरातों तक का क्रय-विक्रय हो सकता था। जौहरियों की संख्या बढ़ गई थी। विदेशी व्यापारियों की भी गिनती कम नहीं थी। गोआ के व्यापारियों का मुख्यतः घोड़ों का व्यवसाय था। हर तरफ चहल-पहल थी। नाना प्रकार के मनोविनोद होने लगे थे। कहीं मुर्गों का द्वन्द्व युद्ध हो रहा था तो कहीं डम्बर* अपने विभिन्न प्रकार के खेलों से लोगों को मनोरंजन देकर पैसे कमा रहे थे। ये सांपों का भी प्रदर्शन अच्छा करते थे। इस प्रकार, इस विशाल पड़ाव में, जिसने एक महानगर का रूप धारण कर लिया था—संसार की समस्त वस्तुयें उपलब्ध थीं। किसी वस्तु का अभाव खटक नहीं सकता था। खटकना भी नहीं चाहिये था। जहाँ छः-छः और सात-सात लाख मनुष्यों का जमाव हो वहाँ सभी कुछ का होना नितान्त आवश्यक है।

राजदूत क्रिस्टावोडी भिगिवरीडो भी संग-संग था।

रायचूर दो नदियों के अंकों में बसा हुआ था। स्थान की सुरक्षा और सुदृढ़ता के लिये तीन परकोटे बनाये गये थे और परकोटे भी ऐसे थे जिन्हें तोड़ना लोहे के चने चवाना था। चौड़ी-चौड़ी पत्थर की दीवारों के बीच मिट्टी भर कर उन्हें दुर्भेद्य बना दिया गया था। दुर्ग मध्य में बना हुआ था। भोजन की सामग्री पाँच वर्ष के लिये यहाँ सदैव इकट्ठी रहा करती थी। झीलों और तालाबों की संख्या अधिक होने के कारण पानी की विशेष सुविधा थी। आदिलशाह की खास और चुनी हुई सेना अत्यन्त विश्वासपात्र नायकों के नायकत्व में यहाँ रहती थी। लगभग दो सौ भीमकाय तोपें दीवारों पर सदैव लगी रहती थीं जिनकी मार को सहन करना किसी भी आक्रमणकारी के लिये मौत के घाट उतरना था। रायचूर प्रत्येक दृष्टि से सुदृढ़ता में अपना सानी नहीं रखता था।

*'डम्बर' नामक जाति नट का खेल दिखाया करती थी।

सम्राट् ने रायचूर का घेरा डाल दिया था परन्तु अभी युद्ध आरम्भ नहीं हुआ था। सेना आदेश की प्रतीक्षा में थी। पंडितों ने शुभ मुहूर्त देख कर तिथि बतलाई। सम्राट् ने देवताओं की पूजा की और तत्काल आक्रमण के लिये आदेश दिया। युद्ध आरम्भ हुआ। सैनिकों ने नारा लगाया 'गोविन्द ! गोविन्द !!' और सिंह की भाँति झपट पड़े। रायचूर पर मानो तूफान आ गया हो परन्तु वाह रे आदिलशाह के वफादार सैनिको ! उन्होंने भी उसी उत्साह और जंवामर्दी के साथ सामना किया। तूफान की भीषणता थम गई। दुर्ग डगमगा कर संभल गया। मुसलमानों को अवसर मिला। उनकी तोपें अपना कमाल दिखाने लगीं। हिन्दुओं के पैर जमने में असमर्थता प्रकट करने लगे। दिन बीतने लगे। धीरे-धीरे मास, दो मास और तीन मास बीत गये। रायचूर का दुर्ग अभी तक कृष्णराय के अधिकार में नहीं आ सका। उसकी चिन्ता बढ़ गई पर उसने भी तय कर लिया था कि जब तक रायचूर पर उसका आधिपत्य स्थापित न हो जाय वह लौटेगा नहीं।

इसी बीच आदिलशाह के आने की सूचना मिली। शाह अपनी विशाल सेना सहित आया परन्तु आक्रमण न करके नदी उस पार उत्तर की ओर चार कोस की दूरी पर पड़ाव डालकर रुक गया। पूर्व में कृष्णराय अपनी मुख्य सेना के साथ था। वह भी शान्त रहा। वह क्यों आदिलशाह पर आक्रमण करने लगा ? सौ बार गरज हो तो आदिलशाह दुर्ग रक्षार्थ उसके मुकाबले में आये। सम्राट् तो अपना कार्य कर ही रहा था। हफ्तों बीत जाने पर भी जब कृष्णदेव राय ने आदिलशाह पर आक्रमण नहीं किया तब प्रधान सेनापति सलावत खाँ ने शाह को नदी पार कर के आक्रमण करने की सलाह दी। उसके मतानुसार कृष्णदेव राय अपने को अधिक शक्तिशाली समझ कर अपना अहं प्रदर्शित कर रहा था। आदिलशाह ने नदी पार की ओर आक्रमण की तैयारी करने लगा।

इस समय दोनों सेनायें बहुत थोड़े फासले पर आमने-सामने लगी

हुई थीं। अब सम्राट् ने भी आक्रमण की तैयारी प्रारम्भ की। उस ने अपनी सेना को ग्यारह भागों में विभक्त किया। टुकड़ी के नायकों और सेनापतियों को आदेश हुये और शुक्रवार का दिन आक्रमण के लिये निश्चित हुआ परन्तु पंडितों ने शुक्रवार का दिन अशुभ ठहराकर शनिवार का दिन बतलाया। सम्राट् ने शनिवार का दिन निश्चित किया। शनिवार को पौ फटने के साथ-साथ कृष्णराय ने अपने विशाल हाथी पर खड़े होकर तलवार को ऊपर उठा कर चमकाया। समुद्र की भाँति फैली हुई सेना से ध्वनि निकली 'गोविन्द, गोविन्द, और पुनः गोविन्द !' दुन्दुभी, नरसिंहा, ढोल और तासे बज उठे। पृथ्वी से लेकर नभ तक कंपकंपी दौड़ गई। यत्र-तत्र ऊपर उड़ते हुये पक्षियों के समूह भयभीत होकर गिर पड़े। सैनिकों ने प्रत्यासार किया और भूखे भेड़िये की भाँति आदिलशाह पर टूट पड़े।

उधर शाह भी तैयार खड़ा था। उसके आदेशानुसार बड़ी-बड़ी तोपों से धुआँधार गोलाबारी शुरू हुई। आदिलशाह के पास तोपों का जमाव अच्छा था। वेग से बढ़ती हुई सम्राट् की सेना तनिक थमी। नायकों ने ललकारा। सैनिक सचेत हुए और पुनः कट मरने के लिए जूझे परन्तु यह उत्साह अधिक देर तक नहीं टिक सका। आदिलशाह अपनी तोपों से बड़ी भीषण मार करवा रहा था। हिन्दुओं के पैर उखड़ गये। सेना में भगदड़ मच गई। आदिलशाह लगभग एक कोस तक सेना को भूनता हुआ पीछा करता रहा।

कृष्णदेव राय हौदे में खड़ा अपनी पराजय देख रहा था; परन्तु अभी वह घबड़ाया नहीं था। उसने चिल्ला कर अपने अंग रक्षकों को आज्ञा दी 'भागते हुए सैनिक काट डाले जायँ। उन्हें जीवित न छोड़ा जाय।' आज्ञा की पूर्ति हुई। भागते हुए सैनिक काटे जाने लगे।

सम्राट् हाथी से उतर कर घोड़े पर आरूढ़ हुआ। उँगुली से अँगूठी निकाल कर अपने पीछे खड़े एक सैनिक को दी और तब अपने सरदारों को सम्बोधित करके बोला 'कौन मेरे पीछे आ रहा है ?' और उसने रास

तानी। घोड़ा आगे बढ़ा। इतना बहुत था। सम्राट् की सेना लौट पड़ी। प्राण का मोह बिसर गया। सैनिक जूझ पड़े। मुसलमानी सेना उखड़ी। कृष्णराय धंसता ही चला गया। यवनों में भगदड़ मच गई। विजय पराजय में परिणत हुई। आदिलशाह भागा। बड़ी मुश्किलों से वह अपनी जान बचाकर पहाड़ों और जंगलों में लुकता-छिपता बीजापुर पहुँच सका था। सम्राट् की सेना मुसलमानों का पीछा करती हुई नदी तक आई। प्राण-रक्षार्थ यवन सैनिक नदी में कूद पड़े। हिन्दुओं ने बदला चुकाना चाहा। वे एक-एक को तलवार के घाट उतारना चाह रहे थे परन्तु सम्राट् ने अपने सैनिकों को रोक दिया। बिना प्रयोजन सैनिकों का वध करने से लाभ ?

सम्राट् ने आदिलशाह के शिविर में लौट कर आसन ग्रहण किया। सामग्री एकत्र करवाई। अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त चार हज़ार घोड़े, एक हज़ार हाथी और चार सौ तोपें हाथ लगीं जो विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रधान सेनापति सलावत खाँ भी बन्दी बनाया गया था। औरतें भी अधिक संख्या में बन्दी हुई थीं परन्तु सम्राट् ने उन्हें तत्काल छोड़ने का आदेश दिया तथा उनके भिजवाने का समुचित प्रबन्ध करवाया।

× × ×

यद्यपि यह विदित हो चुका था कि आदिलशाह बुरी तरह पराजित होकर भाग गया है फिर भी रायचूर दुर्ग के सैनिकों ने आत्म समर्पण करना अपनी सैनिकता पर कलंक का टीका लगाना समझा। वे अब भी मुकाबिले के लिए कमर बाँधे खड़े थे। उन्हें अपने दुर्ग की अजेयता पर पूर्ण विश्वास था। कृष्णराय ने पुनः घेरा डाला। इस बार उसके सैनिकों ने अधिक उत्साह दिखलाया। उन्होंने अपनी सफलता के लिए पूरी-पूरी चेष्टा की परन्तु वे करें क्या ? किले की दीवार तक उनका पहुँचना हो नहीं पाता था। वे समीप पहुँचते-पहुँचते मौत के घाट उतार दिये जाते थे। यवन सैनिकों की सतर्कता और उनका उत्साह सराहनीय था। लगभग दो सप्ताह समाप्त हो गये। परन्तु स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया।

हुई थीं। अब सम्राट् ने भी आक्रमण की तैयारी प्रारम्भ की। उस ने अपनी सेना को ग्यारह भागों में विभक्त किया। टुकड़ी के नायकों और सेनापतियों को आदेश हुये और शुक्रवार का दिन आक्रमण के लिये निश्चित हुआ परन्तु पंडितों ने शुक्रवार का दिन अशुभ ठहराकर शनिवार का दिन बतलाया। सम्राट् ने शनिवार का दिन निश्चित किया। शनिवार को पौ फटने के साथ-साथ कृष्णराय ने अपने विशाल हाथी पर खड़े होकर तलवार को ऊपर उठा कर चमकाया। समुद्र की भाँति फैली हुई सेना से ध्वनि निकली 'गोविन्द, गोविन्द, और पुनः गोविन्द !' दुन्दुभी, नरसिंहा, ढोल और तासे बज उठे। पृथ्वी से लेकर नभ तक कंपकंपी दौड़ गई। यत्र-तत्र ऊपर उड़ते हुये पक्षियों के समूह भयभीत होकर गिर पड़े। सैनिकों ने प्रत्यासार किया और भूखे भेड़िये की भाँति आदिलशाह पर टूट पड़े।

उधर शाह भी तैयार खड़ा था। उसके आदेशानुसार बड़ी-बड़ी तोपों से धुआँधार गोलाबारी शुरू हुई। आदिलशाह के पास तोपों का जमाव अच्छा था। वेग से बढ़ती हुई सम्राट् की सेना तनिक थमी। नायकों ने ललकारा। सैनिक सचेत हुए और पुनः कट मरने के लिए जूझे परन्तु यह उत्साह अधिक देर तक नहीं टिक सका। आदिलशाह अपनी तोपों से बड़ी भीषण मार करवा रहा था। हिन्दुओं के पैर उखड़ गये। सेना में भगदड़ मच गई। आदिलशाह लगभग एक कोस तक सेना को भूनता हुआ पीछा करता रहा।

कृष्णदेव राय हौदे में खड़ा अपनी पराजय देख रहा था; परन्तु अभी वह घबड़ाया नहीं था। उसने चिल्ला कर अपने अंग रक्षकों को आज्ञा दी 'भागते हुए सैनिक काट डाले जायँ। उन्हें जीवित न छोड़ा जाय।' आज्ञा की पूर्ति हुई। भागते हुए सैनिक काटे जाने लगे।

सम्राट् हाथी से उतर कर घोड़े पर आरूढ़ हुआ। उँगुली से अँगूठी निकाल कर अपने पीछे खड़े एक सैनिक को दी और तब अपने सरदारों म्बोधित करके बोला 'कौन मेरे पीछे आ रहा है ?' और उसने रास

तानी। घोड़ा आगे बढ़ा। इतना बहुत था। सम्राट् की सेना लौट पड़ी। प्राण का मोह बिसर गया। सैनिक जूझ पड़े। मुसलमानी सेना उखड़ी। कृष्णराय धंसता ही चला गया। यवनों में भगदड़ मच गई। विजय पराजय में परिणत हुई। आदिलशाह भागा। बड़ी मुश्किलों से वह अपनी जान बचाकर पहाड़ों और जंगलों में लुकता-छिपता बीजापुर पहुँच सका था। सम्राट् की सेना मुसलमानों का पीछा करती हुई नदी तक आई। प्राण-रक्षार्थ यवन सैनिक नदी में कूद पड़े। हिन्दुओं ने बदला चुकाना चाहा। वे एक-एक को तलवार के घाट उतारना चाह रहे थे परन्तु सम्राट् ने अपने सैनिकों को रोक दिया। बिना प्रयोजन सैनिकों का वध करने से लाभ ?

सम्राट् ने आदिलशाह के शिविर में लौट कर आसन ग्रहण किया। सामग्री एकत्र करवाई। अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त चार हज़ार घोड़े, एक हज़ार हाथी और चार सौ तोपें हाथ लगीं जो विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रधान सेनापति सलावत खाँ भी बन्दी बनाया गया था। औरतें भी अधिक संख्या में बन्दी हुई थीं परन्तु सम्राट् ने उन्हें तत्काल छोड़ने का आदेश दिया तथा उनके भिजवाने का समुचित प्रबन्ध करवाया।

× × ×

यद्यपि यह विदित हो चुका था कि आदिलशाह बुरी तरह पराजित होकर भाग गया है फिर भी रायचूर दुर्ग के सैनिकों ने आत्म समर्पण करना अपनी सैनिकता पर कलंक का टीका लगाना समझा। वे अब भी मुकाबिले के लिए कमर बाँधे खड़े थे। उन्हें अपने दुर्ग की अजेयता पर पूर्ण विश्वास था। कृष्णराय ने पुनः घेरा डाला। इस बार उसके सैनिकों ने अधिक उत्साह दिखलाया। उन्होंने अपनी सफलता के लिए पूरी-पूरी चेष्टा की परन्तु वे करें क्या ? किले की दीवार तक उनका पहुँचना हो नहीं पाता था। वे समीप पहुँचते-पहुँचते मौत के घाट उतार दिये जाते थे। यवन सैनिकों की सतर्कता और उनका उत्साह सराहनीय था। लगभग दो सप्ताह समाप्त हो गये। परन्तु स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया।

कृष्णदेव राय की चिन्ता बढ़ गई। वह नहीं समझ पा रहा था कि किस नये उपाय से दुर्ग पर अधिकार जमाया जाय। उसके सैनिक जिस ईमानदारी से जान हथेली पर लेकर अपनी वफ़ादारी का परिचय दे रहे थे वह सन्देह रहित था। उन्हें जैसा भी आदेश दिया जाता था वे उसकी पूर्ति के लिए तत्काल कटिबद्ध हो जाते थे किन्तु जब काम नहीं बन पा रहा था तो उसके लिए उनके पास कौन-सा चारा था। सम्राट् की नींद अब आँखों से उड़ गई थी। वह बड़ी उलझन में था।

इसी उलझन में दो दिन और बीते परन्तु तीसरे दिन सम्राट् ने जो कुछ देखा उस पर उसे विश्वास नहीं हो रहा था। उसने देखा कि पुर्तगालियों का एक जत्था झिगिवरीडो के नायकत्व में बड़ी तेज़ी से आक्रमण करते हुए दीवार तक पहुँच कर सीढ़ियों के लगाने में प्रयत्नशील हो उठा था। उनकी अचूक मार के सामने दीवार पर तैनात मुसलमान सैनिकों में खलबली मच उठी थी। झिगिवरीडो हवा की भाँति क्षण में यहाँ और क्षण में वहाँ उड़ता हुआ अपने सैनिकों को उत्साहित कर रहा था। पुर्तगाली दीवार तक पहुँचे। सीढ़ियाँ लगीं। कुछ चढ़े परन्तु वे बीच तक ही पहुँच पाये थे कि सीढ़ियाँ गिरा दी गईं। पुनः सीढ़ियाँ लगाई गई और फिर चढ़ने का प्रयास किया गया। इस बार के प्रयास में एक सैनिक देखते-देखते ऊपर जा पहुँचा। उसने काई की तरह मैदान साफ़ कर दिया। सम्राट् के सैनिकों के लिए इतना अवसर पर्याप्त था। सीढ़ियाँ लगती गईं और सैनिक ऊपर पहुंचते गये।

पहला घेरा टूटा। फिर क्या था? दूसरे और तीसरे के टूटने में कितनी देर लगती? यवनों का साहस छूट गया। उन्होंने सफेद झण्डा दिखलाया। लड़ाई रुक गई। सम्राट् ने नगर में प्रवेश किया। नागरिकों ने स्वागत में आँखें बिछा दीं। वे तो चाहते ही थे परन्तु असहायता के पीछे चुप थे।

नगर में पहुँचकर कृष्णदेव राय का पहला काम हुआ राजदूत झिगिवरीडो को सम्मान के साथ अपने शिविर में बुलवाना। झिगिवरीडो

आया । सम्राट् ने उठकर उसका स्वागत किया और बड़े आदर के साथ अपनी बगल में बिठलाया 'मैं आपके इस सहयोग को जीवनपर्यन्त नहीं भूलूँगा । आपने वह कार्य किया है जिसके लिये मैं बिल्कुल निराश हो चुका था । सचमुच आपने मेरी लाज रख ली ।'

पुर्तगाली मुसकराया 'लाज तो खुदा रखता है राजक्कल तम्बिरन ! मैंने तो दोस्ती का फर्ज अदा किया है । हाँ आपका एक सिपाही जरूर तारीफ के काबिल है और मैं चाहूँगा कि राजक्कल तम्बिरन उसे मुंह माँगा इनाम दें । यह जीत उसी की बदौलत है ।'

'मेरा सिपाही ! नहीं । इस तरह का कोई व्यक्ति तो मुझे उस समय दिखाई नहीं पड़ा ।'

'है राजक्कल तम्बिरन ।' उसने ताली बजाकर रामराय को बुलाने के लिये कहा ।

'रामराय ।' सम्राट् को महान आश्चर्य था 'वीणा वादक ?'

'जी राजक्कल तम्बिरन ! हमारे लिबास में होने के कारण मैंने भी उन्हें बाद में पहचाना था । उनकी जवाँमर्दी की जितनी तारीफ की जाय कम है ।' फिर राजदूत ने एक-एक करके लड़ाई की पूरी घटनाओं को विस्तार सहित बतलाया ।

रामराय के आने पर सम्राट् ने उसे गले से लगा लिया और बड़ी देर तक उसकी पीठ ठोंकता रहा ।

चालीस

सम्राट् कृष्णदेव राय ससैन्य विजय की दुन्दुभी बजाता हुआ हम्पी

को लौटा। हम्पी में बड़ी तैयारी थी। नगर ध्वजा पताकाओं से लहरा उठा था। स्थान-स्थान पर तोरण बन्दनवारों की छटा अनुपम थी। विभिन्न प्रकार के भव्य द्वार भी बनाये गये थे जिनकी सजावट देखने से सम्बन्ध रखती थी। विशेषकर 'कलाकार समिति' द्वारा तैयार किया गया मोम द्वार तथा 'व्यापारिक गण' द्वारा स्वर्ण द्वार जिसमें लगी हुई मोतियों और हीरों की झालरें आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर रही थीं—अवर्णीय थे। सब यही कह रहे थे कि ऐसी सजावट अभी तक देखने को नहीं मिली थीं। देखने को मिलती कैसे ? अभी तक ऐसा महान कार्य भी तो किसी ने नहीं किया था। रायचूर का भाग सदैव से विजेताओं के लिये लोभ का स्थान रहा है और बहमनी रियासतें अपनी शक्ति के बल पर इसे सदैव अधिकार में बनाये रक्खे रही हैं परन्तु आज कृष्णराय ने अपने को अधिक शक्तिशाली सिद्ध करके उसे अपने आधीन कर लिया था। यह महान गौरव की बात थी। हम्पी के जड़-चेतन सभी आह्लादित हो उठे थे।

गोआ से आने वाले उस चौड़े मार्ग के दोनों ओर कोसों खड़ी जनता सम्राट् के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। सम्राट मुसकराता हुआ आया। जयघोष हुये और इतने हुये कि एक बार आकाश भी काँप उठा। पुष्पों की वर्षा होती रही।

संध्या को दरबार लगा। सम्राट् के आगमन के उपरान्त कवियों ने उसके यश के गीत गाये। विद्वानों ने तुलना सहित उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। तदुपरान्त कुछ व्यक्तियों के अनुरोध पर कम्मानायक ने सम्राट् के आदेशानुसार युद्ध का वर्णन किया। घंटों सब एकाग्रचित्त एक-एक बात सुनते रहे। ऐसी पराजय बहमनी वालों को अभी तक किसी ने नहीं दी थी। कम्मानायक के वर्णन के उपरान्त सम्राट् बोला 'यद्यपि प्रत्येक सैनिक और सेना नायक बधाई के पात्र हैं किन्तु गोआ के राजदूत फिगिवरीडो के सहयोग का मैं विशेष आभारी हूँ। उन्होंने ही शिथिल पड़ती हुई सैनिकों की भावनाओं में चेतना उत्पन्न की थी। उनकी

कृतज्ञता भुलाई नहीं जा सकती।' उसने इधर-उधर देखा, 'रामराय।' उसके मुंह से निकला।

पीछे बैठा हुआ रामराय खड़ा हुआ। आज वह जानबूझ कर इधर वैठ गया था।

सम्राट् ने समीप आने के किये संकेत किया। वह आया। उसने उसे सिंहासन के समीप खड़ा किया और बोला 'इनके विषय में कम्मा ने जो कुछ कहा है बहुत थोड़ा है। वास्तव में यदि देखा जाय तो रायचूर के दुर्ग को विजय करने का सारा श्रेय इन्हीं को है। वीणा बजाने वाली उँगुलियों में तलवार पकड़ने की ऐसी निपुणता हो सकती है, ऐसा विश्वास सम्भवतः आपको स्वयं देखने पर भी न होता। मैं इनसे बहुत प्रसन्न हूँ। ये अपनी वीरता में अद्वितीय सिद्ध हुये अतः इन्हें पुरस्कार में अरग प्रान्त का नायक नियुक्त किया गया।' सम्राट् ने उसकी पीठ थपथपाई 'जाओ।'

रामराय ने नतमस्तक होकर प्रणाम किया और पीछे हटता हुआ मुड़ गया। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। कब क्या हो सकता है इसका ज्ञान जब महाभारत के सहदेव पंडित को न हो सका तो औरों की क्या कही जाय? सम्राट् उठ पड़ा। राज सभा भंग हुई।

दूसरे दिन रामराय ने 'नृत्य-गृह' में पहुँच कर तिरु को सूचना भिजवाई। मन बड़ा अधीर हो रहा था। कई महीनों बाद आज वह देखने को मिल रही थी। ऐसे अवसरों पर एक-एक क्षण यदि एक-एक युग के समान प्रतीत होते हों तो वह भी कम है। राजकुमारी आई। उसकी भी वही दशा थी। सामने आने पर उसने देखा परन्तु तत्काल गर्दन झुका ली। नेत्र हठ करते रहे फिर भी उसने सिर ऊपर नहीं उठाया। उसने झुके सिर नमस्कार किया और बैठ गई।

'नीति और बड़प्पन दोनों के अनुसार,' रामराय बोला 'अपराध करने वालों को अपराध स्वीकार करने पर क्षमा कर दिया जाता है

को लौटा। हम्पी में बड़ी तैयारी थी। नगर ध्वजा पताकाओं से लहरा उठा था। स्थान-स्थान पर तोरण बन्दनवारों की छटा अनुपम थी। विभिन्न प्रकार के भव्य द्वार भी बनाये गये थे जिनकी सजावट देखने से सम्बन्ध रखती थी। विशेषकर 'कलाकार समिति' द्वारा तैयार किया गया मोम द्वार तथा 'व्यापारिक गण' द्वारा स्वर्ण द्वार जिसमें लगी हुई मोतियों और हीरों की झालरें आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर रही थीं—अवर्णीय थे। सब यही कह रहे थे कि ऐसी सजावट अभी तक देखने को नहीं मिली थीं। देखने को मिलती कैसे ? अभी तक ऐसा महान कार्य भी तो किसी ने नहीं किया था। रायचूर का भाग सदैव से विजेताओं के लिये लोभ का स्थान रहा है और बहमनी रियासतें अपनी शक्ति के बल पर इसे सदैव अधिकार में बनाये रक्खे रही हैं परन्तु आज कृष्णराय ने अपने को अधिक शक्तिशाली सिद्ध करके उसे अपने आधीन कर लिया था। यह महान गौरव की बात थी। हम्पी के जड़-चेतन सभी आह्लादित हो उठे थे।

गोआ से आने वाले उस चौड़े मार्ग के दोनों ओर कोसों खड़ी जनता सम्राट् के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। सम्राट मुसकराता हुआ आया। जयघोष हुये और इतने हुये कि एक बार आकाश भी काँप उठा। पुष्पों की वर्षा होती रही।

संध्या को दरबार लगा। सम्राट् के आगमन के उपरान्त कवियों ने उसके यश के गीत गाये। विद्वानों ने तुलना सहित उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। तदुपरान्त कुछ व्यक्तियों के अनुरोध पर कम्मानायक ने सम्राट् के आदेशानुसार युद्ध का वर्णन किया। घंटों सब एकाग्रचित्त एक-एक बात सुनते रहे। ऐसी पराजय बहमनी वालों को अभी तक किसी ने नहीं दी थी। कम्मानायक के वर्णन के उपरान्त सम्राट् बोला 'यद्यपि प्रत्येक सैनिक और सेना नायक बधाई के पात्र हैं किन्तु गोआ के राजदूत फिगिवरीडो के सहयोग का मैं विशेष आभारी हूँ। उन्होंने ही शिथिल पड़ती हुई सैनिकों की भावनाओं में चेतना उत्पन्न की थी। उनकी

कृतज्ञता भुलाई नहीं जा सकती।' उसने इधर-उधर देखा, 'रामराय।' उसके मुंह से निकला।

पीछे बैठा हुआ रामराय खड़ा हुआ। आज वह जानबूझ कर इधर बैठ गया था।

सम्राट् ने समीप आने के किये संकेत किया। वह आया। उसने उसे सिंहासन के समीप खड़ा किया और बोला 'इनके विषय में कम्मा ने जो कुछ कहा हैं बहुत थोड़ा है। वास्तव में यदि देखा जाय तो रायचूर के दुर्ग को विजय करने का सारा श्रेय इन्हीं को है। वीणा बजाने वाली उँगुलियों में तलवार पकड़ने की ऐसी निपुणता हो सकती है, ऐसा विश्वास सम्भवतः आपको स्वयं देखने पर भी न होता। मैं इनसे बहुत प्रसन्न हूँ। ये अपनी वीरता में अद्वितीय सिद्ध हुये अतः इन्हें पुरस्कार में अरग प्रान्त का नायक नियुक्त किया गया।' सम्राट् ने उसकी पीठ थपथपाई 'जाओ।'

रामराय ने नतमस्तक होकर प्रणाम किया और पीछे हटता हुआ मुड़ गया। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था। कब क्या हो सकता है इसका ज्ञान जब महाभारत के सहदेव पंडित को न हो सका तो औरों की क्या कही जाय ? सम्राट् उठ पड़ा। राज सभा भंग हुई।

दूसरे दिन रामराय ने 'नृत्य-गृह' में पहुँच कर तिरु को सूचना भिजवाई। मन बड़ा अधीर हो रहा था। कई महीनों बाद आज वह देखने को मिल रही थी। ऐसे अवसरों पर एक-एक क्षण यदि एक-एक युग के समान प्रतीत होते हों तो वह भी कम है। राजकुमारी आई। उसकी भी वही दशा थी। सामने आने पर उसने देखा परन्तु तत्काल गर्दन झुका ली। नेत्र हठ करते रहे फिर भी उसने सिर ऊपर नहीं उठाया। उसने झुके सिर नमस्कार किया और बैठ गई।

'नीति और बड़प्पन दोनों के अनुसार,' रामराय बोला 'अपराध करने वालों को अपराध स्वीकार करने पर क्षमा कर दिया जाता है

किन्तु दुर्भाग्य की बलिहारी यह है कि इस समय उस पर भी पर्दा डाला जा रहा है। क्षमायाचना के लिये उपस्थित हुआ हूँ किन्तु उसकी सुनवाई हो सकेगी यह सन्देहजनक है। प्रभु की लीला……।'

'किसी ने कोई अपराध भी किया हो ? किसी की इच्छाओं पर अपना क्या ज़ोर ? अपने मन के अनुसार काम करना उत्तम होता है। खैर ! आप स्वस्थ तो हैं ?' राजकुमारी रूठी हुई थी।

'स्वस्थ था परन्तु यहाँ आने पर परिवर्तन हो गया है। स्वस्थता अस्वस्थता में बदल गई है।'

'फिर ऐसे स्थानों पर आने से लाभ ? आप को हम्पी छोड़ देनी चाहिये।'

'आदेश मिल गया है। दो-चार दिनों में छोड़ दूंगा।'

'यह और सुन्दर रहा। बिल्ली के भाग से सिकहर भी टूट गया अन्यथा फिर कोई झूठ बोलने के लिये बहाना ढूंढना पड़ता।'

रामराय ने उसके मुंह को धीरे से ऊपर उठाया 'तिरु, झूठ बोला था अपने तुम्हारे स्वार्थ की सिद्धि के लिये और जिस प्रकार भाग्य ने पलटा खाया है बहुत आशा है शायद निकट भविष्य में राजक्कल तम्बिरन को हमारा सम्बन्ध मान्य हो जाय। मैं कनड़नोलू का रहने वाला हूँ और मेरे पिता का नाम श्रीरंगराय है।' रामराय ने रहस्य खोल दिया।

तिरु के नेत्र फैल गये 'मण्डलेश्वर श्रीरंगराय ?' वह आश्चर्य चकित थी।

रामराय ने गर्दन हिलाकर स्वीकार किया।

राजकुमारी की प्रसन्नता का पारावार न रहा। अंग-अंग किसी नई आशा की कल्पना में फड़क उठे। मन बार-बार कहने लगा—मण्डलेश्वर श्रीरंगराय के पुत्र श्री रामराय से विवाह करने में पिताजी को क्या आपत्ति होगी ? वह कभी भी नाही नहीं कर सकते। उसने मुँह हटा लिया। 'पिता जी को इसकी जानकारी है ?'

'अभी नहीं।' वह पुनः उसकी ठोड़ी उठाकर बोला 'अब तो मुझे क्षमा करने की कृपा की जायेगी ?'

'जी नहीं।' उसके नेत्र रामराय के नेत्रों में समा गये।

'क्यों ?'

'विना बतलाये आप रायचूर क्यो चले गये थे ?' उस ने गर्दन नीची कर ली थी 'किसी को व्यथा पहुँचाने के अपराध की क्षमवाई नहीं होती। उसे दंड का भागी अवश्य होना पड़ेगा।'

'तो दंड बता दिया जाय। जब भाग्य में सुख बदा नहीं है तो किसी को क्यों दोष दूं ?'

'दंड है कि जब तक आप हम्पी में रहेंगे नियमित रूप से पहले की भांति वीणा सिखलाने आते रहेंगे। समझ गये आप ?' उसके अधरों पर मुसकान की रेखायें फैल गई।

रामराय ने अनायास उसे अपने अंक में खींच लिया 'यह दंड जीवन भर के लिये क्यों नहीं दे देती ? अरग के नायकत्व में क्या रक्खा है ? मैं ······।'

'अरे······कुछ ध्यान भी है।' वह शीघ्रता से अलग हो गई।

रामराय ठट्ठा मार कर हंस पड़ा।

राजकुमारी ने पूछा 'अब तो आप अपने पिताजी से मिल सकते हैं ?'

'रहस्य तो कल ही खुल गया होता किन्तु इस तरह का मैंने अवसर ही नहीं आने दिया। पिता जी भी वहाँ थे।'

'उन्हें सम्भवत: आपकी आकृति बिल्कुल भूल गई है।'

'हाँ। इसी डर के पीछे तो मैं श्रीरंगपट्टन का बहाना बता कर महानवमी उत्सव पर चला गया था। मैं डरता था शायद मुझे वह पहिचान न ले।' वह रुका 'सोचता हूँ पहले राजक्कल तम्बिरन से ये बातें बता दूं। तुम्हारी क्या राय है ?'

'कल बता दीजिये और बाद में अरग पहुँचकर फिर कनड़नोलू चले जाइयेगा।'

'ठीक। परन्तु इन कामों में मैं अब बहुत विलम्ब नहीं चाहता।'

'क्यों ?'

'अरग से नित्य वीणा सिखलाने कैसे आ सकूँगा ?'

'चलिये।' वह लजा गई।

इकतालीस

उधर कवि भूषण उपयुक्त अवसर की ताक में था। तब तक युद्ध की घोषणा हो गई थी और सम्राट् ने सेना सहित रायचूर को प्रस्थान कर दिया था। वह मन मसोस कर रह गया था। तब युद्ध की समाप्ति की दोनों प्रतीक्षा करने लगे थे। सौभाग्य से सम्राट् विजयी होकर लौटा। भूषण के लिये यह अवसर बड़े मौके से आया था। जिस दिन रामराय अरग का नायक नियुक्त हुआ था, उसके दूसरे ही दिन भूषण ने अपनी बात सम्राट् के आगे रख दी। सम्राट् ने तनिक आश्चर्य से उसे देखा। भूषण ने अपनी और अपने हृदय की स्थिति साफ-साफ समझा दी। साथ ही गोपा से अपनी समीपता का संकेत करते हुए गोपा को ही पत्नी के रूप में ग्रहण करने की दृढ़ता को व्यक्त किया। सम्राट् ने अनुमति दे दी।

भूषण कवि के विवाह की तैयारी होने लगी। बात फैली। इधर-उधर चर्चा होने लगी। कुछ रूढ़िवादियों ने इसका विरोध करना चाहा। सम्राट् को सूचना मिली। उसने विवाह की समस्त तैयारियों का भार अप्पा जी को दे दिया। विरोध ठंडा पड़ गया। जब स्वयं सम्राट् सामने आ गया फिर किस में साहस ? विवाह बड़े धूमधाम से सम्पन्न हुआ। कवि की कविता मिल गई।

भूषण को गोपा मिली, रामराय अरग का नायक बना और तीसरी

आनन्ददायक घटना यह हुई कि छः वर्षीय राजकुमार तिरुमलराय का राज्याभिषेक सम्पन्न होना। सम्राट् ने अपने पुत्र तिरुमलराय को अभी से साम्राज्य का उत्तराधिकारी घोषित करने का निश्चय किया। दो-चार दिनों तक इस विषय पर सोचने के उपरान्त उसने पटरानी तथा अन्य रानियों से विचार-विमर्श किया। तत्पश्चात राजगुरु, पेदण्ण, अप्पाजी आदि व्यक्तियों से अपनी इच्छा व्यक्त की। सभी सम्राट् के विचारों से सहमत थे। सम्राट् ने तत्काल राजकुमार के राज्यारोहण की घोषणा की।

तैयारियाँ आरम्भ हुईं। देश-विदेश चारों ओर निमंत्रण जाने लगें। नाते-रिश्तेदार विशेष रूप से आमंत्रित हुए। धूम-धाम बढ़ने लगी। शोभा और सजावट के चार चाँद लगाने के लिये इससे बढ़कर अब दूसरा अवसर नहीं आ सकता था। खूब तैयारियाँ हुईं और खूब सजावटें हुईं—जितनी नहीं हो सकती थी उससे अधिक हुई। कहीं कमी नहीं रह गई। देखने वाले दांत तले उँगुली दबाकर रह गये। मुहूर्त के अनुसार निश्चित तिथि पर राजकुमार तिरूमल का राज्याभिषेक हुआ और वह विजयनगर साम्राज्य का सम्राट् घोषित हुआ। पिता संरक्षक के रूप में बना रहा। फिर खेल-कूद, नाच-तमाशे तथा नाना प्रकार के उत्सव प्रारम्भ हुये। मास दो मास बीते किन्तु उत्सवों की इतिश्री होने की अभी नौबत नहीं आई थी। स्वयं सम्राट् भी चाहता था कि अधिक-से-अधिक दिनों तक हम्पी में यह सुख का स्त्रोत बहता रहे।

महामंत्री अप्पा जी निस्संदेह साम्राज्य का परम हितैषी था। उसने अपने कर्तव्यपालन में कभी आगा-पीछा नहीं किया था। उसकी देश भक्ति सराहनीय थी। उसने युद्धों में वैरियों के दांत खट्टे किए थे। वह साम्राज्य की उन्नति के हेतु जितनी कोशिशें कर सकता था, करता चला आ रहा था किन्तु वृद्धावस्था के कारण अथवा पुत्र के लिए साम्राज्य लिप्सा की बुरी मनोवृत्ति ने उसमें एक दुर्गुण उत्पन्न कर दिया था जिसका पहला परिचय उसने अन्नपूर्णा को सहयोग देकर सम्राट् की हत्या के षड़यन्त्र में दिया था। कभी भी विश्वास में न आने वाला कार्य

उसने किया था। ऐसा व्यक्ति इस प्रकार का भी कार्य कर सकता है, कोई सोच नहीं सकता था। अप्पा जी का त्याग और उसकी वफादारी ऐसी ही थी; परन्तु उस रचयिता की लीला निराली है। किस में कौन पख लगा दे कहना कठिन है। अप्पा जी ने महान् घृणित काम किया और साथ ही उसमें असफल भी रहा। भेद खुल गया परन्तु वह बेदाग़ बच गया। कले को पूरी जानकारी होते हुए भी वह सम्राट् से न कह सका। सम्भव था सम्राट् उस पर ही अविश्वास कर जाता। उधर अन्नपूर्णा ने भी अप्पा जी का ज़िक्र नहीं किया। इतना ही नहीं जब वह पुनः 'मलयकूट' में रानी की हैसियत से लाई गई तब भी उसने सम्राट् से इस प्रकार की कोई चर्चा नहीं की। विश्वास में नहीं आने वाली यह बात अवश्य है परन्तु जब वह सम्भव हो सकता था तो यह भी सम्भव हो सकता है। खैर, समय के साथ-साथ घटना भी धूमिल पड़ गई। अप्पा जी के सशंकित मन को शान्ति मिली। उसने अपने को भला-बुरा कह कर कोसा अथवा नहीं यह तो कहना असंगत होगा परन्तु उसके कार्यों के संचालन की संलग्नता में कोई अन्तर नहीं दिखलाई पड़ा। वह उसी प्रकार साम्राज्य की उन्नति में रत रहा।

आज फिर कई वर्षों बाद उसके मस्तिष्क में उसी प्रकार के विचारों ने जन्म लिया। वह अकेले 'रायस' में बैठा हुआ बड़ी गम्भीरता से कुछ सोच रहा था। घड़ी, दो घड़ी और चार घड़ी बीत गई। वह उसी प्रकार सोचता रहा। शायद इन्सान और शैतान में लड़ाई होने लगी थी। एक-दूसरे पर अपना प्रभुत्व जमा लेना चाहते थे। अन्त में शैतान विजयी हुआ। बुद्धि पर पर्दा पड़ गया। ठोकर खाकर पुनः ठोकर खाने के रहस्य को यदि सृष्टि बनाये न रहती तो बहुत-सी समस्याओं का स्वयं समाधान हो गया होता। अप्पा जी ने निर्णय कर लिया। वह उठा। वहाँ से वह अपने छोटे भाई गोविन्द राजा के पास आया। उससे एकान्त में अपना मनोभाव व्यक्त किया। गोविन्द राजा ने उसे पसन्द किया। तब कुछ समय तक दोनों उपाय सोचते रहे।

राजधानी में अभी नाच-रंग उसी प्रकार चल रहा था। विशेषकर राजप्रासाद के भीतरी भाग में अधिक। दास, दासियां, प्रहरी, प्रतिहार और राजा-रानी सभी तल्लीन थे परन्तु उधर अप्पा जी किसी और काम में व्यस्त हो गया था। वह पुनः किसी षड़यन्त्र का सृजन करने लगा था। यद्यपि वह प्रत्येक उत्सव पर उपस्थित अवश्य रहता था किन्तु अवसर मिलते ही लोगों से आँख बचाकर वह खिसक जाता था। वह इसी भड़भड़ में अपने कार्य की सिद्धि कर लेना चाहता था। इससे सुन्दर अवसर फिर नहीं मिलने का। साँप भी मरता था और लाठी भी नहीं टूटती थी। वह पूरी चतुरता बरत रहा था, कारण उसे एक बार ठोकर लग चुकी थी। उसने जाल बिछाया। जिससे काम बनने को था वह जाल में फँस गई। बात पक्की हो गई और अवसर मिलते ही उस नागिन ने राजकुमार को डंस लिया।

रात में भोजनोपरान्त बालक तिरुमल लेटा ही था कि उसे बेचैनी महसूस हुई। पार्श्व में लेटी हुई माँ ने कारण पूछना आरम्भ किया। बालक कुछ बता नहीं पा रहा था परन्तु उसकी बेचैनी बढ़ती जा रही थी। साम्राज्ञी घबराई। कृष्णदेव राय को सूचना गई। वह आया। बालक की दशा तब तक कुछ और गिर चुकी थी। पुत्र की दशा देखते ही पिता का चेहरा पीला पड़ गया। तत्काल राजवैद्य बुलाया गया। राजप्रासाद में खलबली मच गई। राजवैद्य उपचार करने लगा। घड़ी, दो घड़ी बीती। कोई लाभ नहीं दिखलाई पड़ा। नगर की नीरवता भंग हुई। इधर-उधर घोड़े और रथ दौड़ने लगे। हम्पी के सारे वैद्य एकत्रित हुए परन्तु सब बेकार। किसी की औषधि काम नहीं कर रही थी। बालक की दशा बिगड़ती जा रही थी किन्तु जब तक साँस तब तक आस वाली कहावत का पालन करना स्वाभाविक था। किसी वैद्य को सम्राट् से वास्तविकता कहने की हिम्मत नहीं हो रही थी। क्षण-क्षण में पुत्र की गिरती हुई दशा देखकर पिता के नेत्र सजल हो आये। उसने वृद्ध राजवैद्य के कंधों को झकझोरते हुए पूछा 'वैद्यराज.........।'

वृद्ध की भी आँखें भर आईं। उसने गर्दन हिलाकर निराशा व्यक्त की।

'क्या ! कोई उपचार नहीं ?'

'विष दे दिया गया है राजक्कल तम्बिरन।' विवश होकर अन्त में राजवैद्य को कहना ही पड़ा 'प्रयत्न बहुत किया परन्तु प्रभु की ··· ।'

सम्राट् देखता रह गया। आँखों की पुतलियाँ जैसे जम गई हों। आँसू सूख गये। वह खड़ा रहा।

सबेरा होते-होते तिरुमल की मृत्यु हो गई। रंग में भंग हो गया। जितनी बड़ी खुशी हुई थी उतना ही बड़ा ग़म मिला। नगर रो उठा और उस क्रन्दन में जो व्यथा थी उससे प्रकृति भी विलख पड़ी। शोक का समुद्र उमड़ पड़ा। लोग सिर पीट-पीट कर रो रहे थे जैसे उनके स्वयं के पुत्र की मृत्यु हुई थी फिर पिता-माता के विषय में क्या कहना था ? पुत्र का शोक; वह भी इकलौते का। छाती फट जानी चाहिये थी पर नहीं फटी। माँ ने सिर फोड़ डाला, बाल नोचे, कूद कर जीवन समाप्त करने का प्रयत्न किया परन्तु जब जीवित रह कर जीवनपर्यन्त शूल से बिंधते रहने को लिखा था तो मरना कहाँ सम्भव था ? वह रोते-रोते बीमार पड़ गई।

पिता रो नहीं रहा था इसलिये उसके हृदय में अधिक व्यथा थी। वह हफ़्तों कक्ष से बाहर नहीं निकला। किसी को मिलने की अनुमति नहीं थी। वह मन-ही-मन घुलता रहा; परन्तु धीरे-धीरे घुलन में कुछ कमी आई। विचारों में परिवर्तन आया। क्रोध उपजा। हत्यारों को दंडित करने की इच्छा बलवती हुई। आदेशानुसार कले कक्ष में उपस्थित किया गया। सम्राट् ने उस से बातचीत करके उसे जाने की अनुमति दी। वह अनुमान नहीं लगा पा रहा था कि ऐसा नीच कर्म करने वाला है कौन ? उसकी जिधर भी दृष्टि जाती उसे इस प्रकार का व्यक्ति कोई नहीं दिखलाई पड़ता। उसके मस्तिष्क में एक बार अन्नपूर्णा का भी ध्यान आया परन्तु मन उस पर विश्वास करने को तैयार नहीं हुआ।

संयोगवश इसी समय द्वारिक ने अन्नपूर्णा के आगमन की सूचना दी। अन्नपूर्णा आई और सम्राट् के समीप बैठते ही फूट पड़ी। सम्राट् ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुये उसे शान्त किया। थोड़ी देर बाद उसने कहा 'जो होना था अन्नपूर्णा सो तो हो गया परन्तु वह हत्यारा कौन है, इसका अवश्यमेव पता लगाना है। मैं उस नराधम को देखना चाहता हूँ। मैं जानना चाहता हूँ कि इस राक्षसी काम के करने का कारण क्या है? उसने मेरी हत्या न करके उस अबोध बालक की हत्या क्यों की?'

'हत्यारा आप का महामंत्री अप्पाजी है राजक्कल तम्बिरन।'

'अप्पाजी!'

'हाँ, अप्पाजी।'

'नहीं अन्नपूर्णा तुम्हारा अनुमान गलत है। अप्पाजी क्यों करने लगे? किसी काम के करने में कोई आधार तो होता है न? तुम्हारा सन्देह उन पर कैसे चला गया?' सम्राट् के लिये विश्वास न करना स्वाभाविक था।

'राजक्कल तम्बिरन पता लगवायें। मैं जैसा कह रही हूँ बिल्कुल सत्य है। अप्पाजी के अतिरिक्त दूसरा नहीं हो सकता।'

'क्यों?'

अन्नपूर्णा ने पिछले षड़यन्त्र वाली पूरी घटना बता दी; 'यह है मेरे सन्देह का आधार। मैंने समझा था अप्पा जी दूरदर्शी व्यक्ति हैं। एक बार की ठोकर उन्हें सचेत करने के लिये पर्याप्त है। यही सोच कर मैंने आप से कहना उचित नहीं समझा था परन्तु साम्राज्य की लालसा ने उनकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी है। वह अपने पुत्र को सिंहासन पर बिठलाना चाहते हैं।' अन्नपूर्णा को आज सब कुछ बताना पड़ा।

सम्राट् हतबुद्धि सा देखता रह गया।

'मैं स्वयं पता लगा रही हूँ और आशा है चार-छः दिनों में भेद खुल जाएगा। मेरा अनुमान है कि किसी दासी द्वारा यह कार्य कराया गया है।'

सम्राट् हाथ पर सिर रख कर सोचने लगा।

× × ×

अन्नपूर्णा ने पता लगा लिया। जिस दासी ने अप्पा जी के कहने पर राजकुमार के भोजन में विष मिलाया था, वह सम्राट् के सामने पकड़ कर लाई गई। उसने स्वीकार किया। दासी के मुंह से सुनते ही सम्राट् के शरीर में आग लग गई। क्रोध भड़क उठा। उसने आज्ञा दी। महामन्त्री बन्दी बनाकर सम्राट् के सामने लाया गया। साथ ही उसका पुत्र तिम्मप्पा और भाई गोविन्द राजा भी। भरे दरबार में सम्राट् ने पूछा 'इस दासी को आप पहिचानते हैं महामन्त्री ?'

तिम्म ने सिर हिलाया। राजसभा में तिल रखने की जगह नहीं थी। लोग एक पर एक लदे हुये थे।

सम्राट् ने पुनः पूछा 'आपने भोजन में विष मिलवा कर मेरे पुत्र की हत्या करवाई ?'

'नहीं।'

'नहीं।' कृष्णराय तड़पा और सिंहासन से खड़ा हो गया, 'झूठ न बोलो महामंत्री। उससे डरो। तुम्हारी बुद्धि ऐसी भ्रष्ट हो गई है ? क्या तुमने मेरी हत्या के लिये षड़यन्त्र नहीं किया था ?'

वृद्ध बगलें झाँकने लगा।

'बोलते क्यों नहीं। बोलो। किया था अथवा नहीं ?'

'उसमें अन्नपूर्णा का हाथ था।'

'हाँ हाँ, यह तो सबको विदित है परन्तु मैं पूछता हूँ तुमने उस में सहयोग दिया था अथवा नहीं ?'

तिम्म उत्तर देने में असमर्थ था।

सम्राट् ने दाँत पीसे 'मैंने तुम्हें सदैव पिता-तुल्य समझा था फिर भी तुम्हारे विवेक पर ऐसा पत्थर पड़ गया कि तुमने मेरे ही साथ विश्वासघात किया। मेरे पुत्र के जीवन लेने में तुम्हें कलक नहीं हुई ? तुम्हारे पास भी तो पिता का हृदय है। तुम्हें तनिक भी उस अबोध

बालक पर दया नहीं आई ? तुमने अपने पुत्र के लिए मेरे पुत्र के प्राण ले लिये ? ऐसी कृतघ्नता !' उसका कंठ रुंध आया था 'ब्राह्मणों को प्राण दंड देकर मैं अपने पूर्वजों के आदर्शों पर कालिख नहीं पोतना चाहता अन्यथा तुम्हें भी मैं उसी प्रकार तड़पा-तड़पा कर मारता ।' उसने पार्श्व में खड़े कायस के प्रधान की ओर देखा 'इन तीनों की आँखें निकाल ली जायँ ताकि जब तक जीवित रहें संसार इन पर थूकता रहे। ले जाओ इन्हें ।'

पिता, पुत्र और भाई तीनों की आँखें निकाल ली गईं। ज़िन्दगी मौत से बदतर हो गई।

बयालीस

समय अतीत को ढकता हुआ आगे की ओर सदैव अग्रसर होता रहता है। वह पूरक है। जो बीत गया उसे भूल जाओ और जो प्रत्यक्ष है उसके प्रति आकर्षित हो उठो—यही उसकी विशेषता है। धीरे-धीरे सम्राट् और साम्राज्ञी का शोक धूमिल पड़ कर एक प्रकार से समाप्त हो गया। राजकाज पुनः उसी प्रकार चलने लगा। नाच-रंग होने लगे। जैसे पहले था वैसे अब हो गया।

होली पर रामराय अरग से आया। होली भी खेली और राजकुमारी से उपाय बतलाकर साम्राज्ञी के कानों में जानकारी करवाने के लिये कहा। चित्रपुष्पी के द्वारा महारानी को विदित हुआ और महा-

रानी के द्वारा सम्राट् को। रामराय प्रत्येक रूप से तिरुमलाम्बा के योग्
था। माता-पिता को आपत्ति क्यों होती ? सम्राट् ने स्वीकृति दे दी।

एकान्त में तिरु ने गम्भीर मुद्रा बनाकर रामराय से बताया 'पित
जी को सम्बन्ध पसन्द नहीं है।'

'क्यों ?' उसका चेहरा उतर आया।

'क्या बतावें। उनकी इच्छा।' उसने कनखियों से रामरा
को देखा।

'अब तुमने क्या सोचा है ?'

'मैं भी विवश हूँ। उनके विरुद्ध नहीं जा सकती।' राजकुमारी क
हंसी आने लगी थी।

रामराय ने ध्यान से देखा। उसे भेद समझ में आ गया। उस
तिरु को गोद में उठा लिया 'अब बताओ अपनी विवशता ? वैसे नहीं त
ऐसे सही.........।'

'छोड़िये भी।'

'क्यों छोड़ूं, नहीं छोड़ता।'

पिता जी से अनुमति मिल गई है। अब तो छोड़िये।'

रामराय हँसने लगा।

× × ×

नीलाम्बई ने सम्राट् से अनुमति लेकर अब पूर्णतः संसार से वैराग
ले लिया है। हम्पी में रहकर भी वह हम्पी के वातावरण से बिल्कु
अलग है। उसका सारा समय पूजन-भजन में व्यतीत होता है। हृदय
दो मूर्तियाँ स्थापित कर ली हैं—विश्वनाथ की और विशभदेव की